Ph.D Thesis

साठोत्तर हिन्दी नाटकों में लोकनाट्य का प्रभाव

SATTOTHAR HINDI NATAKOM MEIN LOKNATYA KA PRABHAV

Thesis
Submitted to

Cochin University of Science and Technology

For the award of the degree

Of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

In

HINDI

Under the Faculty of Humanities

By

निमिषा. ऐ. वी.

NIMISHA. I. V.

Prof. (Dr.) K. VANAJA Professor and Head of Department		Prof. (Dr.) N. MOHANAN Dean Faculty of Humanities Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN – 682022

DECEMBER 2015

साठोत्तर हिन्दी नाटकों में लोकनाट्य का प्रभाव

SATTOTHAR HINDI NATAKOM MEIN LOKNATYA KA PRABHAV

Thesis
Submitted to

Cochin University of Science and Technology

For the award of the degree

Of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

In

HINDI

Under the Faculty of Humanities

By

निमिषा. ऐ. वी.

NIMISHA. I.V.

Prof. (Dr.) K. VANAJA Professor and Head of Department		Prof. (Dr.) N. MOHANAN Dean Faculty of Humanities Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN – 682022

DECEMBER 2015

Certificate

This is to certify that the research work presented in the thesis entitled "**SATTOTHAR HINDI NATAKOM MEIN LOKNATYA KA PRABHAV" is** an authentic record of research work carried out by **NIMISHA. I. V.** under my supervision at the Department of Hindi, Cochin University of Science & Technology, in partial fulfillment of the requirements for the degree of DOCTOR OF PHILOSOPHY in HINDI and that no part thereof has been included for the award of any other degrees.

Prof. (Dr.) N. MOHANAN
Dean Faculty of Humanities
Department of Hindi
Cochin University of
Science & Technology
Kochi – 682 022

Place : Cochin

Date : /12/2015

DECLARATION

I hereby declare that the thesis entitled "**SATTOTHAR HINDI NATAKOM MEIN LOKNATYA KA PRABHAV"** is the bonafide record of the original work carried out by me under the supervision of **Prof. (Dr.) N. MOHANAN**, Dean Faculty of Humanities, at the Department of Hindi, Cochin University of Science & Technology, and no part has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree.

NIMISHA. I. V.
Department of Hindi
Cochin University of
Science & Technology
Kochi – 682 022

Place : Cochin

Date : /12/2015

पुरोवाक्

पुरोवाक्

भारतीय वाङ्मय में नाटक को पंचम वेद कहा गया है| उस की परम्परा बहुत प्राचीन है| लोकनाट्य की परंपरा भी उतनी ही प्राचीन है| शास्त्र या वेद के स्तर से अलग लोकनाट्य जन की स्वतः स्फूर्ति, सहज सौंदर्याभिरुची और अभिव्यक्ति का प्रतिरूप बनकर सामने आए हैं|

हिन्दी नाट्य साहित्य में लोकनाट्यों का समावेश एक ऐतिहासिक घटना है| साठोत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य में लोकनाट्य आधुनिक भाव बोध एवं नवीन शिल्पगत प्रयोगों के साथ प्रस्तुत हुआ है| यह अपनी मिट्टी, अपनी सस्कृति से जुड़ने का उपक्रम था| अतः लोकनाट्य ने साठोत्तर नाटकों को कहाँ तक प्रभावित किया और साठोत्तर नाटककारों ने उसे किस रूप में प्रश्रय दिया इसको लेकर एक विनम्र अन्वेषण है प्रस्तुत शोध प्रबंध|

मेरे शोध प्रबंध का विषय है –**"साठोत्तर हिन्दी नाटकों में लोकनाट्य का प्रभाव"**| अध्ययन की सुविधा के लिए इसको पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है| वे हैं –

पहला अध्याय :- **लोकनाट्य परम्परा एक ऐतिहासिक सर्वेक्षण**

दूसरा अध्याय :- **लोकनाट्य शैली पर केंद्रित हिन्दी नाटकों का ऐतिहासिक परिचय**

तीसरा अध्याय :- **नौटंकी शैली पर केंद्रित हिन्दी नाटक**

चौथा अध्याय :- **लीला शैलियों पर केंद्रित हिन्दी नाटक**

पाँचवाँ अध्याय :- **अन्य लोकनाट्य शैलियों पर केंद्रित हिन्दी नाटक**

अंत में **उपसंहार |**

प्रथम अध्याय में लोकनाट्य अर्थ, परिभाषा, परम्परा आदि को व्यक्त करते हुए भारत के प्रमुख लोकनाट्य शैलियों का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है|

द्वितीय अध्याय में भारतेंदु से लेकर सन् साठ तक के हिन्दी नाट्य साहित्य के विकास में लोकनाट्य शैली के योगदानों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है|

तृतीय अध्याय में नौटंकी लोकनाट्य शैली पर केंद्रित साठोत्तर हिन्दी नाटकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है| नौटंकी शैली के अपने अलग पात्र, वेशभूषा, भाषा, संवाद, गीत संगीत, मंच शैली आदि होते हैं| उसके माध्यम से किस प्रकार नाटककारों ने सामयिक विसंगतियों को प्रस्तुत किया है उसका विश्लेषण किया गया है|

चतुर्थ अध्याय में रामलीला और रासलीला पर केंन्द्रित नाटकों का अध्ययन किया गया है इसमें रामलीला रासलीला आदि की उत्पत्ति, विकास, शैलीगत विशेषताएँ आदि का विस्तृत विवरण प्रस्तुत है|

पंचम अध्याय में अन्य प्रमुख लोकनाट्य शैलियों से प्रभावित हिन्दी नाटकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन है|

अंत में इस शोध कार्य से निकले निष्कर्ष को 'उपसंहार' के रूप में प्रस्तुत किया गया है|

यह शोध कार्य कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविध्यालय के हिन्दी विभाग के भूत पूर्व अध्यक्ष एवं संप्रति मानविकी संकाय के अध्यक्ष के रूप में कार्यरत मेरे प्रिय अध्यापक प्रोफसर डॉ. एन. मोहनन जी के निर्देशन में संपन्न हुआ है| उनके बहुमूल्य सुझाओं तथा प्रेरणावर्द्धक निर्देशन से ही यह अध्ययन पूर्ण हो पाया है| उनके स्नेहपूर्ण निर्देशन तथा सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के लिए शाब्दिक कृतज्ञता व्यक्त करके मैं मुक्त होना नहीं चाहती| मेरी प्रार्थना यही है कि उनके आशीर्वाद हमेशा मेरे साथ रहे|

मेरे शोधकार्य के विषय विशेषज्ञ तथा हिन्दी विभाग के पूर्व अध्यक्ष प्रिय अध्यापक डॉ. आर. शशिधरन जी के प्रति हार्थिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनके आशीर्वाद और प्रोत्साहन की वजह से यह शोध कार्य संपन्न हुआ है|

कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग की अध्यक्षा, मेरी प्रिय अध्यापिका डॉ. के. वनजा जी के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने कदम कदम पर मेरा साथ दिया और अपनी सुझाओं से मुझे उपकृत किया|

हिन्दी विभाग के अन्य अध्यापक गण जिनके प्रति भी मैं अपनी हार्थिक कृतज्ञता व्यक्त करती हूँ जिनकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन हमेशा मेरे साथ रहे हैं|

पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री अशरफ जी और पूर्व सहायक श्री बालकृष्णन जी के प्रति भी मैं कृतज्ञता प्रकट करती हूँ| कार्यालयी सुविधाएँ प्रदान करके मेरी सहायता की है, हिन्दी विभाग के सभी कर्मचारियों ने, उनके प्रति भी मैं कृतज्ञता अदा करती हूँ|

वैसे तो मित्रों के बीच औपचारिकता की आवश्यकता नहीं है| फिर भी इस शोध कार्य के दौरान मेरे सभी मित्रों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मेरी सहायता की है| हिन्दी विभाग की पूर्व शोध छात्रा – विजी, षालबी, लैजा, रम्या, सन्ध्या तथा वर्तमान शोध छात्रा सुजिदा, रश्मी, सजना, गीतू, जीना, सिन्जु, कृष्णा आदि को मेरा प्यार|

मैं अपने परिवारवालों, माता-पिता, बहनें, मेरे पति और बच्चे के प्रति भी अपना प्यार व्यक्त करती हूँ कि जिनके प्यार, सहयोग, प्रार्थना एवं प्रेरणा की वजह से ही यह शोध कार्य संपन्न हुआ है|

सर्वोपरि मैं ईश्वर के प्रति नतमस्तक हूँ जिनकी कृपा से यह शोध कार्य पूरा हुआ है|

एक बार फिर सबके प्रति धन्यवाद ज्ञापित करते हुए मैं यह शोध प्रबन्ध विद्वानों के सामने सविनय प्रस्तुत कर रही हूँ| इसकी त्रुटियों एवं खामियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ|

सविनय,

निमिषा. ऐ. वी

विषयानुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय 1-73
लोकनाट्य परम्परा :- एक ऐतिहासिक परिचय
लोकनाट्य – शब्द एवं अर्थ – व्युत्पत्तिपरक अर्थ – कोशगत अर्थ – लोकमानस – लोकनाट्य एवं शिष्टनाट्य – लोकधर्मी और नाट्यधर्मी रूढ़ियाँ – नाट्य शब्दार्थ एवं व्युत्पत्ति – लोकसाहित्य का वर्गीकरण –लोकनाट्यों के प्रकार – भारत के प्रमुख लोकनाट्य – रामलीला – रासलीला – नौटंकी – विदेशिया – कीर्तनिया – नकाब – ख्याल – तमाशा – भगत – भवाई – नकल – स्वांग – माच – नाचा – गोंधल – ललित – दशावतार – जात्रा – यक्षगान – तेरुक्कुत्तु – गवरी – कुरवंजि – कुड़ियाट्टम - निष्कर्ष

दूसरा अध्याय 74-144
लोकनाट्य शैली पर केंद्रित हिन्दी नाटकों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण
संस्कृत नाटकों की परम्परा-हिन्दी रंगमंच-पारसी रंगमंच – इप्टा - भारतेंदु युगीन नाटक – भारतेंदु हरिश्चन्द्र – भारतेंदु के नाटक - प्रसाद युगीन हिन्दी नाटक – स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक – साठोत्तर हिन्दी नाटक – निष्कर्ष

तीसरा अध्याय 145-200
नौटंकी शैली पर केन्द्रित हिन्दी नाटक
नौटंकी – उद्भव – नामकरण – प्रमुख शैलियाँ – प्रमुख कलाकार – हिन्दी नाटक साहित्य में नौटंकी – नौटंकी से प्रेरित हिन्दी नाट्य – बकरी, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना – सगुन पंक्षी, एक सत्य हरिश्चन्द्र, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल – बजे ढिढोरा उर्फ़ खून का रंग, अशोक मिश्र – आला अफसर, मुद्राराक्षस – कथा क्षेत्र – कथ्यगत विश्लेषण

– नौटंकी से प्रभावित नाटकों का शैलीगत विश्लेषण – पात्र एवं वेशभूषा – भाषा एवं संवाद – गीत एवं संगीत – मंच एवं दृश्यविधान – निष्कर्ष

चौथा अध्याय 201-258
लीला शैली पर केंद्रित हिन्दी नाटक
लीला का उत्पत्ति – रासलीला – रामलीला – लीला नाटकों का महत्व – हिन्दी नाटकों में लीला नाटकों की भूमिका – हिन्दी लीला नाटककार और रचनाएँ – नाटक और रचनाकार – कथ्यगत विश्लेषण – शैलीगत विश्लेषण – निष्कर्ष

पाँचवां अध्याय 259-321
अन्य लोकनाट्य शैलियों पर केंद्रित हिन्दी नाटक
प्रमुख लोकनाट्य शैलियाँ – नाचा – माच – ख्याल – कुचामणी ख्याल – कीर्तनिया – प्रमुख रचनाकार और रचनाएँ – नाटक – नाटकार – कथ्यगत विश्लेषण – शैलीगत विश्लेषण – चरनदास चोर – दुलारी बाई – आदमी का गोश्त – पोस्टर – निष्कर्ष

उपसंहार 322-326
परिशिष्ट 327
संदर्भ ग्रन्थसूची 328-337

पहला अध्याय

लोकनाट्य परंपरा एक ऐतिहासिक परिचय

भारत बहुभाषी देश के रूप में पूरी दुनिया में जितनी ख्याति अर्जित कर चुका है उतनी ही यहाँ की लोकपरम्पराओं की भी एक खास पहचान है| लोकगीत, लोकनृत्य एवं लोककथाओं से हमारा सांस्कृतिक धरोहर समृद्ध हुए है| भारत में जितनी ऋतुएँ है, जितनी भाषाएँ है, जितनी जातियाँ है उससे कही ज्यादा यहाँ लोक साहित्य का प्रचलन है, वैसे पूरी दुनिया में अपनी सांस्कृतिक समृद्धता को बिखेरते इस देश की अपनी एक अलग पहचान है| लोकसाहित्य भारतीय जीवन के सहज एवं सरल अनुभवों का भारतीय प्रतिबिंब है जिनकी जड़े परंपरा से जुडी हुई है|

लोकसाहित्य युग युग का अपना इतिहास संजोये मानव के साथ चलता है| परंपरागत ज्ञान और अनुभवों, अगणित मानवीय कल्पनाओं और स्मृतियों के ताने बाने से इसकी सृष्टि हुई है| भारतीय लोकनाट्य परम्परा विभिन्नता में एकता की उक्ति को सार्थक बनाने वाली है| अनेक राज्यों, प्रान्तों और अंचलों में विभक्त भारत देश में कई लोकनाट्य शैलियाँ प्रचलित है|

इन लोकनाट्यों में प्रत्येक अंचल के प्रभाव से युक्त किसी विशेषता का होना स्वाभाविक भी है| इनमें कई लोक नाट्य रूप नृत्य प्रधान है, तो कई गीत संगीत प्रधान, कई धार्मिक सरोकार रखता है तो कई लौकिक सामाजिक| किंतु इस विभिन्नता में भी इन लोकनाट्यों में समानता का गुण स्पस्ट रूप से

परिलक्षित हो उठता है| सामान्यतः लोकनाट्य परम्परा अलिखित है, इसलिए विभिन्न नाट्य शैलियों के उद्भव – विकास की जानकारी भी अनुपलब्ध रही है| प्रचलित कथाओं और विभिन्न मतों के आधार पर ही लोकनाट्य की सृष्टि के संबंध में अनुमान लगाया जा सकता है| प्रस्तुत अध्याय में इन विभिन्न लोक नाट्य शैलियों से परिचित करने का प्रयास किया गया है|

शब्द एवं अर्थ

लोकनाट्य के मूल शब्द है लोक, सामान्यतः लोक शब्द ग्रामीण परिवेश के लिए प्रयुक्त होता है और उस परिवेश से जुडी हर वस्तु या व्यक्ति लोक संज्ञा से अभिहित किए जाते है| कहीं-कहीं लोक का साधारण अर्थ ग्राम लिया जाता है तो साहित्य में लोक शब्द विस्तृत क्षेत्र को अपने में आत्मसात किए हुए है| विशेष रूप से लोक का दो अर्थ प्रचलित है| एक तो स्थान विशेष के रूप में और दूसरा अर्थ लोक का जनसामान्य है| लोक शब्द से ही हिन्दी के 'लोग' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है जिसका तात्पर्य है सर्वसाधारण जनता|

स्थान विशेष के रूप में देखे तो जैसे उपनिषद् काल में इहलोक, परलोक उसी प्रकार पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्युलोक और पौराणिक काल में तो सात लोकों की कल्पना की जाती थी| स्थान विशेष के रूप में तो लोक का और एक अर्थ निकलता है वह है विश्व का कोई विशिष्ट भाग या स्थान जिसमें कुछ अलग प्रकार के जीवन या प्राणी रहते हैं|

लोक शब्द किसी परिवेश विशेष के लिए प्रयुक्त नहीं होता बल्कि व्यक्ति चारित्रिक विशेषताओं को केन्द्र में रखकर उसकी व्याख्या की जाती है| लोक शब्द पूरे मानव जाती का द्योतक है| विशेष रूप से लोक शब्द उस मानव समुदाय का घोतक है जो कृत्रिम जीवन से परे परम्पराओं में बंधा एवं अपने परिवेश से जुडा हुआ है| कुलमिलाकर 'लोक' मानव संस्कृतियों, परम्पराओं, रुढियों एवं अंधविश्वासों से समृद्ध है जो अथाह संपत्ति का धनी है|

व्युत्पत्तिपरक अर्थ

किसी भी वस्तु या तत्व की उत्पत्ति अचानक नहीं होती है, उसकी पृष्टभूमि में कई कारण तथा आवश्यकताएँ होते है तथा विकास की प्रक्रिया में उसका रूप भी बदलता रहता है|

लोक शब्द संस्कृत के "लोकदर्शन" धातु से बना है| इसमें 'घञ्' प्रत्यय लगने से ही लोक शब्द निष्पन्न हुआ है| इस धातु का अर्थ है 'देखना' इसका 'लट्' लकार में अन्य पुरुष एवं वचन का रूप 'लोकते' है| अतः लोक शब्द का मूल अर्थ हुआ 'देखने वाला'| इस प्रकार वह समस्त जन समुदाय जो 'देखने' का कार्य करता है वह 'लोक' कहलाता है|

भारतीय विद्वानों ने लोक शब्द की व्युत्पत्ति के बारे में क्या कहा है, इस के बारे में डॉ. गौतम शर्मा व्यथित का कहना है "भारतीय विद्वानों ने लोक शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से की है –

1. लोक्यते असौ लोक घत्र अर्थात संसार या विश्व का एक भाग तथा
2. लोकते, लोकित अर्थात नज़र डालना, प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करना आदि

लोक शब्द का अर्थ दो आधारों पर मिलता है

क) सामान्य रूप से भू-लोक, स्वर्ग लोग तथा पाताल लोक आदि|

ख) विशेष रूप से जनसामान्य अथवा साधारण लोग|"[1]

भारतीय विद्वानों ने लोक शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ को कुछ ऐसे ही व्याख्यायित किया है|

कोशगत अर्थ

लोक शब्द अत्यन्त प्राचीन है| यहाँ तक कि वेदों में भी इसका उल्लेख मिल जाता है| शब्द कोष के अनुसार लोक शब्द के कई अर्थ हैं –

1) संसार 2) प्रदेश 3) जन या लोग 4) समाज 5) प्राणी 6) यश आदि| साधारण जनता के अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों में किया गया है|

भारतीय साहित्यकों ने द्वारा अपनी अध्ययन प्रणाली में पाश्चात्य दृष्टिकोण का ही अनुसरण किया गया है| लोक शब्द को अंग्रेजी में फोक शब्द से

[1] डॉ. गौतम शर्मा व्यथित - कांगड़ा के लोकगीत साहित्यिक विश्लेषण एवं मूल्याकन - पृ : 34

अभिहित किया गया है| फोक शब्द ऐगलों – सेक्शन के folk शब्द से निष्पन्न शब्द मानते है| जर्मन में इसका उच्चारण 'वोक' (volk) है|

प्रामाणिक हिन्दी कोश में लोक का अर्थ इस प्रकार दिया है – "लोक : ऐसा स्थान जिसका बोध प्राणी को हो अथवा जिसकी उसने कल्पना की हो| जैसे इहलोक, परलोक| पृथ्वी के ऊपर नीचे के कुछ विशिष्ट कल्पित स्थान, भुवन, विशेष भुवन, संसार, जगह, लोग, जन, सारा समाज, जनता(पब्लिक)|" [1]

मानक हिन्दी कोष के चौथे खण्ड में लोक का अर्थ इस प्रकार दिया गया है| "लोक :- कोई ऐसा स्थान जिसका बोध प्राणी को हो, अथवा जिसकी उसने कल्पना की हो| जगह, जगत, या संसार| विश्व का कोई विशिष्ट भाग या स्थान जिसमें कुछ अलग प्रकार के जीव या प्राणी रहते हैं| जैसे जीवलोक, देवलोक, ब्रह्मलोक, मनुष्यलोक आदि| पुराणानुसार किसी विशिष्ट देवता के रहने का वह स्थान जहाँ मरने पर उसके भक्त जाकर रहते हैं| जैसे – विष्णु लोक|"[2]

यहाँ हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते है जैसे लोक शब्द में अनेक युगीन प्रयोगों से अर्थ – वैविध्य की अपेक्षा अर्थ समानता ही अधिक रही है|

---

[1] रामचन्द्र वर्मा - प्रामाणिक हिन्दी कोश - चोथा खण्ड

[2] रामचन्द्र वर्मा - प्रामाणिक हिन्दी कोश- चोथा खण्ड

लोकमानस

लोकमानस की सत्ता सार्वभौम है| दुनिया की हर एक जगह में लोकमानस को एक ही धरातल पर लिए जाते है| भौगेलिक दृष्टि से लोकमानस एक देश की सीमाओं में आब्दध नहीं है|

लोकमानस में 'मानस' माने क्या है, इस पर डॉ. गौतम शर्मा व्यथित का लिखना है – "मानस के दो भेद है अचेतन और अवचेतन ऐसा मनोवैज्ञानिकों का मत है| अवचेतन मन का निचला स्तर उत्तराधिकार से अवतरित सहज मानस का आदिम मानस है जो प्रत्येक मनुष्य को उत्तराधिकार में मिला है| यही लोकमानस है|"[1]

उनकी राय में 'मानस' सब को उत्तराधिकार से प्राप्त मूल्यवान वस्तु है जो सर्वत्र समान पाया जाता है| विजयपाल सिंह का भी समानीय मत है – "अवचेतन का निचला स्तर उत्तराधिकार से अवतरित सहज मानस : आदिम मानस (Primitive mind) यह प्रत्येक मनुष्य को उत्तराधिकार में मिला है : यही लोकमानस है"

लोकमन की प्रवृत्तियाँ मूलतः हर क्षेत्र में एक ही होती है| जहाँ स्थानीय लोककला एवं संस्कृतियों का प्रभाव इसको आन्दोलित एवं उद्वेलित कर लेती है|

[1] डॉ. गौतम शर्मा व्यथित, कांगड़ा के लोकगीत - साहित्यिक विश्लेषण एवं मूल्याकन, पृ : 36

डॉ. महेश गुप्त के शब्दों में – “लोकसाहित्य अपने विविध रूपों के माध्यम से लोकमानस एवं लोकमानव को प्रभावित करता है|”[1]

लोकमानस की व्यापकता सार्वदेशिक और सार्वकालिक है यह भौगोलिक पृष्टभूमि से सामग्री ग्रहण करता है और इसी प्रकार क्षेत्रीय पर्यावरण में इसके रूप भिन्न हो जाते हैं|

लोकमानस की बहुत प्राचीन परम्परा है| मनुमानस से इसका प्राचीन रूप प्राप्त होते है| वहाँ विद्वानों का एक मत है, - “लोकमानस के सहज आदिम मूल में वे तल भी विद्यमान है जो काल की गति से होने वाले संघातों से प्राप्त विषयों और सामग्रियों को ग्रहण कर सके और उन्हें अपने अनुकूल रखते हुए भी मानव के स्वरूप को विविध ऐतिहासिक युगों से अनुकूल ढालते रहे|”[2] निष्कर्षतः लोकमानस की व्यापकता सार्वदेशिक है| इसकी अवस्थिति ग्रामीण एवं सभ्य दोनों जनसमुदाय में पायी जाती है|

लोकनाट्य एवं शिष्टनाट्य

लोकनाट्य एवं शिष्ट नाट्य में मुख्य अन्तर है शास्त्रीय बंधनों में एवं नियमों में बंधने और न बंधने का| समाज के ऊपर के तबके की अपनी साहित्यिक परम्परा है, भरतमुनि का नाट्य शास्त्र है, अनेक अन्य साधन है| इस सांस्कृतिक

[1] डॉ. महेश गुप्त - लोकसाहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन - पृ - सं. 63

[2] डॉ. गौतम शर्मा व्यथित - साहित्यिक विश्लेषण एवं मूल्यांकन - पृ : 35

परम्परा के साथ दूसरा तबका तो जुड़ ही नहीं सकता था| मनोरंजन की आवश्याकता की उसे भी सख्त जरूरत थी| परंतु वह तो नकारा गया था| परिणामतः अपने तथा अपने वर्ग के रंजन के लिए उसकी खोज शुरू हुई और अंत में एक समानांतर रूप की निर्मिति की गयी जिसे हम लोकनाट्य कहते हैं| "लोकनाट्य शिष्ट नाट्य से अलग नहीं इसमें शिष्टनाट्य गुण अवश्य रूप से पायी जाती है, लोकनाट्यों में प्रचलित शास्त्रीय नाट्यों के अंग प्रत्यंगों को लोकनाट्यकारों ने जन अभिरुचि के आधार पर परिष्कृत एवं विकसित किया है|"[1]

शास्त्रीय नाट्यों की तरह प्रासंगिक कथानक का होना लोकनाट्य में आवश्यक नहीं| किसी व्यक्ति विशेष के मन में उपजे हुए काल्पनिक प्रसंगों का उपयोग लोकनाट्यों में सर्वथा वर्जित है|

लोकनाट्य की महत्वपूर्ण विशेषता है उसका अद्भुत 'लचीलापन'| उसकी अलग परम्परा है और व्याकरण है| शास्त्रीय नाटक की अपेक्षा यह सब के लिए है और कोई भी इसे समझ सकता है| लोकनाट्यों में शास्त्रीय नाट्य की भांति पात्रों के उच्चादर्श या लक्ष्यपूर्ती की ओर ध्यान नहीं रहता| परिणामतः नायक – नायिका, पात्र सृष्टि आदि शास्त्र सम्मत नहीं होते| विद्वानों के मत यहाँ उल्लेखनीय है – "लोकनाट्य शास्त्रीय नाटक की तरह भ्रमित नहीं करता, छलता

[1] रमा शर्मा - मधुमती-मार्च 1999 - पृ : 24

नहीं है, जो कुछ कहना है खुलकर कह देता है|"[1] इनमें शास्त्रीयगत नाट्य तत्वों का पूर्ण अभाव होते हुए भी ये प्रभावोत्पादकता लोकानुरंजन तथा रसानुभूति की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध होते हैं| लोकनाट्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवयव तो उसकी संवाद सृष्टि है| शिष्ट नाट्य की भांति इसमें तैयार की गई संवाद योजना नहीं होती, लोकनाट्य संगीत तथा लय की दृष्टि से भी सर्वागीण, - लोकनाट्य के तत्वों में प्रधान भूमिका नृत्य की रहती है| जबकि शिष्ट या साहित्यिक नाटकों में इसकी कोई आवश्यकता नहीं है|

लोकनाट्यों में पंच संधियों कार्य अवस्थाओं अर्थ प्रकृतियों, संधन्तरों आदि को ढूँढना व्यर्थ है| लोकनाट्य के रचयिता अज्ञात होते हैं| उसमें प्रचलित गीत संवाद आदि किसी पूर्वाभ्यास के द्वारा मंच पर आता नहीं है| गीत संवाद आदि के रचयिता अज्ञात होते हैं| रंगमंच की बात भी इस प्रकार है जिसके लिए कोई पूर्वाभ्यास होना आवश्यक नहीं है| कोई खुला समतल मिले, कोई मंदिर का प्रांगण मिले तो यह नाट्य कर सकते हैं| रंगमंच पर लोकनाट्य अपनी पूर्व प्रबल परम्परा के कारण कभी असफल नहीं हुआ है| लोकनाट्य परम्परा पर आधारित होते हैं| परम्परा से चली आ रही धुन सब को कंठस्थ होते है| रंगमंचीय प्रस्तुतीकरण किस प्रकार करना है, गीत एवं नृत्य किस प्रकार होना है, वेशभूषा एवं ढोलक – नगाड़े के ताल आदि का हर एक व्यक्ति को पता होता है जहाँ कोई परिवर्तन उसमें नहीं ला सकता| लोकनाट्यों के लिए किसी ने कोई शास्त्र नहीं

---

[1] ललित कुमार शर्मा ललित, डॉ. भानुशंकर मेहता, नाटक और रंगमंच, पृ : 85

रचा है| इसलिए कथा में एक के बाद क्या घटना है इसका कोई नियम नहीं होता| पर परम्परा से भिन्न कोई काम नहीं होता| लोकनाटककार किसी सिद्धांत के पीछे नहीं है| शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य के बारे में शैलजा भारद्वाज का कहना है – "शिष्ट साहित्य में शास्त्रीय नियमों, उपनियमों का बंधन होता है, संकलन-त्रय की अपेक्षा रहती है| लोक नाटकों में संकलन-त्रय की कोई अपेक्षा नहीं रखी जाती है|"[1]

लोकनाट्य लोकमानस में बसता हैं वह लोकमानस द्वारा रचा गया है| पर शिष्ट साहित्य किसी व्यक्ति विशेष द्वारा रचित होता है| लोक मंच साधारण जनता के लिए होता है और उनकी दैनिक जीवन की एक प्रक्रिया है| काम करते करते थके हुए लोगों के मन बहलाव के लिए उनके द्वारा रचित एक नाट्य शैली है लोकनाट्य जो उनके जीवन का अंग है| शिष्ट नाट्य नागरिक लोगों के मनोरंजन का साधन है| उनके फुरसत के क्षणों को मनोरंजक बनाने का एक साधन मात्र है| आज तो व्यावसायिक रंगमंच की परम्परा चल रही है| यह परम्परा बहुत पुरानी नहीं है| पर लोकमंच व्यावसायिक मंच नहीं है| शिष्ट साहित्य का आयोजन व्यावसायिक ढंग से किया जाता है| शिष्ट नाट्य का रंगमंच, वेशभूषा, संवाद सजावट, भाषा एवं प्रस्तुतीकरण आदि व्यावसायिक ढंग के होते है|

[1] शैलजा भारद्वाज - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक सहित्य में लोकतत्व - पृ - 12

लोकनाट्य परम्परा से हटकर नहीं है| लोकनाट्य एक समुदाय के लिए होता है| सारा गाँव वहाँ की जनता, उनका मन सब एक सामुदायिक भाव से चलते है| इसलिए लोकनाट्य भी सामुदायिक हुआ करता है| लोकनाट्य में नृत्य की भूमिका रहती है लेकिन शिस्ट नाट्य में बहुत कम| लोकनाट्य का कथानक प्रायः पारंपरिक होता है| लोकनाट्य में इस प्रकार का कथानक चुना जाता है जो सामुदायिक हो| पुराण, इतिहास आदि पर आधारित धार्मिक नाटकों का आयोजन समुदाय के लिए रचा जाता है| इस नाटक का नायक जो होता है वह किसी न किसी प्रकार लोगों के दिलों में पहले से ही समाया हुआ होता है|

लोकधर्मी और नाट्यधर्मी रूढ़ियाँ

भारत की संस्कृति संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में से शीर्षस्थ है| नाटक को पंचम वेद के रूप में मान्यता प्राप्त करने से भी पूर्व यहाँ लोकनाटक या लोकधर्मी नाट्य परम्पराएं अपना रूप ग्रहण कर चुकी थीं| जीवन को अपने प्रकृत रूप में प्रस्तुत करने वाली नाट्यशैली को लोकधर्मी नाट्य कहते हैं| लोकधर्मी नाटकों का जनसाधारण से सीधा संबंध होता है| लोकधर्मी नाट्य परंपरा अत्यंत विशाल एवं समृद्ध है|

नाटक के स्वरुप, तत्व, प्रस्तुतीकरण आदि से सम्बंधित कई नियमों एवं सिद्धांतों का पालन नाट्यधर्मी नाटकों में किया जाता है| इस पर आधारित भरतमुनि का विख्यात ग्रंथ है नाट्यशास्त्र| भरतमुनि ने अपने नाटयशास्त्र में

लोकधर्मी नाटकों को भी महत्व दिया है| उनके अनुसार नाट्यधर्मी नाटकों को वास्तविक प्रेरणा इन लोकधर्मी नाटकों से मिला होगा| कुंदनलाल उप्रेती के अनुसार – "जो स्वाभाविक है वह लोकधर्मी है और जो विभाव है वह नाट्यधर्मी है| इस नाट्यधर्मी को नृत्यनाटक भी कहा गया है| प्राचीन नाटकों की यही विशेष नाट्यशैली थी|"[1]

नाट्यधर्मी नाटकों की भाँति शास्त्रीय नियमों में बँधा हुआ नहीं है लोकधर्मी नाटक| इसका क्षेत्र असीम है| यह परम्परा अलिखित है लेकिन इसकी जड़ें लोकपरम्परा की कड़ियों से जुडी रहती है क्योंकि लोक जीवन में इसकी गहरी आस्था है| लोकधर्मी नाटकों का कोई शास्त्रीय नियम नहीं होता| इसलिए उसकी रचनाएँ अलिखित अनगढ़ित होकर भी सरल रूप से लोकमानस में बसी हुई हैं|

नाटक अनुकरण की कला है लोकधर्मी नाट्य में यह अनुकरण अपनी प्राकृत रूप में प्रस्तुत है| डॉ. लक्ष्मीनारायण भरद्वाज के अनुसार – "लोकधर्मी नाट्यों में लोक का शुद्ध और स्वाभाविक अनुकरण होता है| उसमें विभिन्न भावों का संकेत करने वाली वाचिक, आंगिक, सात्विक और आहार्य – विधियों का समावेश नहीं होता|"[2]

---

[1] डॉ. कुंदनलाल उप्रेती - लोक साहित्य के प्रतिमान पृ : 117

[2] डॉ. लक्ष्मीनारायण भरद्वाज - रंगमंच लोकधर्मी नाट्यधर्मी - पृ : 120

लोकधर्मी रुढियों का मूल स्त्रोत जनसाधारण की जीवन शैली है| नाट्यधर्मी रुढियाँ कुछ कल्पना पर आश्रित है| इस में लोकानुसारी वृत्त ही मुख्य होता है| उसमें कल्पना की अतिरंजना नहीं होती| लोकस्वभाव को उसके स्वरुप में यथावत् प्रस्तुत करने का काम लोकधर्मी नाट्य करते हैं| लोकधर्मी नाट्यशैली के व्यवस्थित रूप का उल्लेख आद्याचार्य भरत के नाट्य शास्त्र में उपलब्ध है| लोकधर्मी नाटकों के मूल में ग्राम्य जीवन की सहजता और अकृत्रिमता रहती है और ये जीवन को प्रकृत रूप में प्रस्तुत करते हैं| भरतमुनि ने लोकधर्मी, नाट्यधर्मी दोनों प्रकार की अभिनय शैलियों का विवेचन किया है| वे नाट्यधर्मी के अभीष्ट रहे हैं| किंतु लोकधर्मी शैली को वे नकार नहीं सके|

भरतमुनि की अभिनय कला नाट्यधर्मी है| "नाट्यधर्मी से अभिप्राय है कि किसी भी वस्तु को उसके प्राकृत रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि प्राकृत रूप सर्वदा अभीष्ट नहीं होता|"[1]

नाट्यशास्त्र में लोकधर्मी के अर्थ – विवेचन हुआ है, "लोकधर्मी का अर्थ हुआ स्वाभाविक ढंग से प्रकट हुआ| इसके दो भेद है| शुद्ध स्वाभाविक तथा विकृत स्वाभाविक| दोनों अंगलीला नहीं होनी चाहिए – [लोकनाट्य में] अभिनय स्वाभाविक हो, अनेक प्रकार के स्त्री पुरुष हो| ऐसा नाट्य ही लोकधर्मी कहा

[1] डॉ, कुंदनलाल उप्रेती - लोक साहित्य के प्रतिमान - पृ : 74

जाता है|"[1] लोकधर्मी नाट्य जहाँ प्रेक्षक की अनुमान शक्ति पर बल देता है वहाँ नाट्यधर्मी में अनुमान शक्ति से ज्यादा कल्पना पर जोर दिया जाता है| दोनों शैलियों को हम नकार नहीं सकते है| लेकिन आज जो आधुनिक हिन्दी नाट्य रंगमंच की पहचान बनाने में प्रयत्नरत है वे इन दो धाराओं के समन्वय से एक नयी शैली को प्रस्तुत करने में प्रयत्नरत हैं| जिसमें यथार्थ और कल्पना से नये रंग उभरें|

नाट्य शब्दार्थ एवं व्युत्पत्ति

साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण विधा है नाटक| यह एक समन्वित सृष्टि है| जीवन के लगभग हर क्षेत्र को नाटक का विषय बना सकते है| डॉ. रामजन्म शर्मा का कहना है – "प्राचीन भारतीय नाटय शास्त्र प्रणेता का विचार है कि ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला अथवा कर्म भी ऐसा क्षेत्र नही हैं जो नाटक जीवन के इस विराट क्षेत्र को विषय बनाता रहा है"[2]

'काव्येषु नाटकं रम्यम' के अनुसार नाटक साहित्य की सबसे सुंदर विधा है| नाटक शब्द 'नट्' धातु में 'प्वुल' प्रत्यय लगाने से बनता है| नाट्य की उत्पत्ति एंव नाटक की उत्पत्ति दोनों अलग नही है| नाट्य ओर नाटक दोनों के संबंध में डॉ. रामजन्म शर्मा द्वारा लिखित वक्तव्य उल्लेखनीय है – "नाटक का

[1] डॉ. कुंदनलाल उप्रेती-लोक साहित्य के प्रतिमान-पृ : 120

[2] डॉ. रामजन्म शर्मा-स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक-पृ : 132

व्युत्पत्तिपरक अर्थ तो भिन्न प्रकार से किया गया है| महावैय्याकरण पाणिनि ने नाटक के मूल रूप [बेस फार्म] नाट्य को संस्कृत नट् धातु से व्युत्पन्न माना है”[1] मतलब नाट्य और नाटक सामान्य अर्थ भेद के साथ प्रयुक्त होने वाला एक ही शब्द है|

नाट्य शब्द का कोशगत अर्थ यह निकलता है – “नट का काम या भाव, नाचने गाने वाले काम, अभिनय आदि के रूप में किसी की नकल करने या स्वाँग भरने की क्रिया या भाव”[2]

प्रामाणिक हिन्दी कोश में ऐसा लिखा है - “नाट्य :- नटो का काम, नृत्य, गीत, वाद्य और अभिनय आदि| अभिनय| स्वाँग|”[3]

इस प्रकार नाटक और नाट्य का समान प्रकार का अर्थ निकलता है|

नाट्य उत्पत्ति के बारे में ऐसा कोई ठोस प्रमाण तो नहीं हैं| यह विधा बहुत प्राचीन है| आदि मानव काल से ही यह विधा मौजूद थी और काफी प्रचलित भी थी| ऐसा माना जाता है कि आदिम मानव और प्रकृति के बीच में जो रिश्ता रहा वहाँ से अनुकरण या नकल करने की प्रक्रिया आरंभ हुई| वहाँ से अभिनय का पहला पाठ शुरू हो गया| धीरे धीरे मनोरंजन के माध्यमों में नाटक एक प्रमुख साधन बन गया| इस प्रकार लोकजीवन को सर्वाधिक प्रभावित करने

[1] डॉ. रामजन्म शर्मा-स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक-पृ : 135

[2] रामचंद्र वर्मा-मानक हिन्दी कोष-चौथा खण्ड

[3] रामचंद्र वर्मा-प्रामाणिक हिन्दी कोष

में सक्षम हुआ| ऐसा माना जाता है कि नाट्य की उत्पत्ति ब्रह्मा द्वारा पंचम वेद के रूप में की गई है| कुछ विचारक नाट्य की उत्पत्ति नृत्य से मानते हैं| डॉ. मिथिलेश गुप्ता का कहना है – "मैक्डानल का विचार है कि 'नट्' धातु का उद्गम 'नृत्' धातु से ही हुआ है| नट् धातु से नाट्य नाटक या नट् शब्द बनते हैं जो मूलरूप नृत्य के अर्थ में प्रयुक्त होने वाली 'नृत' धातु का विपरिणाम है|"[1]

नृत्य, नाट्य, नाटक, इन तीनों के मेल के बारे में डॉ. रामजन्म शर्मा लिखते हैं – "नृत्य भावाश्रित होता है, 'नृत्य' ताल लय पर आश्रित होता है, किंतु नाट्य रसाश्रित होता है| इस प्रकार हम देखते हैं तो पता चलता है कि नाटक का धीरे धीरे विकास हुआ और नृत्त और नृत्य को नाटक का अंग माना गया है| नाटक का अंगी साहित्य रूप रूपक भी प्रधानतय नाटक ही था|"[2]

यूनानी नाटकों से नाट्य की उत्पत्ति मानने वालों के बारे में डॉ. मिथिलेश गुप्ता लिखते है – "बेवर ने भारतीय नाट्य की उत्पत्ति यूनानी नाटकों से मानी है| उनका कहना है कि भारतीयों में नाट्यकला का अभाव था| सिकंदर महान की विजय के साथ इस कला ने भारत में प्रवेश किया"[3] मतलब हम यह निकाल सकते है कि यूनानी नाटकों के सम्पर्क से उसका प्रभाव भारतीय रंगमंच पर पड़ा होगा|

[1] डॉ. मिथिलेश गुप्ता - समकालीन हिन्दी नाटक रंगमंच के परिपेक्ष्य में - पृ - 19
[2] डॉ. रामजन्म शर्मा - स्वातंत्रयोत्तर हिन्दी नाटक - पृ - 2
[3] डॉ. मिथिलेश गुप्ता - समकालीन हिन्दी नाटक रंगमंच के परिपेक्ष्य में - पृ - 19

लोकसाहित्य का वर्गीकरण

किसी भी समाज और उसके लोकजीवन को समझने के लिए उस समाज के लोकसाहित्य को तथा उस लोकसंस्कृति को समझना अत्यंत आवश्यक है क्योंकि लोक साहित्य लोकमन की अभिव्यक्ति होता है| लोक साहित्य साधारण जनता के हृदय का उद्गार होता है| डॉ. शैलजा भारद्वाज के अनुसार – "लोकसाहित्य जनता के उद्गारों की अभिव्यक्ति है| गीतकार गाथाएँ सुनसुनाकर, मनोरंजन के लिए स्वांग अभिनय कर जन समूह को आनंदित करने का प्रयास करता है| समय समय पर चुभती हुई लोकोक्तियों, मुहावरों का प्रयोग कर वे अपने विचारों को भी सांकेतिक रूप में अभिव्यक्त करते है|"[1] मानवजीवन की अभिव्यक्ति का एक नया माध्यम है लोकसाहित्य|

लोकसाहित्य को पाँच अंगों में वर्गीकृत किया है|

1. लोकगीत
2. लोकगाथा
3. लोककथा
4. लोकनाट्य
5. प्रकीर्ण साहित्य

---

[1] शैलजा भारद्वाज, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक साहित्य में लोकतत्व - पृ : 7

लोकगीत

लोकगीत लोकसाहित्य की महत्वपूर्ण विधा है| लोकगीत जीवन का स्फुट काव्य होता है| डॉ. वसंत निरगुणे के अनुसार – “लोकवाचिक परंपरा में पर्व और संस्कार से सम्बंधित गीत जितनी अधिक मात्रा और व्यापक रूप में गाये जाते हैं, उतने कोई भी अन्य गीत नहीं गाये जाते हैं| लोकसाहित्य के भण्डार में लोकगीतों की संख्या अनगिनत है| मौखिक और मौलिक रूप से गाये जाने वाले असंख्य लोकगीतों का स्थान वाचिक परम्परा में सर्वोच्च और महत्वपूर्ण है| लोकगीत लोकसंस्कृति के समग्र संवाहक हैं|”[1] मतलब हमारी संस्कृति में लोकगीतों का महत्वपूर्ण सान्निध्य है| “लोकगीत प्रकृति के उद्गार है| तड़क - भड़क से दूर| पारदर्शी शीशे की तरह स्वच्छन्द है| सरलता, रस-माधुर्य और लय इनके गुण हैं| प्रकृति से सम्बंधित सभी गुण लोकगीतों में निहित हैं|

घर घर के आंगन मे जीवन की जिन जिन अनुभूतियों का साक्षात्कार मनुष्य करते है, उन्ही की झांकी हमें लोकगीतों में मिलती हैं| जन्म-मरण, मंगनी-विवाह, पर्व त्योहार, रीति-रिवाज़, हर्ष-उल्लास, सुख-दुःख, आदि से सम्बंधित विभिन्न प्रकार के लोकगीत होते है जिनमें हमारी संस्कृति के सहज गुण विद्यमान हैं| लोकगीत मौखिक रूप से पीढी दर पीढी आगे बढ़ रहे हैं इसलिए स्वाभाविक रूप से कुछ परिवर्तन तो होते ही रहेंगे| लोकगीत व्यक्ति विहीन

[1] वसंत निरगुणे, लोकसंस्कृति - पृ - 107

होते हैं| मतलब, इसका रचनाकार कोई एक व्यक्ति नहीं बल्कि समूह होता हैं| इसकी परम्परा आदिम मानस से है| आदिम मानव में हृदय की अनुभूतियों को गीत-संगीत के माध्यम से अभिव्यक्त करने की परम्परा रही है| विकास क्रम में यह परम्परा एक कंठ से दूजे कंठ तक बहती चली आयी|

वसंत निरगुणे के अनुसार –“लोकगीतों में सबसे महत्वपूर्ण जीवन की मूल सत्यानुभूति की अभिव्यक्ति का सहज साक्षात्कार होता है| जीवन को अखंडित रूप से देखने की दृष्टि लोकगीतों में जबरदस्त है| दो पंक्ति के गीत को चाहे जितनी देर तक गाया जा सकता है| …………किसी किसी लोकगीत में कोरे शब्दों का दुहराव मात्र हो सकता है| गीत का मतलब शब्दों की गेयता से है|”[1] इस प्रकार कोरे शब्दों से बने लोकगीत भी सुरीली हो सकते हैं|

लोकगीतों में छंद का आग्रह नहीं मगर यह लयबद्ध होता है| वे पढने में अच्छे नहीं लगे मगर सुनने में बहुत ही आनंद दायक होते हैं| लोकगीतों में एक व्यक्ति की अनुभूति नहीं बल्कि पूरे समाज की अनुभूति व्यक्त होती है|

इस प्रकार लोकगीतों की अनेक विशेषतायें हैं| मेवाती लोकगीतों में जनजीवन के बारे में लिखने वाले डॉ. माजिद मेवाती लोकगीतों की वर्तमान स्थिति पर इस प्रकार लिखते हैं, -“लोकगीत लोक की अनोखी धरोहर है| लेकिन बदलती परिस्थितियों के कारण आज इनका अस्तित्व खतरे में है| इन लोकगीतों

[1] वसंत निर्गुणे, लोकसंस्कृति - पृ : 108

पर नई संस्कृति और फ़िल्मी गीतों का रंग तेज़ी से चढ़ रहा है|"[1] इसलिए लोकगीतों को उनके मूलरूप में और स्वर में सहेजकर रखना हमारा उत्तरदायित्व है|

लोकगाथा

लोकगाथा लोकसाहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है| इसमें कथा और गीत दोनों संयुक्त रूप से प्रयुक्त होते हैं| इसमें कथा और गीत दोनों मौखिक रूप से प्रचलित है| लोकगाथा एक लम्बी कविता है| इसके बारे में पद्मचन्द्र कश्यप का मत हैं –"लोकसाहित्य के अंतर्गत ऐसे भी गीत गाए जाते हैं, जो बहुत लम्बे होते हैं तथा जिनमें कथा वस्तु की ही प्रधानता होती है|"[2]

लोकगाथा में किसी एक छोटी कथा का गायन नहीं होता बल्कि यह तो ऐसे अनेक छोटी छोटी कथाओं का समावेश होता है जो एक साथ अनेक उपकथाओं को समेट लेता है| इसमें अनेक घटनाएँ होती हैं| इन सारी घटनाओं से बनी एक-एक कथा को लोकधुनों में गाकर सुनाता है| जिसके लिए अनेक लोकधुन भी हैं| इस प्रकार लोकगाथा अनेक लोकधुनों से बनी मधुर गाथा होती है|

---

[1] डॉ. माजिद मेवाती, मधुमती 2009 जुलाई, पृ : 26

[2] पद्मचन्द्र कश्यप, कुल्लई लोक साहित्य, पृ : 38

शैलजा भारद्वाज लिखती है –"यह शब्द लोक साहित्य में अंग्रेजी के बैलेड शब्द के पर्याय के रूप में लिया जाता है| यह एक प्रकार से कथात्मक गेय कविता है जो गीतात्मक भी है एवं कथात्मक भी|"[1] इसमें अनेक लोक बोलियाँ भी होती हैं| वसंत निरगुणे का कहना है –"लोकगाथा में लोकबोलियों की समस्त प्रवृत्तियों का समावेश होता है| लोक काव्य शैली और प्रस्तुति की दृष्टि से हर लोकगाथा, अपनी स्वतंत्र और मौलिक पहचान रखती है|"[2]

लोकगाथा स्थानीय विशेषता के कारण बहुत लोकप्रिय है| उसमें विशेष अंचल के लोगों के विश्वास, अनुष्ठान निहित हैं| लोकसाहित्य के सभी तत्वों का समावेश लोकगाथा में मिलता है| लोकगाथा में हर प्रत्येक अंचल से सम्बंधित वीर, धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं प्रेम कथायें मिलती हैं|

लोककथा

लोककथाएँ भी हमारी संस्कृति की संवाहक है| लोकसाहित्य के अध्ययन के लिए लोककथाओं का अत्यधिक महत्व है| लोक में मौखिक परम्परा में आने वाली कथाएँ इस वर्ग में आती है| लोककथाएँ हमारी वाचिक परम्परा का अमूल्य धरोहर है| ये लोककथाएँ हमारी संस्कृति में नानी-दादी सुनायी करती हैं|

---

[1] शैलजा भारद्वाज, स्वातंत्र्योत्तर नाटक साहित्य में लोकतत्व - पृ : 9

[2] वसंत निरगुणे, लोकसंस्कृति, पृ : 108

लोकनाट्य

लोकसाहित्य में लोकनाट्य एक महत्वपूर्ण विधा है| लोकनाट्य वह विधा है जिसमे संवादों एवं गीतों के माध्यम से किसी भी विषय को प्रस्तुत किया जाता है| इसका मुख्य उद्देश्य लोक का मनोरंजन करना है| लोक मनोरंजन की परिपाटियाँ बहुत प्राचीन हैं| लोकनाट्य में जनजीवन की सहज स्वाभाविक प्रस्तुतीकरण होता है| लोकनाट्यों के मुख्य तत्व गीत, नृत्य, संगीत, एवं संवाद है जो सहज रूप से प्रस्तुत किया जाता है| इससे जीवन का यथार्थ प्रस्तुत हो जाता है|

लोकनाट्यों की विशेषताओं पर शैलजा भारद्वाज लिखती है – "लोकनाट्यों की यह विशेषता है कि इसमें विशेष रूप से लोकरुचि का ध्यान रखा जाता है| यद्यपि हर साहित्यिक बिधा स्वान्तः सुखाय के बाद पाठकों दर्शकों की रूचि की अपेक्षा रखती है, तदापि लोकनाट्य दृश्य-काव्य होने की वजह से पूर्ण, रुपेण जन रुची पर निर्भर करता है|"[1]

लोकनाट्यों का मंच जनजीवन के बीच का खुला क्षेत्र है| मंच के लिए कोई साज सज्जा नहीं होती गली-गलियारे, मंदिर का प्रांगण कही भी यह स्वतः खेला जाता है| चारों ओर से खुले हुए मंच पर कोई दृश्यांतर नहीं होता| लोकनाटकों की भाषा, अभिनय सब स्वाभाविक होते हैं| लोकनाटकों की भाषा

---

[1] शैलजा भारद्वाज, स्वातंत्र्योत्तर नाटक साहित्य में लोकतत्व - पृ : 10

बहुत सरल एवं सीदी सादी होती है जो कोई भी अनपढ़ व्यक्ति आसानी से समझ सकता है| लोकनाट्यों के संवाद बहुत सरल एवं छोटे होते हैं| इसके कथानक प्रायः ऐतिहासिक, पौराणिक या सामाजिक होते हैं| लोकनाट्य के सभी पात्रों की भूमिका पुरुष ही निभाता था|

इस प्रकार कई विशेषतायें आम तौर पर लोकनाट्यों में होती हैं| दूसरी ओर अपनी अलग खासियत को बनाये रखने वाले लोकनाट्य भी होते हैं| अंचल विशेष की विशेषतायें हर एक लोकनाट्य में होती है वही एक को दूसरे से अलग एवं लोकप्रिय बनाता है|

भारत के कुछ प्रसिद्ध लोकनाट्य रूपों में नाचा, रामलीला, रासलीला, माच, नौटंकी, ख्याल, सांग, विदेशिया, भगत, भवाई यक्षगान आदि प्रमुख है|

प्रकीर्ण साहित्य

प्रकीर्ण साहित्य में लोकोक्तियाँ, मुहावरें, पालने की गीत, खेल गीत, लोरियाँ आदि आते हैं| सुभाषित के नाम से प्रकीर्ण साहित्य जाने जाते हैं|

लोकोक्तियाँ

ये लघु एवं फुटकर रूप में उपलब्ध होते हैं| फिर भी महत्व में किसी अन्य विधा से कम नहीं है| लोक की कोई भी शक्ति लोकोकित है, जिसमें लोकज्ञान संचित रहता है| लोकोक्तियाँ कहावत के नाम से आज जानी जाती है| ये रूढ़ हो

गयी है| ये कहावतें पीढ़ियों से चली आ रही है| ज्यादातर वृद्ध मानस इसे याद एवं सुरक्षित रखते है| मानव अपने वार्तालाप के दौरान कोई बात विशेष रूप से समझाना चाहते हैं तो कहावतों का प्रयोग करते है| ये उनके अनुभवी होने का परिचय भी देते है| ग्रामीण जनता द्वारा इसका प्रचलन होता है| इसके प्रयोग से संवाद अधिक प्रभाव शाली बन सकता है|

मुहावरें

मुहावरों के माध्यम से बातों को कम शब्दों में व्यक्त कर सकती हैं, जो प्रभावशाली भी होंगे| हर कही हम इसका प्रयोग नहीं कर सकते| बातचीत के दौरान प्रयोग अधिक होते हैं| मुहावरें भी पीढ़ियों से चली आ रहें हैं| खास बात यह है कि ये सब मौखिक परम्परा में प्रचलित हैं लेकिन कोई परिवर्तन इसमें नहीं होता क्यों कि इसका परिवर्तन निषिध्द है| जैसे मंत्रों को परिवर्तन नहीं कर सकता उसी प्रकार मुहावरों का भी| मुहावरों के प्रयोग से भाषा में चुस्ती आ जाती है|

पहेलियाँ

पहेलियों में रहस्यात्मकता होती है| ये पद्यात्मक एवं गद्यात्मक होते हैं| पहेलियाँ कुतूहल पैदा करती हैं| बच्चों के मन में जिज्ञासा पैदा करती हैं| पहेलियों की परम्परा पीढ़ियों से चली आ रही है| बहुत लम्बी परंपरा है|

लोकनाट्यों के प्रकार

लोकनाट्य हमारी ज़मीन की उपज है जिसकी जड़ें बहुत गहरी है| भारत में लोकनाट्य परम्परा बहुत प्राचीन है| आज हमारा जो नाट्य साहित्य है जिसकी मूल परम्परा लोकनाट्य शैली है| देश की ज्यादातर जनता अपनी मिट्टी से उपजी इस लोकनाट्य शैली को अपनाती है| संस्कृत की नाट्यधारा के बाद लोकमन के मनोरंजन के लिए लोकनाट्य का उदय हुआ जिसके बारे में डॉ. चतुर्भुज का कहना है –"संस्कृत की प्रधान नाट्य धारा जब क्षीण होने लगी तो उसके कुछ पहले ही जन साधारण के मानस में मनोरंजन और शिक्षा से अनुप्राणित विभिन्न शैलियों का उदय होने लगा|"[1] लोकनाट्य शैली की खासियत यह है की उसमे नाटक को आगे बढ़ाते हुए नृत्य, संगीत एवं हास्य का मेल होता है| डॉ. नीना शर्मा के अनुसार –"लोकनाट्य की विभिन्न शैलियाँ अपने अंचल विशेष के प्रभाव से युक्त किसी विशेष विशेषता के कारण प्रसिद्ध रही हैं| इस लोकनाट्य शैलियों में कुछ धार्मिक लोकनाट्य हैं, कुछ लौकिक सामाजिक| कुछ लोकनाट्य नृत्य की प्रधानता लिए हुए हैं तथा कुछ गीत-संगीत की प्रधानता से युक्त हैं|"[2]

[1] डॉ. चतुर्भुज, भारतीय और विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास, पृ : 155

[2] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 16

नृत्य, संगीत, हास्य प्रधान होते हुए भी ज्यादातर लोकशैलियाँ धार्मिक कथाओं पर ही खेली जाती हैं| अपनी विशेषताओं के अनुसार लोकनाट्यों के चार प्रकार माने जाते हैं|

1. नृत्य प्रधान, 2. संगीत प्रधान,3. स्वांग प्रधान 4. हास्य प्रधान

नृत्य प्रधान लोकनाट्य :- “लोकनाट्य और लोकनृत्य इन दोनों को भिन्न रूप से देखना मुश्किल की बात है| नाट्याचार्य भरतमुनि जैसे बड़े बड़े आचार्यों ने नृत्य से ही नाटकों का परिणाम माना हैं|”[1] नाटक का अभिन्न अंग है नृत्य| नाटक के क्षेत्र में पहले ऐसा होता था की छोटे छोटे कथात्मक नृत्यों को भाव प्रधान करते हुए नाटकीय रूप से प्रस्तुत करता था|

नृत्य के साथ नाटक का प्रस्तुतीकरण एक दम मनोरंजक होता था| लेकिन बाद में नृत्य की प्रधानता थोड़ी कम होने लगी| लोकनाट्य शैलियों में नृत्य का अभाव कभी होता नहीं है| लोकनाटय शैलियाँ जनसाधारण के मनोरंजन के लिए प्रस्तुत की जाती है इसलिए उसमें नृत्य तो अवश्य रहेगा| भारत में हर एक राज्य का अपने अपने स्थानीय लोकनाट्य होते हैं, और उसकी अपनी स्थानीय विशेषतायें होती हैं|

भारत की प्रमुख नृत्य प्रधान लोकनाट्य रूपों में आंध्र के पहाड़ी आदिवासियों का कुरवन्जी, बिहार का संगीत नृत्य प्रधान नाट्य रूप विदेशिया,

[1] डॉ. एम. वि. विष्णु नम्पूतिरी, नाडोडी विज्ञानीयम – पृ : 163

असम का नृत्य – सौंदर्य प्रधान लोकनाट्य अंकिया, व्रज मंडल का नृत्य प्रधान लोकनाट्य रूप रास, बंगाल के मेमन सिंह् जिले का नकाब, मिथिला का कीर्तनिया, गुजरात का सुप्रसिध्द लोकनाट्य भवाई, उत्तर बिह्रार का जट-जटिन और छो – नाच आदि| इसमें छो नाच नाट्य में नृत्य की अधिक प्रधानता है| इस की नृत्य प्रधानता के बारे में डॉ. शैलजा भारद्वाज का मानना है –"छोटा नागपूर में प्रसिध्द नृत्य छो-नाच, जिसमें अभिनेता धार्मिक पात्रों के मुखौटे लगा कर नृत्य के साथ नाटकीय भंगिमाएं भी करती है| यह भी पौराणिक कथाओं पर आधारित होते है| इन्हें भी लोकनाट्य से प्रभावित नृत्य ही माना जाएगा|"[1]

संगीत प्रधान लोकनाट्य :- संगीत और नाट्य दोनों का मेल मिलाव तो बहुत ही प्राचीन है| कथा को सरल बनाने और उसे दर्शक तक पँहुचाने के लिए नाटक में अवश्य ही संगीत की आवश्यकता है| लोकनाट्य मनोरंजन के साधन होने के कारण उसमें मन बहलाने वाले संगीत की प्रधानता अधिक होती हैं| संगीतात्मक प्रस्तुति लोकजीवन में लोकप्रिय है| लोकनाट्य में मुख्यतः संगीत की विविध रूप जैसे शास्त्रीय संगीत, गजल, कव्वाली और लोकसंगीत आदि आते हैं| राजस्थान के शेखावाटी संगीत प्रधान लोकनाट्य है और महाराष्ट्र का तमाशा, तमिलनाडु का गेय नाट्य रूप तेरुक्कूत्तु आदि इसके अंतर्गत आते हैं|

[1] शैलजा भारद्वाज - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक साहित्य में लोकतत्व - पृ : 18

स्वांग प्रधान लोकनाट्य :- साधारणतः लोकनाट्यों में धार्मिक कथायें आधार बनती हैं| अनेकों प्रसिध्द लोकनाट्य धार्मिकता के रंग में रंगे हैं| स्वांग प्रधान लोकनाट्य माने क्या हैं? स्वांग प्रधान लोकनाट्य धर्म या किसी पौराणिक कथाओं से सम्बंधित शैली नहीं है| बल्कि यह तो आम आदमी की कहानी हैं| आम आदमी के जीवन से सम्बंधित उनके रोजमर्रा के जीवन में घटित घटनाओं से सम्बंधित, सुखद, दुखद जीवन शैली पर आधारित कथायें स्वांग प्रधान लोकनाट्य में खेली जाती हैं| कथा जीवन से प्रभवित होने से कथा के प्रति लोंगों का अनुराग भी बढता हैं, यह स्वांग की मूल विशेषता है| डॉ. शैलजा भारद्वाज का कहना है –"इसकी नाटकीय योजना भारतीय कथा वर्णन के ढाँचे के अनुसार है कि वक्ता और श्रोता, अभिनेता और दर्शक इस कथा खंड के या उस नाटकीय प्रदर्शन के अविभाज्य अंग बन जाते हैं|"[1]

इसका प्रदर्शन बहुत ही सीधे-सादे ढंग से किया जाता है| और सामूहिक विनोद का साधारण-सा अवसर प्रदान करता है| सादगी और सहजता स्वांग की विशेषता है| और ये जनता के व्यावहारिक जीवन से संबंध रखते हैं| प्रस्तुति में इतने सादापन होते हुए भी नाटक के सभी तत्व इसमें विद्यमान रहते हैं| श्री शैलजा भारद्वाज इसके प्रस्तुतीकरण के बारे में लिखती है – "कहानी से कथानक मिल जाता है, तीखी और चुटीली नकले करती है जो अनुकरण कला का श्रेष्ठ दृश्य प्रस्तुत करती हैं| मानव व्यवहार को विकृत और अतिरंजित रूपों में प्रस्तुत

[1] शैलजा भारद्वाज - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक साहित्य में लोकतत्व -पृ : 18

किया जाता है, झलकियों और पहेलियों के अत्यंत रोचक प्रसंग आते है ”[1] व्रज प्रदेश का ‘भगत’ नामक लोकनाट्य स्वांग प्रधान है इसके साथ ही उत्तर प्रदेश का ‘नकल’, हिमाचल प्रदेश का ‘करियाला’, हरयाणा का ‘स्वांग’, गुजरात का ‘भवाई वेश’, उत्तर बिहार का ‘जट-जटिन’, राजस्थान का ‘बहुरूपिया’ आदि लोकनाट्य इसी वर्ग में आते हैं| ‘स्वांग’ जनसाधारण की अपनी कथा होती है और मन को छू लेने वाली होने से शताब्दियों तक जनमानस में जीवित रहने की क्षमता रखता है|

हास्य प्रधान लोकनाट्य :- नाटक में बहुत प्राचीन काल से ही व्यंग्य प्रस्तुतीकरण के लिए एक विशेष पात्र रहा है| लोकनाट्यों को मनोरंजक बनाने में इस पात्र की भूमिका बहुत आवश्यक थी| आम तौर पर विदूषक इस प्रकार हास्य प्रधान पात्रों की भूमिका निभाते हैं| लोकनाट्यों की विशेषता के अनुसार विदूषक का नाम कभी कभी बदलता रहता है जैसे तेरुक्कुत्तु लोकनाट्य में विदूषक को ‘कोमाली’ कहते हैं| लोकनाट्यों में हास्य प्रस्तुतीकरण के लिए मुख्य कथा के साथ-साथ उपकथायें भी प्रस्तुत करते हैं ताकि एक व्यंग्यात्मक माहौल प्रस्तुत हो जाये| आन्ध्र के पहाड़ी आदिवासियों की कुंरवंजी, तमिलनाडु के तेरुक्कूत्तु, उत्तर प्रदेश के नकल, महाराष्ट्र की गोंधल, कश्मीर का लोकनाट्य ‘भांड पोथिर’ आदि भारत की प्रमुख हास्य प्रधान लोकनाट्य रूप है|

---

[1] शैलजा भारद्वाज - स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक साहित्य लोकतत्व -पृ : 19

इस प्रकार नृत्य, संगीत, स्वांग, एवं हास्य प्रधान लोकनाट्यों के अलावा खास तौर पर मेले और त्योहारों में धार्मिक कथा पर आधारित लोकनाट्य होता है| भारत कथा पर आधारित लोकनाट्य भी प्रतुत होते हैं| भारत देश में इस प्रकार धार्मिक कथा पर आधारित कई लोकनाट्य मिलते हैं| जिनमें मिथिला के कीर्तनिया, उत्तर कर्नाटक का बयलार, तंजौर का 'दशावतार', राजस्थान का 'गन्धर्वी ख्याल', तमिलनाडु का तेरुक्कूत्तु, बंगाल का 'जात्रा', कर्नाटक का 'दोडडाता', उत्तर प्रदेश का 'रामलीला', मेवाड़ का 'गवरी'आदि प्रमुख हैं|

भारत के प्रमुख लोकनाट्य

मानव जीवन की भांति ही लोकनाट्य अत्यंत प्राचीन है| यह हमारी नाट्य परम्परा का मूल उत्स है प्रत्येक देश की अपनी लोकनाट्य परम्परा है| उसी प्रकार भारत की भी अपनी एक विशेष प्रकार की लोकनाट्य परम्परा है| अनेक राज्यों एवं प्रान्तों तथा अंचलों में बंटे भारत में अनेक लोकनाट्य शैलियाँ प्रचलित हैं किंतु कहीं न कहीं उसकी विभिन्नता में भी एकता दिखाई पड़ती है| विभिन्नता में एकता के बारे में रमा शर्मा का कहना है –"लोकनाट्य चाहे उत्तरी भारत के हो या दक्षिण भारत के, आन्तरिक रूप से सभी लोकनाट्य समान रचना तत्वों और सौन्दर्य से परिपूर्ण होते हैं और उनमें आम आदमी को उसके

जीवन की गति और उनमें लय को यहाँ तक कि आधुनिकता बोध तक को विन्यस्त किया जा सकता है-"[1]

लोकनाट्य की विभिन्न शैलियाँ हैं जिनमे कुछ धार्मिक लोकनाट्य है, कुछ लौकिक सामाजिक, कुछ नृत्य प्रधान है और कुछ संगीत प्रधान, इस प्रकार इन सारे तत्वों से युक्त भी अनेक लोकनाट्य मिलते हैं|

रामलीला

भारतीय लोकधर्मी परम्परा में लीला नाटक प्रमुख आधार स्तंभ है, जहाँ रामलीला और रासलीला प्रमुख हैं| महाकवि तुलसीदास ने रामलीला का श्रीगणेश किया और रामलीला मर्यादापुरुषोत्तम राम के जीवन की विविध झाँकियाँ प्रस्तुत करती है रामलीला एक धार्मिक अनुष्ठान है, इसमें विशेष कर्मकांड का विधान होता है, दिव्य चरित्रों का वरण और पूजन किया जाता है| रामलीला एक लोकप्रिय कथा है इस लोकप्रियता के कारण इसका मंचन अनेक लोकनाट्य शैलियों में किया गया है|

मूलकथा तो वही होगी पर प्रस्तुतीकरण में थोड़ी भिन्नता रहेगी| पूरे भारत देश में ही नहीं विदेशों में भी इसका प्रचार प्रसार है| दक्षिण पूर्व एशियाई देश में इसका खूब प्रचार हुआ है| अपने देश के उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार आदि में यह लीला नाटक बहुत लोकप्रिय है| सर्वप्रथम मिथिला, बनारस,

अयोध्या इसके प्रधान केन्द्र हैं| जहाँ तक इसकी उत्पत्ति का या उत्भव का प्रश्न है उसके बीज अनेक स्थानों एवं ग्रंथों में दृष्टिगोचर होते हैं| वर्तमान में देशभर में रामलीला की जो प्रस्तुति होती है उसकी आधारशिला गोस्वामी तुलसीदास ने डाली थी| "तुलसी की रामलीला के पूर्व भी रामकथा का गायन और राम के चरित्र के नाट्य स्वरूप भारतीय समाज में मौजूद थे| वाल्मीकि रामायण में लव-कुश रामकथा का गायन करते थे| कुछ विद्वानों का मत है कि लवकुश कोई लाविकुश थे अभिनेता भी थे| महाभारत में तथा हरिवंश पुराण में राम के चरित्र को लेकर नाटक का उल्लेख है| भवभूति का 'उत्तर-रामचरित' नाटक तो मंचन के लिए ही लिखा गया| तमिल रामायण, रंगनाथ रामायण (तेलुगु) रामचरित (मलयालम), राम गीतगोविन्द, गीता राघव और संगीत रघुनन्दन आदि ग्रंथों से रामचरित की व्यापकता का अंदाज होता है|"[1]

रामलीला का मंच आडंबरहीन होता है| कभी एक मंच पर पूरी रामलीला की जाती है और कभी-कभी प्रसंग के अनुसार अलग-अलग स्थानों पर अभिनय होता है| रामलीला में मुख्य रूप से रामकथा के धनुष यज्ञ का दृश्य, सीता स्वयंवर, परशुराम-लक्ष्मण संवाद, रामवनगमन, सीताहरण, लंका दहन, अंगद–रावण संवाद, लक्ष्मण मेघनाद युद्ध, राम रावण युद्ध, भरत मिलाप आदि दृश्यों का प्रदर्शन होता था यानी रामलीला का रंगमंच अपने ढंग का यथातथ्यवादी रंगमंच है| अधिकतर रामलीला का रंगमंच खुले मैदान में बनाया जाता है|

[1] हरीश अग्रवाल, नाटक के सौ बरस, पृ : 266

रंगमंच के बारे में डॉ. कुंदनलाल उप्रेती का कहना है – “इसके लिए मंच एवं प्रेक्षागृह की आवश्यकता नहीं होती वरन् भिन्न भिन्न स्थानों पर अपेक्षित दृश्य के अनुकूल वातावरण से लाभ उठा लिया जाता है| यहाँ तक कि वनवास का अभिनय भी मंदिरों में कर लिया जाता है| गंगापार के लिए नगर के किसी जलाशय को चुन लिया जाता है|”[1]

रामलीला के पात्र कथानुसार धार्मिक होते हैं| राम लक्ष्मण सीता आदि के लिए कम उम्र के ब्राह्मण बच्चों को चुन लिया जाता है| इन अभिनेताओं को ‘स्वरूप’ कहा जाता है और इन्हें बड़ी श्रद्धा से देखा जाता है| रामलीला में सूत्रधार के रूप में ‘व्यास’ उपस्थित होते हैं और वही पुरे कथानक का संचालन करते हैं| काजल, चन्दन, रोली, मुर्दासंगी, पाऊडर, शख, खडिया आदि मेकअप किया जाता है| राम-लक्ष्मण-सीता के साथ-श्रृंगार पर विशेष मेहनत की जाती है| भाषा स्थानीय रंग के अनुसार होती है, वैसे भी रामलीला में संवाद तो अलिखित होते हैं|

इसमें संगीत के लिए तबला, हारमोनियम, मंजीर, आदि का उपयोग किया जाता है, और दोहा एवं चौपाई के उपयोग से प्रस्तुतीकरण किया जाता है| पारंपरिक रामलीलाओं में सम्पूर्ण मानस का पाठ साथ-साथ चलता ही है| लेकिन वर्तमान समय में अन्य लोकनाट्यों की भांति इसमें भी परिवर्तन आया है|

[1] डॉ. कुंदनलाल उप्रेती, लोकसाहित्य के प्रतिमान, पृ : 185

रासलीला

ब्रज मंडल का नृत्य, संगीत प्रधान लोकनाट्य रूप है रासलीला| नृत्य, गीत, वाद्यसंगीत का अपूर्ण समावेश इसमें होता है| रासलीला की उत्पत्ति के बारे में कई कथायें प्रचलित है| डॉ. चतुर्भुज का कहना है –"ब्रज की गोपियों के साथ भगवान् कृष्ण के लिए गये कौतुक का प्रदर्शन आम तौर पर 'रासलीला' के रूप में जाना जाता है| एक कथा है कि राधा और अन्य गोपियों के अंहकार से क्षुब्ध होकर कृष्ण लुप्त हो गये| गोपियाँ व्याकुल हो गयी और उनकी याद में उनकी लीलाओं की नकल करने लगी| बाद में कृष्ण आये और रासलीला की उत्पत्ति हुई कुछ लोग रासलीला की उत्पत्ति मणिपुरी नृत्य से भी मानते हैं| पार्वती के अनुरोध पर शिवजी ने कृष्ण से रासलीला दिखाने के लिए कहा| कृष्ण ने लगातार सात दिन और सात रात तक रासलीला दिखायी जिसे देखने देवगण भी पधारे थे|"[1]

रासलीला के 'रास' शब्द की उत्पत्ति के बारे में भी कई मतभेद प्रचलित है| कोई रास को रसों का समूह कहता है तो कोई नृत्य, अभिनय, और संगीत के द्वारा रस सृष्टि को रास कहता है| डॉ. नीना शर्मा लिखती है –"भरत मुनि ने भी अपने नाट्यशास्त्र में 'रासक' शब्द का प्रयोग किया है| रास के संबंध में कई मत प्रचलित हैं| गुजरात में 'रास' नामक एक नृत्य भी होता है जो अक्सर दण्डों

[1] डॉ. चतुर्भुज - भारतीय और विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास, पृ : 139

(दांडिया) की सहायता से किया जाता है| इसके अतिरिक्त कई रास ग्रंथों की रचना भी हुई है| जिनमें हिन्दी के प्रथम रास के रूप में भरतेश्वर का 'बाहुबली रास' को माना गया है| 'लीला' शब्द क्रिया रूप है| 'रासलीला' का मुख्य एवं प्रचलित अर्थ कृष्ण की जीवनपरक लीलाओं के मंचन से है|"[1]

लीला के पात्रों को 'स्वरूप' कहते हैं| रासलीला में नायक कृष्ण के अलावा राधा, गोपियाँ, यशोदा, नन्द, कंस आदि भी घटनाओं के अनुरूप आते हैं| विदूषक को 'मनसुखा' कहते है| इसके पात्र को 'रासधारी' भी कहती हैं| वह हास्यरस की वृष्टि करता है और गोपियाँ उसे छेडती है| रासलीला में पद्य अधिक एवं गद्य कम होते हैं| सबसे बड़ी विशेषता तो संगीत है| -"संगीत के बिना रास की परिकल्पना नहीं की जा सकती| लीला साहित्य का आधार ही छंद विधान है| इन लीलाओं में ध्रुपद, ठुमरी आदि विशिष्ट गायकी से संपन्न रचनाओं का उपयोग किया गया है| वहाँ इसमें भक्ति साहित्य के प्रमुख छंद कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठ,चौपाई और पद रचनाओं के अतिरिक्त छप्पय और कुण्डलियाँ आदि छन्दों का प्रमुख स्थान है| दोहा और रोली के सहयोग से निर्मित भक्त कवियों की अनेक पद रचनाएँ भी रासमंच पर सुनी जाती है|"[2] - इस कथन से अनुपम जी का तात्पर्य यह है कि रासलीला में संगीत एक अभिन्न अंग है|

---

[1] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 29

[2] अनुपम आनंद, नाटक के सौ बरस, पृ : 220

रासलीला के पात्रों की वेशभूषा श्रृंगार सज्जा भी वृज संस्कारों के अनुरूप रासमंच की आवश्यकताओं पर निश्चित की गई जान पड़ती हैं| रासलीला के प्रमुख पात्र पयजमियाँ पहनते हैं ऊपर रंग-बिरंगी कटि-काछनी बाँधकर अंग में चोली धारण करते हैं| हाथ में वंशी, पीठ पर लहराती बनावटी चोटी, सिर पर मुकुट, नाक पर 'बेसर' और बुलाक धारण कराई जाती है| कुंडल, मोती की माला इस प्रकार आभूषणों की एक लम्बी कतार होती है| लीला के पात्रों की मुखसज्जा के लिए चन्दन चूर्ण में रोली मिलाकर करते हैं| इस प्रकार पात्रों की वेशभूषा और मेकअप भी बहुत ही भड़कीला और चमकीला होती है| रासलीला की भाषा मुख्यतः व्रज होती है| इसमें अभिनय से अधिक संवाद की प्रधानता होती है| संवाद भी पद्य में होते हैं| इसमें हारमोनियम, ढोलक, मंजीरा आदि का उपयोग संगीत के लिए किया है| इसका मंच साधारण होता है जो तीनों ओर से खुला होता है| किसी चबूतरे या गाँव की चौपाल पर भी किया जा सकता है|

रासलीला के अंत में कृष्ण राधा की आरती जमारी जाती है और इसके बाद समापन होता है तथा बाद में प्रसाद बाँटा जाता है| वर्षों से चले आ रही रासलीला के प्रति लोगों के मन में वही आस्था है जो पहले था| डॉ. व्रजवल्लभ मिश्र के अनुसार – "आज भी व्रजरास में उन्हीं प्राचीन परंपराओं का प्रयोग हो रहा है| रास में काम करने वाले अधिकांश पात्र प्रशिक्षित होते है| वे स्वयं अपनी मुख-सज्जा कर लेते हैं, स्वयं वेश भूषा कर लेते हैं, मंडली के हर व्यक्ति को

परंपरागत रूप से रास के हर अंग का ज्ञान होता है|"[1] माने रासलीला का खेल आज भी परंपरा पर अधिष्ठित है|

नौटंकी

नौटंकी उत्तर भारत में बहुत लोकप्रिय है| इसे स्वांग, संगीत और भगत भी कहते हैं| नौटंकी नामकरण को लेकर आज भी विद्वान लोग एकमत नहीं है| डॉ. चतुर्भुज के अभुसार – "नौटंकी और नवंटकार शब्दों से भी इसका सम्बन्ध बताया जाता है|"[2]

नौटंकी एक प्राचीन लोकनाट्य रूप है| नौटंकी की प्राचीनता पर डॉ. नीना शर्मा का कहना है – "अधिकांश कलाकारों एवं विद्वानों का मानना है कि पंजाब की विख्यात कोमलांगी राजकुमारी नौटंकी के जीवनवृत पर आधारित सांगीत "नौटंकी शहज़ादी" जो प. नथाराम गौड़ की मण्डली द्वारा खेला गया था| वह इतना लोकप्रिय हुआ कि लोग इसे नौटंकी नाम से ही संबोधित करने लगे| नौटंकी नामकरण में नक्कारा पर नौ प्रकार के टंकारों की प्रतिध्वनि भी समाहित जान पडती है| नौटंकी मात्र 90 वर्ष पुरानी है| परन्तु स्वांग परंपरा की ही एक शैली होने के कारण यह अत्यन्त प्राचीन है|" [3]

[1] डॉ. व्रजवल्लभ मिश्र, गगनाञ्चल, वर्ष, 32 अंक 1, रासलीला का नया इतिहास, पृ : 37

[2] डॉ. चतुर्भुज, भारतीय और विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास, पृ : 162

[3] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 29

ग्रामीण जनता के लिए नौटंकी उनका अपना खेल है जो सदियों पुरानी है| सदियों से नौटंकी ग्रामीण जनता का मनोरंजन करती आ रही है| नौटंकी का मूल उत्स उत्तरप्रदेश ही रहा है| इसके अलावा कानपुर, हाथरस, लखनऊ आदि क्षेत्रों में भी नौटंकी काफी प्रचलित है| उत्तर प्रदेश में प्रचलित नौटंकी का पूर्व रूप स्वांग या भगत में दिखाई देता है| ऐसा भी मानना है कि मथुरा की भगत परम्परा हाथरस में स्वांग हुई और कानपुर में यही स्वांग नौटंकी कहलाया गया| नाम में काफी भिन्नता होने के बावजूद नौटंकी मूल रूप से एक ही है जिसके बारे में डॉ. वशिष्टनारायण त्रिपाठी का कहना है –"ख्याल, नौटंकी, भगत और नौटंकी में वास्तु और संरचना की कुछ भिन्नता के बावजूद उस आंतरिक साम्य के लिए गुंजाइश दिखाई देती है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि इन नाट्यविधाओं के स्त्रोत निश्चित से समान है तथा अलग अलग नाम मिला है |"[1]

अन्य लोकनाटकों की भाँति नौटंकी का शिल्प भी रूढीगत है| इसमें धार्मिक, पौराणिक, तथा श्रृंगारी प्रेमाख्यानक कथाओं को महत्व दिया जाता है| पहले नौटंकी में मंगलाचरण गाया जाता है| मंगलाचरण के बाद 'रंगा' नौटंकी की कथा के स्थान, समय, नायक एवं उससे संबन्धित पात्रों का वर्णन कर कथा का प्रारंभ करता है और बीच बीच में कथासूत्र को जोड़ता चलता है| नौटंकी के सभी पात्र सबके जान पहचान के दायरे में आते है और अभिनय की पूरी स्वतंत्रता रखते हैं| नौटंकी में आवश्यक नहीं कि पात्र एक ही भूमिका करे

[1] डॉ. वशिष्ठनारायण त्रिपाठी - भारतीय लोकनाट्य, पृ - 128

क्योंकि दर्शक इस बहुरूपिएपन के अभ्यस्त होते हैं| उन्हें कोई उलझन नहीं होती| नौटंकी की मंच योजना में किसी विशेष प्रकार का आडंबर नहीं होता, उसकी आवश्यकता भी नहीं है| किसी खुली जगह पर तख्त डालकर अभिनय होती है| चारों और दर्शक बैठते हैं| 'नगाडा' जो नौटंकी का पर्याय सा माना जाता है जिसकी आवाज़ सुनते ही लोग कोसों कर नौटंकी देखने आते हैं| नौटंकी में अभिनय के साथ पात्र घूम-घूमकर संवाद बोलते रहते हैं ताकि हर दिशा के लोग सुन सके| नौटंकी में पर्दा या दृश्य परिवर्तन के लिए यवनिका की आवश्यकता नहीं है| इस प्रकार सीधा और सरल मंच ही नौटंकी का परम्परागत मंच है|

नौटंकी विधा गायिका प्रधान है| नौटंकी में भाग लेने वाले कलाकारों के लिए संगीत साधना आवश्यक है क्यूंकि नौटंकी का आधार ही संगीत है| नौटंकी का अपना एक अलग छंद विधान है जहाँ हर एक छंद का प्रयोग विभिन्न मनस्थितियों को प्रस्तुत करने के लिए होता है| कथानक के विस्तार के लिए चौबोला गति संतुलन के लिए बड़ी बड़ी सूझ के साथ दौड़, सुख, शोक व विनाश के लिए लावनी, कलाड्डा, सोहनी आदि का प्रयोग करते है| उसी प्रकार समझाने बहकाने के लिए दादरा, मांड, बहरकव्वाली और वीरता प्रकट करने के लिए आल्हा वीर छंद आदि प्रयोग में लाते है| वीर रस के साथ ही हर नौटंकी में हास्य का बाहुल्य भी होता है| विदूषक अपनी चेष्टाओं और अटपटे संवादों से दर्शकों को हंसाता भी है और सामाजिक कुरीतियों अथवा अत्याचारों पर व्यंग्य भी

करता है| इस तरह नौटंकी का मंच लोकनाट्य परंपरा की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है| लेकिन आजकल परम्परा से हटकर कुछ बदलाव नौटंकी में आया है| पुराने कथानकों पर नौटंकियाँ देखकर ऊब चुके हैं| पहले से ही नौटंकी को साहित्यिक प्रतिष्ठा नहीं मिली है और इसकी सुगठित मंडलियाँ भी बहुत कम है| कानपुर और कन्नौज की मंडलियों ने नौटंकी को आगे बढ़ाने में बहुत सा योगदान दिया है| इन दो शहरों और इसके आस पास बसे तमाम गाँवों ने नौटंकी को कई श्रेष्ठ कलाकार दिए है| नौटंकी लेखन के क्षेत्र में आज की प्रतिष्ठित लेखक जुड़े हुए हैं| नौटंकी की लोकप्रियता बढाने के लिए हिन्दी नाटक क्षेत्र में कई नाटक नौटंकी शैली में लिखे गये हैं| बकरी, आला अफसर और एक सत्य हरिश्चन्द्र आदि इसके लिये उदाहरण है|

अंकिया

संगीत नृत्य और काव्य इन तीनों के अद्भुत प्रयोग से विख्यात आसाम का अंकिया धार्मिक भावनाओं से संबंध एक प्रमुख लोकनाट्य है| यह एक रात्री नाट्य है| एक अंकि होने के कारण इसका नाम अंकिया पड़ा है| असम का अंकिया श्रीकृष्ण लीलाओं और विविध प्रसंगों में प्रस्तुत करने में लोकप्रिय है इसके साथ ही रामकथाओं को भी इसमें स्थान मिला है| इसको मठ-नाट्य भी कहते है| डॉ. शैलजा भारद्वाज का कहना है –"वैष्णव मठों की स्थापना के साथ साथ प्रत्येक मठ ब्रह्मचारी के लिए जो सामान्य नियम निर्धारित थे उनके एक नियम अंकिया नाटक में भाग लेने का था| अंतः अंकिया एक प्रकार से असम के

मठों में प्रदर्शित होने वाला मठ-नाट्य है| अंकिया के रूप उद्भव एवं विकास की प्रक्रिया में श्री शंकरदेव का नाम लिया जाता है|"[1] शंकरदेव जी द्वारा लिखित सीता स्वयंवर, रुक्मणीहरण, कालीयमर्दन, पारिजातहरण आदि आंकिया पर आधारित प्रमुख लोकनाट्य रूप है| अंकिया में प्रमुख से धार्मिक पात्र होते हैं| सूत्रधार पारम्परिक प्रभाव लिए होते हैं| अंकिया की रूपसज्जा एकदम चमकीली होती है| राजा राणी आदि मुकुट धारण करते हैं| पायजामा, धोती, पगड़ी आदि के साथ अस्त्र, शस्त्र, गदा, खड्ग एवं चक्र का उपयोग भी पात्रानुकूल किया जाता है| अंकिया में नांदीपाठ और नाटक समाप्त होने पर भरतवाक्य के सदृश्य मंगलगान भी होते हैं|

यह एक नृत्य संगीत प्रधान नाट्यशैली होने से इसके पात्र अपनी बात को गीत एवं नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं| गद्य संवाद के लिए मैथिली और बंगला से प्रभावित मैथिली भाषा का प्रयोग करते हैं| इसके मंच तीनों ओर से खुला होता है| डॉ. नीना शर्मा का कथन है –"इसका मंच तीन ओर से खुला होता है जिसके नायक एवं नायिका के लिए अलग अलग मण्डप बनाये जाते हैं| इसका मंच 'माओनाघर' कहलाता है|"[2] इसमें परम्परागत एवं शास्त्रीय रूढियों का निर्वाह किया गया है|

---

[1] शैलजा भारद्वाज - स्वातंत्र्योत्तर नाटक साहित्य में लोकतत्व, पृ : 21

[2] डॉ. नीना शर्मा-आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 40

विदेसिया

विदेसिया बिहार का नृत्य संगीत प्रधान लोकनाट्य रूप है| उत्तर प्रदेश, बंगाल आदि क्षेत्रों में भी यह लोकप्रिय है| विदेसिया शैली का मुख्य प्रवर्तक भिखारी ठाकुर थे| विदेसिया शैली में भिखारी ठाकुर की भूमिका के बारे में डॉ. शैलजा भारद्वाज कहती है| -"भिखारी ठाकुर ने अपनी कला, आवाज की लचक गायन की अदायगी से इसे अखिल भारतीय स्तर पर प्रतिष्ठित कर दिया| पिछले पाँच दशकों में नाच के नाम पर जितनी ख्याति भिखारी ठाकुर ने अर्जित की उतनी और ने नहीं|"[1] विदेसिया नाम एक कथा पर आधारित है, 'विदेसिया' मूल नाटक की कथा एक नवविवाहिता की विरह व्यथा है|

इसके पीछे एक प्रचलित कथा यह है कि भोजपुर क्षेत्र के लोग आजीविका की खोज में पूर्व देश में जाया करते थे बाद में वे लोग उस शहर के मायाजाल में फँस जातें थे| वापस न आने पर इधर उसकी माँ, पत्नी, बाप यहाँ तक की जन्मभूमि प्रतीक्षा करते रहते हैं, लेकिन निराशा ही हाथ लगती थी| इस अवसर पर विरहिणि पत्नी रोती हुई अपना सन्देश भिजवाती थी| फिर वह सभी बन्धनों को काटकर घर वापस आना था तो विरह कथा सम्माप्त होती है| विदेसिया में अन्य विषय भी प्रस्तुत करते हैं| समाज की सारी कुरीतियों को समाने लाने के लिए विदेसिया में नाट्य प्रस्तुत करते हैं| भिखारी ठाकुर को

[1] शैलजा भारद्वाज - स्वातंत्र्योत्तर नाटक साहित्य में लोकतत्व, पृ : 21

मानव हृदय का गहरा अनुभव था, जिसमें उस शैली में फिल्म भी बने हैं, राष्ट्रीय स्तर पर आज विदेसिया की बहुत बड़ी पहचान है|

विदेसिया एक गीतात्मक नाटयशैली है, इसके गायन का अंदाज भी बहुत ही कर्णप्रिय और रंगमंचीय होता है| शब्दों पर जोर एवं ठकराव से भरे गायन शैली में कोरस का बहुत बड़ा महत्त्व था| कोरस को 'समाजी' कहा जाता था| गीतों के साथ नृत्य का भी अच्छा मिश्रण विदेसिया में पायी जाती है| अभिनेताओं की रूप सज्जा के लिए शंखी, पाऊडर, काजल एवं पाऊडर का इस्तेमाल करते हैं| सामान्यतः अभिनेता लोग मिरजई, धोती एवं पगड़ी की उपयोग करते हैं| स्त्री पात्रों के लिए साडी-ब्लाउज का उपयोग करते हैं इसके अलावा जोकर कुछ अटपटा-सा कपड़ा पहन लेता है| इस शैली में साधारण: पुरुष कलाकार ही स्त्री चरित्रों का अभिनय करते हैं| मगर ऐसा बिलकुल नहीं है कि महिला कलाकारों की भागीदारी वर्जित है| विदेसिया की प्रस्तुतीकरण प्रक्रिया कुछ अलग होती है| कुमार विभूषण के अनुसार –"विदेसिया की प्रस्तुति प्रक्रिया बहुत ही सम्पादित होती है| सर्व प्रथम वाद्य यंत्र भी बजते हैं| यह कुछ अन्तराल तक चलती है जो नाट्य भंजन के उपयुक्त दर्शकों की मनोदशा का निर्माण करती है| उस संगीत के बाद जोकर आता | हास्य पैदा करता है और सूत्रधार की भाँती नाट्यदल एवं नाटक के कथासार से दर्शकों का परिचय करता है| सभी कलाकार मंच पर आकर वन्दना करते हैं, जिसमें सभी देवताओं, प्राकृतिक शक्तियों (आग, पानी, हवा आदि) चारों दिशाओं की वन्दना होती है|

नाटक के अंत में पुनः सभी कलाकार नाचते-गाते दल के परिचय से संम्पन करते है"[1]- इस प्रकार मंच प्रस्तुतीकरण के लिए एक खास ढंग होते है| विदेशिया का मंच चार छः चौकियों को ताककर बनाया जाता है| तीन और दर्शकगण होंगे| नाटक शुरू होते ही अभिनेता चौकियों से बने मंच पर एक अजीब सी ध्वनी पैदा करते हुए कूद-फांदकर आते हैं| इसी कारण विदेसिया का नाम 'चौकितोड़' भी है|

विदेसिया में नृत्य स्वाभाविक रूप से अलग उछल-कूद के साथ प्रस्तुत होते हैं| गायकी में मुख्य रूप से चौबोला, दोहा, सोरठा, पुरबी, बारहमासा, सवैया, खेमता, आल्हा आदि के उपयोग होते हैं| गायकी को और लयबध्द बनाने के लिए तबला, बाँसुरी, झाल, सारंगी, ढोलक आदि का प्रयोग भी किया जाता है|

विदेसिया का पूरा आलेख तो गद्य एवं पद्य मिश्रित होते हैं| विशेष अवसर या प्रत्येक घटना के लिए गद्य का उपयोग और पद्य का उपयोग दोनों बराबर करते रहते हैं| गद्य प्रयोग के बारे में हरीश अग्रवाल का कहना है – "बातचीत, घटना और मनोभाव के सामान्य पक्ष के लिए गद्य तथा इसमें विशेष प्रभाव पैदा करने के लिए एवं दृश्य परिवर्तन के हेतु पद्य का प्रयोग करते हैं|"[2]

---

[1] कुमार विभूषण, नाटके के सौ बरस, पृ : 266

[2] कुमार विभूषण, नाटके के सौ बरस, पृ : 268

विदेसिया से भिखारी ठाकुर ने काफी लोकप्रियता हासिल की| उसी प्रकार विदेसिया का नाम भी भिखारी ठाकुर के बिना लेना संभव नहीं रहा| भिखारी ठाकुर मंच संचालन के अलावा अभिनय का काम भी करते थे| - "भिखारी ठाकुर एक कुशल अभिनेता भी थे| वे जन्मजात विदूषक थे| नृत्य और गायन में भी निपुण थे| ये रामकृष्ण के अनन्य भक्त थे उत्तम कोटि के कवि थे| उनको लोकसंवेदना की गहरी पकड़ थी|"[1]

कीर्तनिया

मिथिला के नृत्य प्रधान लोकनाट्य रूप है 'कीर्तनिया'| यह धार्मिक मंच के रूप में लोकप्रिय है| कीर्तन शब्द तो भगवद् स्मरण के लिए प्रयुक्त होता है| इसलिए ही इसका नाम कीर्तनिया पड़ा क्यों कि यह नाट्यरूप तो कीर्तन पर आधारित है| इसके कथानक धर्मप्रधान होते हैं| जिनमें कृष्ण एवं शिव लीलाओं का गायन होता है| धार्मिक धरातल पर आधारित होने से ही यह नाट्य ज्यादा लोकप्रिय नहीं है|

कीर्तनिया शैली मिथिला में लोकप्रिय है| इसकी परम्परा राजवंशी है| कीर्तनिया के पात्र धार्मिक होते हैं| मुख्य अभिनेता 'नायक' होते हैं| विदूषक को 'विकटा' बोलते हैं| प्रस्तुतीकरण के बारे में डॉ. चतुर्भुज लिखता है –'विकटा' विदूषक होता है जो 'पारिजात हरण' नाटक का परिचय देता है| नायक विदूषक

---

[1] डॉ. चतुर्भुज - भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास, पृ : 172

में कुछ हँसी मजाक की बातें होती हैं| फिर 'गणेश-सुमिरण' होता है| जब राधिका जी सखियों के साथ आकर रास नृत्य करती है|"[1]

कीर्तनिया में पद्य की प्रधानता होती है| बीच बीच में गद्य संवाद होते हैं| कीर्तनिया शैली पर लिखे गये कुछ नाटक हैं, 'आनंद विजय' (रामदास झा), उषा हरण (देवानंद), पारिजात हरण (उमावति उपाध्याय) आदि|

नकाब

यह एक नृत्य प्रधान लोकनाट्य है| यह बंगाल की मेमनसिंह जिले की लोकशैली है| नकाब में अवतारों स्वरूपों को धारण करके नाटक प्रस्तुतीकरण होता हैं| मुख्य रूप से शिव के स्वरूप को धारण करता है| नृत्य प्रधान नाटक होने से पद्य या गीतों का महत्व है| इसका मंच साधारण सा होता है|

नकाब में मुख्य पात्र किसी देवता का चरित्र प्रस्तुत करता है| कथा के अनुरूप अन्य पात्र होते हैं| वस्त्र योजना में पात्र कमर में लाल वस्त्र, गले में माला तथा सिर पर जटा-जूट धारण करते हैं|

वाद्य गीत के लिए 'ढांक' का इस्तेमाल नकाब में होता है| जिसकी थाप पर नृत्य का प्रारंभ होता है| धार्मिक धरातल पर आधारित यह लोकनाट्य ज्यादा लोकप्रिय नहीं है|

[1] डॉ. चतुर्भुज - भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास, पृ : 172

ख्याल

राजस्थान में अत्यंत प्रचलित लोकनाट्य रूप है ख्याल| ख्याल में राजस्थान की स्थानीय संस्कार झलकती है| राजस्थान में अन्य लोकनाट्य भी प्रचलित है जहाँ ख्याल की लोकप्रियता अधिक है| किंतु वास्तविकता यह है कि ख्याल राजस्थान की उपज नहीं है| ख्याल का प्रारंभ आगरा में हुआ और लोक कलाओं का माध्यम बन गया| आगरा में उदित यह लोकनाट्य राजस्थान के रंगों में रंग कर राजस्थान का बन गया| ख्याल के उदय के बारे में डॉ. कुंदनलाल उप्रेती का कहना है – "25वीं शताब्दी के आसपास आगरा के समीपवर्ती क्षेत्रों में एक नई कविता शैली प्रचलित हो चली थी जो आगे चलकर 'ख्याल' के नाम से प्रसिद्ध हुई|"[1] मतलब ख्याल की जन्मभूमि आगरा और उसके आसपास का क्षेत्र रही है| ख्याल एक प्राचीन शैली है जो पहले काव्य था बाद में रंगमंच पर लाकर नाट्यरूप में प्रस्तुत करने लगे|

विद्वानों के मत में ख्याल के कई रूपभेद है| ख्याल के प्रचलित कई रूपों में नौटंकी ख्याल, कुचामणी ख्याल, माच के ख्याल, हाथरसी ख्याल, मेवाड़ी ख्याल, शेखावटी ख्याल आदि प्रमुख है| ये सब अपने अपने क्षेत्रों में लोकप्रिय है| कुचामणि ख्याल में हास्य पात्र की प्रधानता अधिक है| वर्तमान हिन्दी नाटक क्षेत्र में कुचामणि ख्याल का उपयोग 'दुलारी बाई' नामक नाटक में किया गया है|

---

[1] डॉ. कुंदनलाल उप्रेती, लोकसाहित्य के प्रतिमान, पृ : 173

ख्याल प्रस्तुतीकरण के लिए एक ख्याल केन्द्र होता है जो 'अखाड़ा' नाम से जाना जाता है| एक एक अखाड़े का मुख्य व्यक्ति गुरु होते हैं| ख्याल का मंच तीन प्रकार के होते हैं| सर्वदिशीय, त्रिदिशीय एवं मंडपीय मंच| सर्वदिशीय मंच तीन ओर से खुला होता है|

त्रिदिशीय मंच भी तीन ओर से खुला होता है, मंडपीय मंच जैसे कि नाम से ही पता चलता है वह मंडपनुमा बने होते है| जिसकी सजावट भी गंभीरता से की जाती है| बाँस एवं बल्लियों से सजावट किए जाते है ऊपर से कपडे और फूल का उपयोग भी जिसके लिए करता है| ये सारी सजावटें विशेष ख्याल रूपों के लिए होती है जैसे कुचामणि ख्याल रूप प्रस्तुत करने के लिए इस प्रकार मंच का सजावट गंभीरता से किए जाते हैं| एक और मंच के बारे में भी डॉ. नीना शर्मा जिक्र करती है उनके ही शब्दों में – "अट्टाली मंच नाम से ही भव्यता का भाव पैदा होता है| यह अट्टालिका की तरह ऊँचे बनाये जाते है जो सजावट की प्रमुखता रखते हैं| यह बारह या बीस फूट तक की ऊँचाई लिए हो सकता है| माच के ख्याल नाम से प्रसिद्ध ख्याल मंच की इसी भव्यता से नामकरण पाया है|"[1] इस तरह विविध प्रकार की मंच योजनाएं ख्याल की विशेषता है| इसका मतलब यह नहीं है कि किसी विशेष मंच का होना इसके लिए कोई बंधन नहीं है| गाँव की चौपाल पर भी यह मंचित किया जाता है|

[1] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 25

ख्याल की भाषा मुख्यतः राजस्थानी साथ में मेवाड़ी, मारवाड़ी, गुजराती, आदि स्थानीय बोलियों की प्रमुखता भी रहती है| ख्याल में उर्दू-फ़ारसी का मिश्रण भी पाया जाता | गायकी की प्रमुखता होने से दोहा, चौबोला, छप्पय, कवित्त, झोला, शेर, सवैया आदि छंदों का प्रयोग किया गया है| साथ में राग रंगतों का प्रयोग भी मिलता है| ख्यालों में पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, रोमांस, प्रेम, वीरता, मनोरंजन, सुधारवादी जैसे कोई भी विषय अछूता नहीं है| इस प्रकार ख्याल में राजस्थान की सुदृढ़ परंपरा देखने को मिलती है|

तमाशा

भारत की अनेक लोकनाट्यों में महाराष्ट्र में प्रचलित नाट्यरूप है तमाशा| जो महाराष्ट्र का अतिप्राचीन नाट्य रूप है| तमाशा एक संगीत प्रधान लोकनाट्य रूप है| खासकर इसका मंचन ग्रामीण, पिछड़ी, एवं अर्द्ध सभ्य जनता के मनोरंजन के लिए खेला जाता है| ग्रामीण जनता के लिए 'तमाशा' शब्द खेल के लिए प्रयुक्त होता है| महाराष्ट्र में 'तमाशा' जो एक फ़ारसी शब्द है लोकनाट्य परंपरा के लिए प्रयुक्त होता है|

तमाशा की विशेषताओं के बारे में डॉ.गिरीश रस्तोगी का लिखना है – "वहाँ की जातीय परिवेश का बड़ा तेज़, चुटीला, संगीत प्रधान लोकनाट्य है| समसामयिक, विषयों की प्रखरता, जिन्दादिली, वाक्चातुरी और तत्कालीन आशु

व्यग्य एवं आधुनिक प्रवृत्तियों और प्रसंगों के कारण बड़े समुदाय का आधा है|"[1] तमाशा की उत्पत्ति के बारे में विभिन्न मत प्रचलित है| कन्नड़ में प्रचलित तमाशा से इसका साम्य कहते है| इसके अलावा तमाशा मुग़ल काल में प्रचलित था ऐसा भी माना जाता है| तमाशा की एक बड़ी विशेषता यह है कि तमाशा तुरंत ही शुरू नहीं होता, जिसके प्रारंभ से अंत तक कई स्थितियों से गुजरता है| इसके प्रारंभ में गणेश वंदना होते हैं बाद में अन्य देवताओं की वन्दना होती है| समाप्ति पर 'गौलण' शुरू हो जाता है जिसे नाट्य रूप में प्रस्तुत की जाती है| इसकी समाप्ति पर 'लावणी' शुरू हो जाती है जो तमाशा का एक आकर्षक बिंदु है| लावणी प्रस्तुत करने वाला 'नाच्या' के नाम से पुकारा जाता है जो स्त्री की वेशभूषा में नाचते हुए प्रवेश करता है| उसके बाद तमाशा मुख्य खेल की ओर बढ़ती है जिसे 'वग' कहते हैं| तमाशा के पात्र योजना तो बिल्कुल कथानक के अनुकूल होते हैं| पौराणिक, काल्पनिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि सभी प्रकार के कथानक तमाशा के कथानक बनते हैं| पात्रों की वेशभूषा साधारण सा होता है, पुरुष पात्रों द्वारा ही स्त्री पात्रों की भूमिका निभाया जाता है| इसमें गीत की अधिकता होती है, संगीत के साथ नृत्य भी होते है| संगीत में वाद्य की प्रमुखता भी होते हैं| वाद्य संगीत के लिए तुनतनिया, ढोलक, मंजीरा, मृदंग आदि का प्रयोग करते हैं|

---

[1] गिरीश रस्तोगी, बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ : 20

तमाशा की संवाद शैली पद्यात्मक होती है भाषा मराठी होती है| इसका मंच साधारण होता है| जो तीन ओर से खुला होता है किसी विशेष साजसज्जा की आवश्यकता नहीं होती है| इस तरह तमाशा महाराष्ट्र के जनता के लिए आज भी बहुत लोकप्रिय है|

भगत

व्रजप्रदेश की लोकनाट्य परंपरा की श्रेणी में भगत बहुत ही महत्वपूर्ण नाम है| यह एक स्वाँग प्रधान लोकनाट्य रूप है| भगत के लिए स्वांग,सांग, संगीत, नक्ल, नौटंकी आदि शब्दों का प्रयोग अनेक बुद्धिजीवियों ने किया है| भगत की अपनी अलग एक शैली है जिसके कारण यह बहुत लोकप्रिय है| भगत बहुत ही प्राचीन लोकनाट्य रूप है| भगत के दो रूप भेद है, भडुआ भगत और अखाड़ी भगत के नाम से प्राचीन काल में प्रचलित थे| वर्तमान भगत के बारे में डॉ. चतुर्भुज का कहना है – "वर्तमान भगत का विकास आगरा में पिछले डेढ़ सौ वर्षों में हुआ है| पहली बार इस का प्रयोग 1827 ई. में किया गया| इससे पहले आगरा में भांड-भगत होती थी| यह एक अशिष्ट प्रदर्शन था सन् 1827 ई. में मोती कटरा के जौहरी राय 8-10 संगीत अमरोहा से लाये और इसी वर्ष एक स्वांग (रूपवसंत) का प्रदर्शन हुआ| जौहरी राय ने इसे 'भगत' नाम दिया|"[1]

---

[1] डॉ.चतुर्भुज, भारतीय और विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास, पृ : 174

'भगत' धार्मिक धरातल पर अधिष्ठित लोकनाट्य है| इसके कथानक धार्मिक एवं ऐतिहासिक होते हैं| जैन धर्म कथाएँ, नाथ पन्थ पुराण, रामायण, रामकृष्ण कथाएँ, एवं भक्तों की कथा भी भगत के कथानक बनते हैं|

भगत का कथानक एकदम नवीन एवं ताज़ा होते है| भगत का खेल किसी मंच पर एक बार ही खेला जाता हैं उसके बाद वह पुरानी हो जाता है फिर उसे नये ढंग से प्रस्तुत करना पड़ता है| तब उसकी ताज़गी नज़र आयेगी|

सामान्यतः भगत का मंच आठ फीट ऊँचा होता है| यह चारों ओर से खुला होता है| माच मंच की तरह इसे भी रंग बिरंगी पन्नियों, लाल पीले टुकड़ों, आम के पत्तों की झालरों तथा भांति-भांति के फूलों की वन्दनवारों से सजाया जाता है| विशेष प्रकार का मंच जिसे 'पांड' कहते हैं|

भगत में 'रंगा' नाम के पात्र होते हैं जो घटनाओं की सूचना देते हैं| पात्रों की वेशभूषा बहुत मूल्यवान होते हैं| मतलब वस्त्रों में रत्न, मोती आदि का इस्तेमाल करते है पात्रों की रूपसज्जा भी बहुत कठिन होती हैं| एक पात्र को सजाने के लिए घंटो भर श्रम करना पड़ता है|

भगत में संगीत का भी बहुत बड़ा स्थान है| पात्रों को संगीत में पारंगत होना है| और भगत में विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग भी होता है| भगत का प्रारंभ भेंट गायन से शुरू होता है| भगत के संवादों को 'जवाब' कहते हैं| भगत का सूत्रधार 'खलीफा' (गुरु) कहलाता है| जिसके प्रशिक्षण से ही पात्र मंच पर

आता है| प्रदर्शन के लिए अनेक अनुष्ठान भी करना पड़ता है| आज भी भगत की प्रस्तुतीकरण वही सुदृढ़ परंपरा एवं शैली पर होती है| यही परंपरा भगत को लोकप्रिय बनाती है|

भवाई

गुजरात का सुप्रसिद्ध लोकनाट्य है भवाई| यह गुजरात की ग्रामीण जनता के मनोरंजन का साधन है| भवाई का खेल 'वेश' कहलाता है जो एक साधारण कोटि का लोकनाट्य है| यह खेल रात-भर चलता है| अन्य लोकनाट्यों की भांति भवाई की उत्पत्ति को लेकर अनेक कहानी प्रचलित है|

भवाई के पात्र सामाजिक पात्र होते हैं| इसमें रंगला नाम का एक पात्र होता है जो सूत्रधार का काम करता है| वर्तमान में उसमें रंगली नामक पात्र भी आता है| स्त्री पात्रों की भूमिका पुरुष पात्र निभाते हैं| भवाई का संवाद मुख्यतः पद्य प्रधान है| भवाई में नृत्य की प्रधानता भी पायी जाती है| प्रत्येक पात्र का प्रवेश एवं संवाद नृत्य के साथ ही होता है| गद्य संवाद बहुत कम होता है| भवाई में वाचिक अभिनय की प्रमुखता होती है और इसमें मुख्यतः संवाद की भाषा गुजराती होती है जो अंचल विशेष के रंग में रंगे होते हैं| गुजराती के साथ मारवाड़ी, उर्दू, मालवी आदि का प्रयोग भी कहीं-कहीं हुआ है|

भवाई खेल के प्रारंभ में गणेश वन्दना होती है| गणेश पात्र के लिए ख़ास पहनावा होते हैं| भवाई में पात्रों की वेशभूषा बहुत भड़कीली होती है| वेशभूषा

के लिए लहंगा ओढनी, धोती, चूड़ीदार तथा ऊपर से आदि का उपयोग करते है| भवाई का मंच साधारण सा होता है| यहाँ पर्दो का उपयोग नहीं करता| मंच सीधा सादा होता है जो तीन ओर से खुला होता है| किसी ख़ास साज सज्जा की आवश्यकता नहीं होती| इस प्रकार साधारण सा मंच पर गणेश वन्दना से शुरू होता है| रात भर चलता रहता है हर प्रदर्शन को वेश कहलाता है|

नकल

उत्तरप्रदेश में प्रसिद्ध एक लोकनाट्य रूप है नकल| यह वहाँ के नक्काल-भाड़ों का एक स्वांग प्रधान लोकनाट्य है| इसका प्रदर्शन तो बहुत लोकप्रिय हो चुका है| नकल नाम से ही मालूम पड़ता है कि किसी का नकल करना यानी समाज में जीवित व्यक्तियों का नकल करना| इस प्रकार कुछ जाने पहचाने व्यक्तियों के नकल प्रस्तुत करने से ही इस का नाम 'नकल' पड़ गया होगा| नकल एक हास्य व्यंग्य प्रधान लोकनाट्य रूप है| अपनी नकलबाज़ी, हाजिर जवाबी, चुटकुले बाजी एवं हास्य व्यंग्य के कारण यह लोकनाट्य रूप उत्तरप्रदेश के नक्काल-भांडो में बहुत लोकप्रिय बना है|

स्वांग

स्वांग को सांग या संगीत भी कहते है| इस वर्ग के ही लोकनाट्य स्वांग प्रधान होते है| स्वांग प्रधान होने से ही इस के मूल में नकल या अनुकरण करने की बात होती है| स्वांग में कथानक बहुत लम्बी होती है| इसमें प्रेमकथाओं से

लेकर धर्म कथाओं से सम्बंधित कथाएँ भी विषय बनता है| स्वांग में साधारण सा मंच होता है जो तीन ओर से खुला होता है| स्वांग का संवाद पद्यात्मक होता है| इस में मुख्य रूप से जन मानस की अभिव्यक्ति होती है| यह बहुत लोकप्रिय एवं प्राचीन लोकनाट्य रूप है|

माच

माच मालवा (पश्चिमी मध्यप्रदेश) का सुप्रसिद्ध लोकनाट्य है| यह एक परंपराशील लोकनाट्य रूप है| माच का मालवी तद्भव रूप मांच है| माच शब्द का प्रयोग मंच, एवं मंचन दोनों के लिए प्रयुक्त होता है| माच शब्द संस्कृत के मंच का अपभ्रंश है| माच के इस प्रकार कई रूप भी मिलते है और जिसके भिन्न अर्थ भी होते है| डॉ. नीना शर्मा का लिखना यहाँ उल्लेखनीय है – "वैसे तो मालवा में आज भी माच शब्द से मिलते जुलते कई रूप प्रचलित है, जैसे, मचान, माचा, माचली जो कहीं-कहीं बिगड़ कर मचली भी है| 'माचली' बच्चों को पालना होता है| यह भी सुतली या कही 'निवार' से बना होता है| मचान शब्द हिन्दी में मकान के निर्माण कार्य में प्रयुक्त होता है, जो बल्लियों एवं लकड़ियों के तख्तों की सहायता से बनाया जाता है| उपर्युक्त सभी शब्दों के मूल में यही है कि जो लकड़ी से बना हो तथा ज़मीन अर्थात धरातल से ऊँचा हो|"[1]

[1] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 31

इसी प्रकार माच का मंचन भी विशेष प्रकार से किया जाता है| मंच निर्माण और अभिनय दोनों शास्त्रीय पद्दति के अनुसार है| माच का मंच लकड़ियों के खंभों पर तख्तों को ठोककर तैयार किया जाता है, जो बहुत ऊँचा होता है| मंचन में मंच पर चंदोवा (सफ़ेद चादर) डालते है जिसको फूलों एवं कागज़ की पत्तियों से सजाया जाता है| मंच तीन ओर से खुला होता है और पीछे परदे से बंद किया जाता है| मंच के विभाजन को घाट और पाट कहा जाता है| मंच के मध्य में खेल का पाट होता है| मुख्य पात्र के लिए एक कुर्सी रखी जाती है| बाकी पात्र सभी पीछे बैठते हैं| इस तरह मंच की बनावट तो कुछ ख़ास प्रकार से की जाती है| माच का मंचन अपने में बहुत विशेषता लिया हुआ है उसी प्रकार माच का उत्भव भी विशेष प्रकार का है| मालवा में माच से मिले जुले शब्द मिलते है उसी प्रकार माच के जैसे या मांच के नाम पर खेले जाने वाले कई खेल होते हैं| मालवा में पहले ‘ढारा ढारी’ के खेल की परंपरा थी जिसके पौराणिक चरित्र का अंकन होता था जो माच के लिए भूमिका निर्धारित करने में सहायक सिद्ध होती होगी| इस प्रकार गरबा गीतों का प्रभाव भी माच की पूर्व भूमिका तैयार करने में सहयोगी माना जाता है|

गरबा गीतों के अतिरिक्त माच पर तुर्राकलंगी का प्रभाव बताया जाता है| आज भी मालवा में नीमच में तुर्राकलंगी के खेल किए जाते हैं| वे उसे माच भी कहते हैं एवं तुर्राकलंगी भी| ख्याल भी माच की उत्पत्ति के सबसे महत्वपूर्ण सहयोगी माना जाता है| ख्यालों से माच काफी प्रभावित रहा है| और यही

कारण है कि शुरू में जो माच लिखे जाते थे उनके नाम के आगे ख्याल शब्द लिखा जाता था| इसके अतिरिक्त नकल, स्वांग आदि का भी माच में योगदान रहा है| इस प्रकार माच की एक सुदीर्घ परंपरा रही है| डॉ. नीना शर्मा के शब्दों में – “अनेक प्रवृत्तियाँ, स्थितियाँ समाज में चलती हैं, एक मिटती है तो उसकी जगह दूसरी आती है और इसी निर्माण की प्रक्रिया में कुछ नष्ट हो जाता है, कुछ रह जाता तथा कुछ नवीन आ जाता है| माच के निर्माण में यही हुआ इस पर ख्याल, स्वांग, ढाराढारी, गरबी गीत, भाण आदि का प्रभाव रहा किसी का ज्यादा किसी का कम, किसी का अंशतः और कुछ नवीन, इन्हीं सब से मिलकर एक नई रंगशैली को जन्म मिला जिसे माच कहा गया|”[1]

माच में मुख्यतः पौराणिक, ऐतिहासिक, शृंगारिक कथानकों पर आधारित खेल प्रस्तुत की जाती है| जनता की धार्मिक आस्था के कारण धार्मिक ग्रंथ पुराण आदि माच के विषय सहज ही बन जाते हैं| पौराणिक खेलों में राजा ‘भरतरी’, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, मोरध्वज, राजा गोपीचंद, नल-दमयंती आदि खेला जाता है| प्रेमकथाएं एवं वीरता प्रधान कथाएं भी माच में खेली जाती हैं| माच का मुख्य आकर्षण तो शृंगारिक खेल है| माच के लोकप्रिय खेलों में ढोला मारू और हीर-राँझा मुख्य आकर्षण है| माच के पात्रों में नायक जो है वह उच्चकुल के वीर साहसी होगा और नायिका की भूमिका युवक लोग निभाते हैं|

[1] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 33

इसके अतिरिक्त मनोरंजन के पात्र भी होते है| पशु-पक्षी भी इसके पात्र बनते हैं| मनोरंजन के पात्रों में भिश्ती, फर्रासन, बेढब, मालन आदि हैं|

माच में संवाद की प्रमुखता भी होती है जो मुख्यतः पद्यबद्ध होते हैं| संवाद विशेषता के बारे में डॉ. नीना शर्मा का कहना है – "वर्तमान में कई संवाद गद्य में भी आये है जिन्हें 'वारता' नाम से पहचाना जाता है| इसके संवादों को बोल कहा जाता है| संवाद माच की जान है जो दर्शकों को बाँधें रखता है| चुटीले एवं संक्षिप्त व्यंग्य भरे संवाद दर्शक के सीने में कई बार तीर की तरह उतर आते है|"[1]

माच की भाषा मालवी है और राजस्थानी, मेवाड़ी, मारवाड़ी, ब्रज, गुजराती, उर्दू, अरबी, फारसी आदि का प्रभाव भी होता है| गीत संगीत से युक्त माच में लोकजीवन में प्रचलित लोकधुनों को समाहित किया है| माच में ढोलक, सारंगी, हारमोनियम, चिमटा, घुंघरू आदि वाद्यों का प्रयोग होता है| माच के पात्रों की वेशभूषा पात्रोचित होती है जैसे पगड़ी, कोट, दुपट्टा, धोती, लहंगा आदि| इस प्रकार सभी प्रकार की विशेषताओं को लिए हुए यह लोकनाट्य अंधकार में शुरू होकर सुबह समाप्त होता है|

---

[1] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 35

नाचा

यह मध्यप्रदेश का लोकप्रिय एवं सशक्त लोकनाट्य रूप है| यह संगीत एवं गीत से युक्त नृत्य से भरपूर एक लोकशैली है| सादगी नाचा की उल्लेखनीय विशेषता है| दिन भर काम करते करते थके हुए गाँव वालों को नाचा दिन भर की थकान को भुलाने वाली या मिटाने वाली एक दवा है| ये छोटे-छोटे प्रहसनों नृत्य गीत के आयोजन से घुलमिलकर मनोरंजन के साधन के रूप में आते हैं| पहले यह खेल पर्व एवं त्योहार के अवसर पर खेला जाता था| बाद में यह मनोरंजन के महत्वपूर्ण साधन बना| नाचा के प्रति लोक मन में आकर्षण के फलस्वरूप छत्तीसगढ़ के बड़े गाँवों में नाचा मंडलियाँ होती हैं| संपन्न लोगों की शादी विवाह, पुत्र-जन्म आदि उत्सवों पर पहले इसके लिए बुलावा आता था लेकिन आज कल तो त्योहार, मंडई, मेलों, गणेश उत्सवों आदि पर नाचा मंडलियों को प्रदर्शन के लिए आमंत्रित किया जाता है|

नाचा का कथानक मुख्यतः धार्मिक, पौराणिक, सामाजिक जीवन पर आधारित होता है| सामाजिक कथानकों में अनमेल विवाह, सामंती शोषण, अन्धविश्वास, छुआछूत, बाल-विवाह, विधवा विवाह जैसी समस्याओं पर प्रकाश डाला जाता है| नाचा की एक विशेषता है गम्मत – “नाचा के अंतर्गत ‘गम्मत’ नामक प्रहसन का विशेष महत्व है| ‘गम्मत’ को नाचा का पर्याय भी माना

जाता है| गम्मतों के अंतर्गत कठपुतली का नृत्य तथा खेल-कूद के प्रदर्शन भी किए जाते है| गम्मतों में लोकरंजन के साथ लोक शिक्षण भी होता है|”[1]

नाचा का मंच अत्यंत साधारण कोटि का होता है और ग्रामीण परिवेश में उपलब्ध किसी भी उपयुक्त स्थान को मंच की तरह काम में लेते हैं| नाचा के पात्रों की वेशभूषा साधारण सा होता है, और उनका मेकअप स्थानीय सामग्रियों से किया जाता है|

नाचा नृत्य प्रधान लोकनाट्य है| इसमें सभी पात्र नृत्य करते हुए मंच पर आते हैं| पात्रों की वेशभूषा संबंधी एक विशेषता तो यहाँ उल्लेखनीय है| निरंजन महावर का कहना है – “भारतवर्ष के अधिकांश लोकनाट्यों में पात्र चटखीले रंग के वस्त्र धारण किए जाते है परंतु इस प्रवृत्ति के विपरीत छत्तीसगढ़ी नाचा में अत्यंत सामान्य वस्त्र धारण किए जाते है|”[2]

नाचा में भी स्त्री पात्रों की भूमिका पुरुष पात्र निभाते हैं| भूत, प्रेतात्मा आदि के लिए मुखौटों का प्रयोग करता है| इसकी भाषा मुख्यतः छत्तीसगढ़ी होती है| आसपास की भाषाओं का प्रभाव भी इसमें देखने को मिलता है| आज कल फ़िल्मी प्रभाव भी इस पर हो रहा है| नाचा को अपने लोकशैली में बरकरार रखने में डॉ. हबीब तनवीर का योगदान महत्वपूर्ण है| उन्होंने छत्तीसगढ़ के सभी लोक कलाकारों को इकट्टा कर अपनी नाट्य मंडली द्वारा कई नाटकों को प्रस्तुत

---

[1] सनत कुमार, समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ : 279

[2] निरंजन महावर, नाटक के सौ बरस, पृ : 239

किया है| उन्होंने कुछ संस्कृत नाटकों को भी नाचा शैली में प्रस्तुत किया जिनमे शूद्रक का नाटक 'मिट्टी की गाड़ी' अत्यंत सफल रहा है| इस प्रकार नाचा को अपना सुधारक मिल गया जो समाज परिवर्तन की अदम्य आकांक्षा रखते हैं|

गोंधल

महाराष्ट्र की धार्मिक लोकनाट्य है गोंधल| महाराष्ट्र की अन्य लोकनाट्यों की तुलना में गोंधल बहुत प्राचीन रूप है| यह मुख्यतः पूजा के अवसर पर खेला जाता है| गोंधल का प्रारंभ गोंधली अम्बा की पूजा से होता है| आज भी इसका स्वरूप धार्मिक ही है| धार्मिक होने पर भी यह एक हास्य प्रधान लोकनाट्य रूप है| इसके नाम के पीछे कुछ ऐसी ही बाते चल रही है जो इसे हास्य प्रधान लोकनाट्य स्थापित करते है| डॉ. कुंदनलाल उप्रेती के अनुसार – "गोंधल का अर्थ गड़बड़ी अव्यवस्था है| प्रमुख हास्य अभिनेता को ही गोंधल कहा जाता है| इस नाट्य को खेलने वाली विशेष जाती को 'गोंधली' कहते हैं|"[1]

मराठी में गोंधल की परंपरा बहुत प्राचीन है| इसकी प्राचीनता के बारे में डॉ. नीना शर्मा का कहना है – "मराठी में गोंधल का अर्थ गड़बड़ होता है| गोंधल की परंपरा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती है जिन्हें 'डवरी' कहा जाता है|"[2]

---

[1] डॉ. कुंदनलाल उप्रेती,लोक साहित्य के प्रतिमान, पृ : 172

[2] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 47

गोंधल की कथानक मुख्यतः पुराण और वीर कथा पर आधारित होता है| मुख्य कथा के साथ हास्यात्मक प्रसंग की अवधारण के लिए सहायक उपकथाएँ भी होती है| गोंधल में मुख्यतः चार पात्र होते हैं, जिनमें एक पात्र हास्य प्रस्तुति के लिए है| और दूसरा पात्र कथा को आगे बढाने के लिए सहायता करता है| बाकी पात्रों में एक के पास तुनतुनिया होता है और दूसरे के पास संबल होता है| गोंधल के प्रारंभ में 'अम्बा' की स्थापना कर पूजा की जाती है और बाद में गणेश वंदना की जाती है जहाँ गाना गाया जाता है| गोंधल में गीतों की बहुत प्रधानता होती है| गाने का ढंग तो परंपरागत होता है| गणेश वंदना में जो गीत गाये जाते है उसके बाद 'पवाडे' भी गाये जाते है| यह तो देवी देवताओं की प्रशंसा में गाये जाते है|

गोंधल में नृत्य भी प्रधान होती है| नृत्य प्रधान एक खेल का आयोजन गोंधल के खेल के उपरांत होता है जिसे 'पांत' कहते हैं| गोंधल में मराठी भाषा का प्रयोग करता है जिसमें लोकशैली प्रमुख होता है| गोंधल का आयोजन आजकल विवाह के अवसर पर भी होता है तो गोंधल की प्रस्तुति के लिए किसी विशेष प्रकार का मंच नहीं होता बल्कि समतल प्रदेश ही आवश्यक है| गोंधल का खेल एक धार्मिक मंच है रात-भर चलता रहता है|

ललित

ललित महाराष्ट्र का धार्मिक मंच है| प्राचीनकाल में बहुत लोकप्रीय रहा है| उस समय में पौराणिक कथाओं तक सीमित था ललित परंतु बाद में चलकर लोकजीवन के विशिष्ट चरित्रों का व्यंग्यात्मक प्रदर्शन भी इसमें होने लगा| फिर वर्तमान में इसकी लोकप्रियता में थोड़ी कमी आयी है| लेकिन गाँवों में और कही कही शहरों में आज भी उत्सव के अवसर पर ललित का आयोजन किया जाता है| ललित शब्द की व्याख्या कई प्रकार प्रचार में है| नवरात्री के अवसर पर प्रसाद बाँटने का कार्यक्रम ललित कहलाया जाता है| "इसके अतिरिक्त ललित की उत्पत्ति भारुढ से भी मानी जाती है, जो महाराष्ट्र में सन्तों की एक काव्य शैली का रूप है|"[1]

कुंदनलाल उप्रेती के अनुसार –"वास्तव में ललित का अर्थ है – नवरात्रि संबंधी कीर्तन|"[2] ललित का आरंभ ध्रुपद गायन से होता है उसके बाद गणपति वंदना होती है| ललित का स्वरूप धार्मिक होने से कथानक भी मुख्यतः धार्मिक होता है| साथ में पौराणिक एवं ऐतिहासिक कथाओं की प्रस्तुति होती है| ललित में स्वांग की प्रस्तुति भी होती है -"ललित में स्वांग का भी बड़ा महत्व है|

[1] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 46

[2] डॉ. कुंदनलाल उप्रेती - लोकसाहित्य के प्रतिमान -पृ - 171

सर्वाधिक प्रसिध्द स्वांग 'वाध्यमुरली' का स्वांग है| इन स्वांग की संख्या 50 से 60 तक पहुँच जाती है|"[1]

ललित में विदूषक, सूत्रधार की पत्नी आदि मुख्य पात्र है जो हास्यात्मक संवाद के साथ मंच में प्रवेश करता है इनके अतिरिक्त चोपदार, पाटील, ब्राह्मण, दरजी, अन्धा आदि को भी देखने को मिलता है|

ललित मंच साधारण किंतु निश्चित होता है| पात्रों की वेशभूषा में अचकन, सलवार कुर्ता, पायजामा, टोपी, कमरपट्टा आदि का उपयोग करता है| पात्र स्त्री पहनते हैं| मेकअप साधारण होता है| इस प्रकार ललित लोकनाट्य का मंचन धार्मिक आस्था से आज भी महाराष्ट्र में खेला जाता है|

दशावतार

महाराष्ट्र की लोकनाट्य रूपों में एक महत्वपूर्ण शैली है दशावतार| यह एक धार्मिक लोकनाट्य है| दशावतार बहुत प्राचीन लोकशैली है| दशावतार नाम से ही पता चलता है यह दस अवतारों की कहानी है| सभी पुराण कथाएँ हैं| मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि इन दस अवतारों की कथाओं पर आधारित है दशावतार| इन कथाओं के प्रति लोगों में मन में विशेष आकर्षण है| दशावतार की उत्पत्ति के बारे में कई मत प्रचलित है| दशावतार में सूत्रधार के आगमन से गणेश वन्दना शुरू हो जाती है उसके

[1] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 46

बाद सरस्वती का प्रवेश होता है| इसके आने के बाद ही मुख्य खेल शुरू हो जाता है|

दशावतार में पात्र सब धार्मिक होते हैं जिनमें सूत्रधार मुख्य पात्र है| जो हर एक पात्र का परिचय देता है| कथानक तो दस अवतारों के आधार पर है|कुछ कथाएँ ऐसी हैं जिनकी प्रस्तुति मंच पर नहीं हो सकेगी तो उसके प्रदर्शन के लिए उसका स्वांग दिखाकर आगे का अवतार दिखाया जाता है| दशावतार में सभी पात्र मुखौटे का प्रयोग करते हैं|

दशावतार का संवाद मुख्यतः गद्य एवं पद्यात्मक रूप में होता है| इसकी भाषा मराठी होती है| इसके अतिरिक्त कोंकणी, मालवणी आदि का भी प्रयोग किया जाता है| दशावतार का मंच धार्मिक होने से बहुत ही साधारण सा होता है| वर्तमान में शास्त्रीय एवं फ़िल्मी प्रभाव होने पर भी धार्मिक मंच होने से दशावतार के प्रति एक श्रद्धा का भाव रहता है जो इसकी लोकप्रियता का कारण है|

जात्रा

बंगाल की सर्वाधिक लोकप्रिय नाट्य शैली है जात्रा| बंगाल के अलावा उड़ीसा एवं पूर्वी बिहार के कुछ भागों में भी जात्रा लोकप्रिय रहा है| जात्रा की परंपरा बहुत ही प्राचीन है| जात्रा का अर्थ है जुलुस उत्सव या प्रवास| डॉ.

चतुर्भुज का कहना है – "बंगाल में यात्रा को 'जात्रा' कहा जाता है| इसलिए हम इसे जात्रा ही कहेंगे|"[1]

जात्रा की उत्पत्ति के बारे में कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता है, "कुछ लोग इसका आरंभ उस युग से मानते है जब 'नाट्यशास्त्र' की रचना हुई थी| डॉ. दशरथ ओझा इसे वैदिक युग से भी पूर्व का मानते हैं|"[2]

जात्रा प्रदर्शन के लिए जात्रा मण्डली होती है इस मंडली का अध्यक्ष 'अधिकारी' के नाम से जाने जाते हैं जो इसका नेतृत्व करता है| वही निर्देशक एक प्रधान नायक होता है| अन्य लोकनाट्य के समान जात्रा में स्त्री पात्रों की भूमिका पुरुष ही निभाते है| लेकिन आज कल स्त्रियाँ भी जात्रा मंडलियों में काम करता है| जात्रा का मंच तीनों ओर से खुला होता है जहाँ से दर्शक प्रदर्शन देख सकते हैं| जात्रा में गायन की बहुत प्रधानता होती है| एकल एवं समूह दोनों प्रकार के गीत गाये जाते हैं| कीर्तन में दोहा ही प्रधान है| जात्रा शुरू होने से पहले करीब दो घंटे पहले ढोल ऊँची आवाज़ में बजाया जाता है| साथ में हारमोनियम, बाँसुरी, करताल आदि का भी प्रयोग होता है| बंगाल में शादी या अन्य उत्सवों के अवसर पर जात्रा का आयोजन किया जाता है फिर भी वर्तमान में शिक्षा के प्रसार, सौन्दर्य एवं तकनीकी ज्ञान जात्रा नाटकों में काफी हद तक नवीन परिवर्तन लाये हैं|

---

[1] डॉ. चतुर्भुज, भारतीय और विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास, पृ : 159

[2] डॉ. चतुर्भुज, भारतीय और विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास, पृ : 159

यक्षगान

दक्षिण भारत का प्रसिद्ध लोकनाट्य रूप है यक्षगान| यह तमिल, तेंलुगु, कन्नड़ भाषा-भाषी क्षेत्रों में अधिक लोकप्रिय है| धार्मिक धरातल पर केंद्रित यक्षगान की उत्पत्ति के बारे में मतभेद है, "यक्षगान के उद्भव, विकास की एक लम्बी विवादास्पद प्रक्रिया रही है| इसका प्रारंभिक स्वरूप नाट्य रूप नहीं था| यह गायकी की शैली के रूप में प्रचलित था|"[1] यक्षगान की उत्पत्ति के बारे में डॉ. कुंदनलाल उप्रेती का कहना – "तेलंगाना (आंध्र) में विथि भागवतम भी कहते है| इसे 'प्राकृत नाटक' भी कहा गया है| यक्षगान की परंपरा अत्यधिक प्राचीन है| इतना ही नहीं यह आंध्र, कर्नाटक, तथा तमिलनाडु संस्कृति का वाहक है|"[2]

यक्षगान का कथानक प्रमुख रूप से धार्मिक होता है, पौराणिक कथाओं को भी प्रस्तुत करता है| रामायण, महाभारत, भागवत जैसे धार्मिक कथाओं को आधार बनाकर यक्षगान खेला जाता है| वर्तमान में लोकपरक कथाओं को भी यक्षगान में स्थान मिला है|

यक्षगान प्रारंभ होने से पहले दो छोटे छोटे पात्र आते है उन्हें बालगोपाल कहते हैं| बाद में गणेश वन्दना की जाती है| फिर देवी-देवताओं की स्तुति की जाती है| इस दौरान मुकुट की पूजा की जाती है जहाँ दशावतार मतलब विष्णु

---

[1] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 47

[2] डॉ. कुंदनलाल उप्रेती, लोकसाहित्य के प्रतिमान, पृ : 170

के दस अवतारों की वर्णना की जाती है| मुख्य कथा का प्रारंभ तो उसके बाद होती है|

यक्षगान का मंच खुले आँगन तथा समतल मैदान में बनाया जाता है वहाँ बाँस गड़ाकर आम के पत्तों से सजावट की जाती है| यक्षगान मंच की बैठक व्यवस्था भी कुछ अलग प्रकार की है – "मंच की बैठक व्यवस्था में भी कुछ रुढियों का निर्वाह किया जाता है| यही बात मंच के मुख्य भाग के लिए होती है| रविवार और बृहस्पतिवार को मंच का मुख्य पूर्व की ओर और मंगलवार को पश्चिम, शनिवार को एवं बुधवार को उत्तर की ओर नहीं रखा जाता है|"[1]

यक्षगान में नृत्य की प्रधानता होती है| नृत्य के माध्यम से ही अभिनेता अपने भावों को प्रकट करता है| यक्षगान की वेशभूषा एवं मुखसज्जा बहुत चर्चित रही है| मुखसज्जा बहुत भड़कीली होती है| यक्षगान नाटक अपनी सारी विशिष्टताओं के साथ दक्षिण भारत में आज भी बहुत लोकप्रिय है|

तेरुक्कूत्तु

तेरुक्कूत्तु तमिलनाडु का लोकनाट्य रूप है| रामलीला, रासलीला, जैसे पारंपरिक लोक रूपों की भाँती तेरुक्कूत्तु भी एक पारंपरिक लोकनाट्य है| इसका आयोजन मंदिरों में किया जाता है| तेरुक्कूत्तु धार्मिक कथानक पर आधारित है| इसके पात्र धार्मिक होते हैं| सूत्रधार मुख्य पात्र है जो अन्य पात्रों

[1] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 50

का परिचय देता है| कथा की घटनाओं का वर्णन भी सूत्रधार देता है| स्त्री पात्रों की भूमिका पुरुष पात्र द्वारा की जाती है| पात्रों का मंच प्रवेश कुछ भिन्न रूप से होता है| एकदम अचानक से पात्र का प्रवेश नहीं बल्कि मंच पर पहले दो व्यक्ति चादर ताने हुए खड़े रहते हैं जिसके पीछे पात्र होते हैं तो पहले चादर के पीछे से पात्र का पैर, मुकुट आदि दिखता है उसके बाद चादर हटा कर नृत्य करते हुए पात्र का दर्शन होता है| पात्रों की वेशभूषा एवं मुखसज्जा भड़कीली होती है|

तेरुक्कूत्तु में संवाद शैली गेय होती है किंतु गद्य प्रयोग भी होता है| संवाद छोटे छोटे है पर चुटीले होते हैं| सूत्रधार द्वारा प्रश्नोत्तरी के रूप में पात्रों के आपसी संबंध बनाते हैं| इसका मंच तीन और से खुला होता है| साधारण सा मंच विधान होता है| शुरू में गणेश वन्दना की जाती है| जिसके लिए मुखौटा पहनकर पात्र मंच पर आते हैं| बाद में आरती उतारी जाती है अन्य देवी देवताओं के स्तुति गायन के साथ सूत्रधार द्वारा कथा का प्रारंभ होता है|

गवरी

यह लोकनाट्य राजस्थान के कुछ क्षेत्रों में विकसित एक शैली है| राजस्थान के उदयपुर, डूंगरपुर एवं बाँसवाड़ा में इसका प्रचलन है| गवरी में मुख्य रूप से पाँच पात्र होते हैं| इसके अलावा गौण पात्र भी है| इसके पात्र योजना के बारे में शैलजा भारद्वाज लिखती है – "शिव तथा भस्मासुर का प्रतीक राई बुढिया, मोहनी तथा पार्वती की प्रतिमूर्ति दोनों राईयां कूटकडिया तथा पाट

भोपा ये पाँचों गवरी के प्रमुख नायक होते है जो ‘माजी’ कहलाते है| इनके अतिरिक्त गौण पात्रों को ‘खेल्वे’ कहा जाता है|”[1] धार्मिक धरातल पर आधारित होने से इसके कुछ दृश्यों को प्रदर्शन नहीं करता बल्कि उसका सांग दिखलाया जाता है इसे खेल तथा भाव कहलाता है| कथा प्रारंभ होने पर सूत्रधार प्रवेश करता है जो प्रत्येक खेल के प्रारंभ में उसकी संक्षिप्त कथा सुनाता है| कूटकडिया इस नाट्य का सूत्रधार है| गवरी में नृत्य की प्रधानता रही है| गवरी का मंच भी साधारण सा होता है| गाँव का कोई चौराहा या कोई खुला आँगन इसके लिए मंच बनता है|

कुरवंजि

आंध्र के पहाड़ी आदिवासियों का नृत्य प्रधान लोकनाट्य रूप है कुरवंजि| कुरवंजि चेन्नई के उत्तर नेल्लोर में प्रचलित लोकप्रिय नाट्य रूप है| ऐसा कहा जाता है कि दक्षिण भारत की पहाड़ी जाती है ‘कोरव’ और इस जाती में प्रचलित नृत्य को कुरवंजि कहलाता है|

कुरवंजि में लगभग 6-7 पात्र होते है और इसमें पुरुष पात्र का अभाव रहता है| 6-7 स्त्रियाँ मिलकर यह आयोजित करके खेलती हैं| इसके लिए प्रत्येक मंच का निर्माण नहीं होता| मंदिर का खुला प्रांगण तथा प्रेक्षकों के बीच में खुला स्थान मंच बनता है| कुरवंजि का प्रारंभ गणेश वंदना से शुरू होता है|

---

[1] शैलजा भारद्वाज, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक साहित्य में लोकतत्व, पृ : 20

तदुपरांत नायिका अपनी सखियों के साथ प्रवेश करती है| नायक तो कभी मंच पर नहीं आता| हास्यात्मक प्रसंगों के लिए प्रसिद्ध है कुरवंजि|

कूड़ियाट्टम

'कूड़ियाट्टम' का जन्मदाता केरल के चेरवंश के सम्राट 'कुल्शेय्यर वर्मन' को माना जाता है| उन्होंने संस्कृत नाटकों को जनसाधारण के लिए बोधगम्य बनाने के लिए इस विधा का सूत्रपात किया 'कूड़ियाट्टम' को 'कूथाम्बल्म' या 'कुटुम्बल्म' नामक रंगशाला में मंचित किया जाता है| ये 'कुटुम्बल्म' केरल के मंदिरों की शैली में निर्मित किए गए हैं| मंच कुछ ऊँचा और वर्गाकार होता है और देवी-देवताओं की मूर्ति सामने की ओर होती है कि प्रस्तुति के समय अभिनेता मूर्तियों के सम्मुख हों| कूड़ियाट्टम की प्रस्तुति में अभिनय शास्त्रीय परंपरा का अत्यधिक निष्ठा के साथ पालन किया जाता है| आंगिक अभिनय के लिए यह विधा प्रसिद्ध है| मंदिरों से जुड़ा होने के कारण इसमें केवल धार्मिक किस्म के नाटकों का ही अभिनय होता है|

निष्कर्ष

लोकनाट्य समूह मन की विधा है| जन जीवन ने ही उसे विकसित और परिपुष्ट किया है| काल के अपरिमित विस्तार को भीतर समाहित कर जनजीवन की प्रगति को उसने अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है|

लोकनाट्य संस्कृति एक अवधारणा के रूप में मनुष्य की सामूहिक चेतना की सहज अभिव्यक्ति है| वह मनुष्य के सामाजिक अनुभवों का सर्जनात्मक रूपांतरण है| लोक मंगल की कामना उसका सारतत्व है| सामूहिकता उसकी सबसे बड़ी विशेषता और सामाजिक सहकार उसका अर्थपूर्ण सन्देश है| वह सामूहिक रचनात्मकता का प्रतिफलन है| वस्तुतः वह समूह की, समूह के लिए, समूह द्वारा अभिव्यक्त सर्जनात्मकता है|

हमारा समय बाज़ार के उत्कर्ष का समय है| इस बाज़ार की अपनी एक विचारधारा नियम व शैली है| उसके द्वारा पोषित-पालित उपभोक्ता संस्कृति लुभावने विज्ञापनों के माध्यम से पूरे समाज पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर रही है| इस परिवेश के प्रभाव में पड़कर हमारी लोकनाट्य संस्कृति की समूहगत रचनात्मकता का अवमूल्यन हो रहा है| यही लोकनाट्य संस्कृति की सबसे बड़ी चुनौती है|

लोकनाट्यों की सुरक्षा का प्रश्न आज लगातार उठाया जाता है| इसके अस्तित्व की चिंता करते हुए इस विधा के संरक्षण- संवर्धन कार्य किया जाना चाहिए| साथ ही हमें लोकनाट्य की सीमाओं को भी समझना होगा| लोकनाट्य की समृद्धि को रेखांकित करते हुए उसकी नई अवधारणा विकसित करनी होगी| नये परिप्रेक्ष्य बनाने होंगे| अब लोक नाट्यों की शुद्धता और मौलिकता का आग्रह बहुत प्रासंगिक नहीं रह गया है| लोकनाट्यों को काल सापेक्ष्य बनाना होगा| लोकनाट्य रुढियों और परम्पराओं के दुहराव का नाम भर नहीं है| हमारी

परंपरा में जो कुछ भी सुन्दर है, जो कुछ भी सकारात्मक है, उसे आत्मसात करते हुए लोकनाट्य को नई सर्जनात्मकता से जोड़ना होगा| वर्तमान परिवेश से जुड़कर ही वह सामूहिक सर्जनात्मकता को पल्लवित कर सकेगा|

आज के प्रतिकूल समय में लोकनाट्य में विभिन्न रूपों में मानवीय चिंताओं के लिए स्पेस बनाना होगा| उनकी कालबद्धता सुनिश्चित करनी पड़ेगी| जिससे हमारी लोकनाट्य संस्कृति जनशिक्षण का माध्यम बन सकेगी| इस प्रकार वह अपने प्रतिरोधात्मक तेवर को अधिक अर्थवान और धारदार बना सकेगी तथा बाज़ारोन्मुखी संस्कृति का सशक्त प्रतिपक्ष और विकल्प भी बन सकेगी|

****

दूसरा अध्याय

लोकनाट्य शैली पर केंद्रित हिन्दी नाटकों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

भारतेंदु पूर्व हिन्दी नाटक और रंगमंच

भारतीय रंग परम्परा अत्यन्त पुरातन और समृध्द है| यह तो निर्विवाद की बात है कि गुलामी के अंधकार में डूबे हमारी देश को स्वयं का इतिहास भी विदेशी चश्मे से दिखाया जा रहा था| उस समय यह धारणा प्रचलित थी कि नाटक का प्रादुर्भाव यूनान से हुआ है और वह पश्चिमी देशों में ही पोषित हुआ है| किंतु अब सारा विश्व इस तथ्य से भलीभाँती परिचित हो चुका है कि हमारा देश नाटक लेखन और मंचन की दृष्टि से ही नहीं बल्कि शास्त्र की दृष्टि से भी अग्रणी रहा है| यह वह अनूठा देश है जहाँ रंगकर्म एक धार्मिक अनुष्ठान के रूप में लिया जाता रहा है| यदि वेद-पुराण हमारे पूजनीय ग्रन्थ हैं तो निश्चित ही पाँचवें वेद के रूप में ब्रह्मा द्वारा प्रदत्त नाट्यशास्त्र भी उसी श्रेणी में आता है|

भरत मुनी द्वारा रचित इस 'नाट्य शास्त्र' में नाट्यकला का जितना सूक्ष्म एवं विस्तृत वर्णन हुआ है वैसा विश्व के अन्य किसी ग्रंथ में नहीं हुआ है| भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का अत्यंत समृध्द और विकसित विवेचन ही स्वयं इस बात की सूचना देता है कि उनके पूर्व नाट्य शास्त्रकारों की कोई परम्परा रही होगी| हमारे देश में दो ढाई हज़ार वर्ष पहले से ही विशेष त्योहारों और पर्वों के अवसर पर नाटक की शास्त्रीय युक्तियों से युक्त नाटक का मंचन होता था| संस्कृत नाटकों का स्वर्ण युग इसी परंपरा की देन है|

संस्कृत नाटकों की परंपरा

संस्कृत रंगमंच की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों में विभिन्न मत प्रचलित हैं| इस सम्बंद में अनुमान और कल्पना को आधार बना के ही कुछ कहा जा सकता है| कुछ विद्वान नाटक को दैवी उत्पत्ति मानते हैं, कुछ उसके मूल में मनुष्य की धार्मिक प्रवृत्ति को देखते हैं, तो कुछ छाया नाट्य और कठपुतलियों के खेल से रंगमंच या नाटक का प्रारम्भ मानते हैं|

संस्कृत नाटकों की परंपरा अश्वघोष से आरंभ होकर बीसवीं शताब्दी तक गत्यात्मक रही है| संस्कृत रंगमंच के उत्कर्ष में भरत, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त, भवभूती जैसे उन्नायक नाटककारों का महत्व अबाधित है| भास संस्कृत के प्रथम नाटककार माने जाते हैं| उनके नाटकों में नाट्यशास्त्र के नियमों को कई जगह तोड़ा गया है| 'ऊरुभंग' में नाट्य शास्त्र के नियमों के विरुध्द भीम द्वारा दुर्योधन की मृत्यु को दिखाया गया है|

कालिदास का 'अभिज्ञानशाकुन्तलम' संस्कृत नाटकों में अप्रतिम है| इस नाटक में काव्य अभिनय और रंग इन तीनों तत्वों का अपूर्व सामंज्यस्य मिलता है|

डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार "अभिज्ञानशाकुन्तलम" उनकी प्रतिभा का उत्कृष्टतम विकास है| इस नाटक में उनके कवि और नाटककार का अद्‌भुत

मिश्रण दिखाई पड़ता है| उनकी काव्य प्रतिभा उनके नाटकों को त्रुटिपूर्ण न बनाकर नाटकीय चरित्रों और कियाओं को काव्यात्मक संवेगों से समन्वित करती है|"[1]

शूद्रक का मृच्छकटिक्म महत्वपूर्ण नाट्यकृति है जो रंगदृष्टि से अत्यंत उच्चकोटि की है| मृच्छकटिक्म में कई संस्कृत नाट्य रूपों का समन्वय मिलता है परंतु इसका विकास आगे न हो सका| शूद्रक के बाद हर्ष और भट्ट नारायण के नाटकों में रंगमंच के प्रति उपेक्षा झलकती है सातवीं शताब्दी के विशाखदत्त का मुद्राराक्षस अत्यंत महत्व रखता है| राजनीति के क्षेत्र में जिस हृदयहीनता-कठोरता का परिचय मिलता है 'मुद्राराक्षस' उसका जीवन्त उदाहरण है|

ईसा की 11वी-12वी शताब्दी तक आते आते संस्कृत नाटकों की सशक्त परम्परा लगभग समाप्त हो गयी| संस्कृत भाषा तथा साहित्य के प्रति श्रध्दा एवं पालि, प्राकृत, तथा अपभ्रंश भाषाओं की अपनी कोई सशक्त नाट्य परम्परा न होने के कारण संस्कृत नाटकों से हमारे संबंध का विच्छेद होना भी संभव नहीं था|

संस्कृत नाटकों को अनुदित करके अभिनीत करने की परंपरा छोटे मोटे रूप में देश में बनी रही| यह समय ऐसा था तब भारतीय शाश्त्रीय नाट्य परंपरा क्षीण अवस्था तक पहुँच गयी थी और लोक परंपरा वाले नाटकों का दौर शुरू हो गयी थी|

---

[1] डॉ. बच्चन सिंह - हिन्दी नाटक -पृ : 17

संस्कृत नाट्य परंपरा के समय में जो नाटक राजदरबार तक सीमित रहा वह इस युग में आकर सामान्य जन तक पहुँच गया| लोकधर्मी नाटक विभिन्न भाषाओं भिन्न बोलियों और विभिन्न शैलियों में बनना शुरू हुआ| स्वांग, नौटंकी, रामलीला, रासलीला जैसे लीला नाटक, माच, भांड, विदेशिया जैसे लोकनाट्य प्रकारों में धार्मिक भावना के साथ साथ लौकिक विषयों को भी देखा जाता है|

लोकनाट्य की परंपरा ने क्लासिक संस्कृत नाटक के सुगठित ढाँचे को और भी लचीला बनाते हुए उसे लोकमानस के और निकट ला खड़ा कर दिया| संस्कृत नाटक के प्राकृत और अपभ्रंश के स्थान पर क्षेत्रीय भाषाओं, बोलियों का प्रारम्भ हुआ| यह एक ऐसी परंपरा थी जिसने रंगमंच और भारतीय रंगपरम्परा पर अपना दूरगामी प्रभाव छोड़ा|

पारंपरिक रंगकर्म के विकास में मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है| डॉ. गोविन्द चातक के शब्दों में –"अपभ्रंश के रास नाटकों से लेकर व्रज के रासलीला नाटकों तक जो समृध्द परम्परा बरसों तक इस देश में पनपती रही, उसने रंगमंच को सूना नहीं रहने दिया| हिन्दी के सारे मध्यकालीन भक्ति काव्य ने इससे अत्यधिक प्रेरणा ली है|"[1]

रामलीला और रासलीला शुध्द धार्मिक कथानकों को लेकर चलती है| इसके मूल में भक्ति भावना का गहरा पुट है| सामान्यतः रास की उत्पत्ति व्रज में सोलहवीं शती में मानी जाती है| किंतु रासलीला देश के विभिन्न भागों में किसी

---

[1] डॉ. गोविन्द चातक - हिन्दी नाटक इतिहास के सोपान - पृ : 55

रूप में विद्यमान रही है| रासलीला की भांति रामलीला को भी लोक में अद्‌भुत लोकप्रियता मिली है| लोकधर्मी परम्परा को भक्ति आन्दोलन के कारण अधिक प्रश्रय मिलता गया जिससे रामलीला और रासलीला को एक स्थिर आधार भूमि प्राप्त हुई| रामलीला के प्रवर्तन का श्रेय गोस्वामी तुलसीदास को दिया जाता है| संभवतः रामकथा इससे पहले भी मंच पर पाठ्य रूप में प्रस्तुत की जाती रही थी| रामलीला का आधार ग्रंथ तुलसीदास का रामचरितमानस है| किंतु कालान्तर में रामलीला मंच के लिए कई रामलीला नाटक लिखे गये जिनमें प्राणचन्द्र का रामायण महानाटक, हृदयराम का हनुमन्ननाटक अदि उल्लेखनीय है|

मध्य भारत में इन लीला रूपों के साथ साथ नौटंकी, माच, ख्याल, भगत आदि भी विशेष रूप से प्रचलित रहे हैं| नौटंकी या स्वांग का प्रचलन संभवतः सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी में हुआ अन्य लोकनाट्य रूपों की भांति इस पर भी काव्य और संगीत पर विशेष बल दिया हुआ है| भारतेंदु और उनके सहयोगियों ने लोकनाट्य के तत्वों को अपनाया है| स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में इन लोकनाट्य रूपों का योगदान विशेष उल्लेखनीय है|

संस्कृत रंगमंच के विघटन के बाद जो नयी ऊर्जा भाषाओं के रंगमंच में प्रवाहित हुई थी और जिसका अपूर्व प्रस्फुटन भक्तियुग में हुआ था वह धीरे-धीरे क्षीण होने लगी| सत्रहवीं से उन्नीसवीं शताब्दी के बीच राजनैतिक और सामाजिक अस्थिरता के वातावरण में लोक रंगमंच किसी प्रकार अपना अस्तित्व

टिकाया हुआ था| ऐसी स्थिति में 19वी शताब्दी के मध्य में अंग्रेजी राज की प्रतिष्ठा से एक सर्वथा भिन्न प्रकार की संस्कृति से भारतीय संस्कृति का सामना हुआ| देश के बड़े-बड़े नगर जो नयी जीवन पध्दति के प्रमुख केन्द्र थे वहाँ एक ऐसी रंग शैली की नीव डाली गयी जो शासक वर्ग की रुचियों से मिली जुली होने के कारण देश की प्रमुख रंग शैली बनने लगी| इस दौरान पारम्परिक ढंग का रंग-कार्य पूरी तरह गाँवों में सिमट गया और वहीं किसी न किसी प्रकार अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए संघर्ष करने को बाध्य हुआ|

अंग्रेजी शासन और उनकी नयी संस्कृति ने भारतीय जीवन के सभी पक्षों को बुनियादी तौर पर प्रभावित किया, जिसमें रंगकर्म भी शामिल था| भारत में अंग्रेजी शासन की स्थापना और अंग्रेजी साहित्य की प्रचार-प्रसार के साथ-साथ अंग्रेजी, बँगला, गुजराती, मराठी के माध्यम से हिन्दी रंगमंच पर पश्चिमी प्रभाव दाखिल हुआ| रंगकर्म में कलकत्ता, मुम्बई जैसे उन नये शहरों में यह प्रभाव उभरा जो अंग्रेजी के व्यावहारिक, औद्योगिक या प्रशासकीय केन्द्र थे| अंग्रेजों ने कलकत्ता में अंग्रेजी रंगकार्य का प्रारम्भ किया जिसका प्रभाव तत्कालीन बंगला समाज पर पडना आश्चर्य की बात नहीं थी| 1756 में कलकत्ते में यह प्रक्रिया प्ले हाऊज नामक अंग्रेजी रंगशाला की स्थापना से प्रारम्भ हुई| मुम्बई में 1770 ई. में 'बम्बई थिएटर' नामक रंगशाला की स्थापना हुई| इसके बाद कई थिएटर कलकत्ता और मुम्बई में अंग्रेजों ने बनाये|

अंग्रेजों के इन थिएटरों से प्रभावित होकर कलकत्ता और मुम्बई के बँगला मराठी और गुजराती समाज को ऐसा महसूस हुआ कि ऐसी ही रंगशालाएँ अपनी भाषाओं के नाटकों के लिए भी बननी चाहिए और इस दिशा में प्रयास भी शुरू हुए| बँगला रंगमंच के विकास में संस्कृत अथवा मध्यकालीन नाट्य परम्परा का योगदान नहीं के बराबर है, वहाँ पौराणिक-ऐतिहासिक कहानियों और लोककथाओं पर आधारित नाटक लिखकर खेलने तक बँगला साहित्य सीमित रहा| फिर भी कई अन्य दृष्टियों से यह नया बँगला रंगमंच देश का अंग्रणी और सबसे समर्थ रंगमंच बना|

बँगला रंगमंच की तरह मराठी और गुजराती रंगकर्म पर भी अंग्रेजी प्रभाव पड़ा| परंतु मराठी नाटक मंडलियों के प्रारम्भिक नाटक परम्परा रंगमंच तथा संस्कृत से प्रभावित थे| इस प्रकार आधुनिक हिन्दी रंगमंच को गति देने में अहिन्दी भाषी रंगमंचों का योगदान महतवपूर्ण रहा|

आधुनिक युग के प्रारम्भ में हिन्दी रंगमंच अपनी जड़े जमाने की कोशिश कर रहा था| हिन्दी रंगमंच और मराठी, गुजराती तथा बँगला रंगमंच के बीच में परस्पर किसी न किसी रूप में आदान प्रदान होता रहा| इन मंडलियों द्वारा हिन्दी नाटक का मंचन भी होता था| ये मंडलियाँ व्यावसायिक नाटक मंडलियां थी| उन्हें मुम्बई के बाहर उत्तर भारत की यात्रा के दौरान हिन्दी भाषी दर्शकों के सामने अपने नाटक प्रस्तुत करने पड़ते थे| इस प्रकार अपनी कम्पनियों की प्रस्तुतियों को लोकप्रिय बनाने के लिए ही सही हिन्दी में नाटक लिखकर प्रस्तुत

करना आवश्यक बना| इसी प्रयत्न की सबसे बड़ी उपलब्धि के रूप में आधुनिक हिन्दी रंगमंच हमारे सामने उभरा|

हिन्दी रंगमंच

हिन्दी रंगमंच का प्रारम्भ लखनऊ से माना जाता है| लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह् स्वयं एक नाटककार थे| हिन्दी रंगमंच की शुरूआती दौर में उनका योगदान महत्वपूर्ण था| “रंगमंच पर नाटक के अभिनय की ओर झाँसी के महाराज गंगाधरराव और लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह् की दृष्टि भी गई| वाजिद अली शाह् ने किस्सा ‘राधा कन्हैया’ स्वयं लिखा|”[1]

वाजिद अली शाह् ने हुजुर बाग़ लखनऊ में राधा कृष्ण की प्रणयलीला पर आधारित यह नाटक प्रस्तुत किया| यह नाटक कृष्णलीला पर आधारित होने पर यह रास या रहस नाम से भी जाना जाता था| क्रमशः वाजिद अली शाह् ने अपने एक नाट्य-दल का संगठन किया जिसमें वे स्वयं भी भाग लेते थे और नाट्य निर्देशन भी करते थे|

आरम्भिक अवस्था में हिन्दी नाट्य लेखन रंगमंच की दृष्टि से विषय दुविधा में थी| हिन्दी रंगमंच का स्वरूप सुनिर्धारित नहीं था| आधुनिक हिन्दी रंगमंच के विकास क्रम में व्यावसायिक रंगमंच और अव्यावसायिक रंगमंच का योगदान महत्वपूर्ण है|

---

[1] बच्चन सिंह - हिन्दी नाटक -पृ : 20

पारसी रंगमंच

आधुनिक हिन्दी नाट्य क्षेत्र में भारतेंदु के आगमन से पूर्व हिन्दी को रंगमंच देने में पारसी थिएटर कंपनियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, “सन् 1853 ई में अमानत ने ‘इन्दर सभा’ नाटक लिखा| यह सही अर्थ में ओपेरा था| यह काफी लोकप्रिय हुआ| पारसी रंगमंचों को “इन्दर सभा” की परम्परा से जोड़ा जा सकता है| 1853 में पहली ‘पारसी नाटक मण्डली’ की स्थापना हुई|”[1] परंतु कई विद्वानों ने पारसी रंगमंच योरोप से आयी ड्रेमेटिक कंपनियों से माना है जिनके नाटकों से प्रभावित होकर कलकत्ता और मुम्बई के धनिकों के आश्रय में नाटक कम्पनियाँ खोली गयीं|

श्री कृष्णदास के अनुसार –“कुछ संपन्न पारसियों ने भारतीयों में पाश्चात्य प्रभाव लक्ष्य करते हुए नाटक दिखाकर धनोपार्जन करने के लिए लगभग 1870 ई. में ‘ओरिजिनल थियोट्रिकल’ कंपनी की स्थापना की| सेठ पेस्ठन जी फ्राम जी इसके मालिक थे और परवेज खुरशेद जी बल्लीवाला, कावस जी खटाऊ, सोहराब जी और जहाँगीर जी आदि ने अभिनय के क्षेत्र में इसमें काफी अच्छा नाम पैदा किया|”[2]

सेठ पेस्टन जी फ्रेम ने सन् 1870 के लगभग ‘ओरिजिनल थियोट्रिकल कंपनी’ खोलकर व्यावसायिक रंगमंच पर एक नयी शुरुआत की| लेकिन ये

---

1 डॉ. बच्चन सिंह - हिन्दी नाटक -पृ : 20

2 श्री कृष्ण दास, नाटक के सौ बरस, पृ : 30

ज्यादा समय तक टिक नहीं पाए| आगे चलकर उनके और उनके सहयोगियों के आपसी मतभेद के कारण ये मंडली आगे न चलीं|

सन् 1872 में खुरशेद जी बल्लीवाला ने 'ओरिजिनल थियोट्रिकल कंपनी' दिल्ली में खोली| बल्लीवाला जी अच्छे हास्य अभिनेता के रूप में प्रसिध्द थे| इस नाटक मण्डली के अन्य कलाकार थे मुंशी विनायक प्रसाद 'तालिब', लैलो-निहार, दिलेर-दिलशेर जैसे उर्दू नाटकों के अलावा इस कंपनी ने विक्रम-विलास, 'गोपीचंद' जैसे हिन्दुस्तानी नाटक भी खेले|

1898 में बम्बई में एक दूसरी कंपनी भी खुली| आलफ्रेड-थिएट्रिकल कंपनी नाम के इस मंडली का संस्थापक कावस खटाऊ जी थे| इस कंपनी ने प्रसाद बेताब, मेंहदी हसन 'अहसन' को अपना नाटककार नियुक्त किया| उन्होंने फरेबे मुहब्बत, महाभारत रामायण, पति-पत्नी, कृष्ण-सुदामा जैसे नाटकों की रचना की|

सन् 1914 के बाद 'न्यू आलफ्रेड' कंपनी स्थापित हुई| सोहराब जी इसके प्रबंधक निर्देशक थे| आगा हश्र तथा राधेश्याम कथावाचक इस कंपनी के दो प्रमुख नाटककार थे| हिन्दी रंगमंच के विकास में बेताब जी, हश्र जी और राधेश्याम जी की देन मूल्यवान है| पारसी कंपनियों के नाटकों को पाश्चात्य प्रभाव से अलग एक नई दिशा में मोड़ने का कार्य इनसे संभव हुआ|

बेताब के 'महाभारत' नाटक से हिन्दी रंगमंच का आरम्भ मानना चाहिए| आगा हश्र जी प्रारम्भ में डेढ़ दर्जन उर्दु नाटक लिखे| पर बाद में बेताब और

राधेश्याम जी की तरह हिन्दी नाटक लिखने लगे| हिन्दी का 'सीता बनवास' उनके प्रसिद्ध नाटक है|

राधेश्याम कथावाचक पौराणिक नाटक लिखने में माहिर थे| उनके चर्चित नाटकों में 'वीर अभिमन्यु' और 'प्रह्लाद' प्रमुख है| प्रह्लाद में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति कुशलतापूर्वक की गई है|

पारसी कंपनियों ने जो कुछ रंगमंच के लिए किया उसमें व्यवसाय की वृत्ति ही निहित थी| व्यावसायिक रंगमंच होने के कारण पारसी नाटक कंपनियों के लिए अधिकाधिक जनसमुदाय को अपनी अपनी तरफ आकर्षित करना आवश्यक था| इसलिए चमत्कार का प्रदर्शन होता था|

पारसी कंपनियों ने खूब धन कमाया| धनोपार्जन के लक्ष्य से लिए जाने से लोगों को आकर्षित करना अनिवार्य बन गया| इसीलिए ही पारसी रंगमंच अधिकाधिक तडकीला-भडकीला तथा फूहड़ बन गया| इसकी वजह से सभ्य, सुसंस्कृत समाज उससे दूर हो गया| परंतु अपनी तमाम कमियों के बावजूद हिन्दी रंगमंच के विकास में पारसी रंगमंच ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है|

डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार –"हिन्दी नाटकों में ऐतिहासिक नाटकों की परंपरा का विकास बहुत कुछ पारसी नाटकों से प्रभावित है| खेद है कि हिन्दी नाटककार इस मंच से घृणा करते रहे| इस मंच के प्रति सामान्य जन के उत्साह का उन्होंने लाभ नहीं उठाया| यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसकी प्रतिक्रिया में

शौकिया मंचों की स्थापना की फिर भी उनके युग के रोमैंटिक नाटकों तथा जयशंकर प्रसाद के नाटकों पर पारसी रंगमंच का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है|”[1]

बीसवीं सदी के तीसरे दशक के मूक और फिर चौथे दशक में सवाक् फिल्मों का आगमन हुआ और पारसी रंगमंच बिखरने लगा| जनता भी फ़िल्मी पर्दे पर अधिक आकर्षित होने लगा| परिणाम स्वरूप पारसी रंगमंच धीरे-धीरे अपना अस्तित्व खो गया|

इन्डियन पीपुल्स थियेटर(इप्टा)

पारसी रंगमंच की मृत्यु के बाद सन् 1942 में बंबई में ‘इप्टा’ का जन्म हुआ| मनोरंजन भट्टाचार्य इसके प्रथम प्रधान थे| इनके सहयोगियों में शंभु मिश्र, विष्णु डे, जार्ज विश्वास और विनायक दास प्रमुख थे| इसके संस्थापक श्री.पी.सी. जोशी थे| यह संस्था इतिहास की मांग थी द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारतियों को यह आभास होने लगा था कि वह अपने लिए लड़ रहा है| आज़ादी से पहले और बाद हिन्दू, मुस्लिम के आपसी दंगों ने परिस्थितियों को खतरनाक बना दिया था| अमीर-गरीब की समस्याएँ, नारी शोषण और अनेक दूसरी तरह की समस्याओं के समाधान के लिए ‘इप्टा’ ने रास्ता सुझाने का काम किया था|

देश विभाजन के समय जब खून-खराबा हो रहा था, पीपुल्स थियेटर के कलाकारों ने गलियों में आकर एकता के नाटक खेले| थियेटर के माध्यम से ये

---

[1] डॉ. बच्चन सिंह - हिन्दी नाटक, पृ : 22

कलाकार लोगों को जगाने और समझाने का काम कर रहे थे| सफल नाट्य प्रस्तुतियों द्वारा जन-जन के सोच में परिवर्तन लाने का प्रयास कर रहे थे| 'इप्टा' ने अपने रंगमंच पर संपूर्ण कला परिवेश के तथ्य प्रस्तुत किये थे| इस संस्था ने फूहड़ नाटक प्रस्तुत नहीं किये अपितु रंगशैलीयों के नवीन प्रयोग द्वारा सही व सच्चे कथानक को अभिव्यक्ति दी थी| " 'इप्टा' रंगकर्मियों ने लोकनाट्यों के रूप को भी पुनर्जीवित किया उनमें नये विषय अवतरित किये|"[1] अर्थात इप्टा लोक कलाओं के सहारे से प्रस्तुतियाँ करने लगा इसके लिए उन्होंने मंच की प्रचलित रीतियों को तोडकर अपना ही एक स्वाभाविक और सरल नाट्य-रूप ढूँढ़ लिया था| इस प्रकार यह संस्था एक गाँव से दूसरे गाँव जाकर नाटक करते थे इसके परिणाम स्वरूप देश भर में इसकी बहुत सी शाखाएँ खुलने लगे और जाने-माने कलाकार व रंगकर्मी इससे जुड़ने लगे| इस प्रकार अनेक वर्षों तक रंगकर्म के प्रति समर्पित रहने के बाद यह संस्था आपसी फूट के कारण बिखर गई| लोकनाट्य के क्षेत्र में यह संस्था ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है और इसके उद्देश्य के बारे में डॉ. सुरेश वशिष्ट का कहना है – "अपने उद्देश्य को सामने रखते हुए रंगविधान के साथ जन चेतना जगाने का महत्वपूर्ण कार्य इस मंच ने शुरू किया था ....लोकमंच को अपनाने का इसका तात्पर्य आखिरी आदमी तक अपनी बात पहूँचाना था|"[2]

---

[1] बलवंत गार्गी, रंगमंच, पृ : 208

[2] सुरेश वशिष्ट, हिन्दी नाटक और रंगमंच: ब्रेख्त का प्रभाव, पृ : 60

पृथ्वी थियेटर

इप्टा के दो वर्ष बाद 'पृथ्वी थियेटर' का जन्म हुआ| इसकी स्थापना 15 जनवरी 1944 को बंबई में पृथ्वीराज कपूर ने की| रंगमंच के उत्थान के लिए सोलह् वर्षों तक 130 स्थानों पर घूम-घूमकर यह् संस्था राष्ट्रीय सास्कृतिक चेतना जगाने का काम करती रही| पारसी रंगमंच का प्रभाव होने पर भी इस संस्था के पास अपना बहुत कुछ था| जनता को सात्विक मनोरंजन प्रदान कर लोगों के मन में नाट्यकला के प्रति रुचि बढाने एवं व्यवसाय के साथ-साथ, पारसी रंगशैली से थोडा परे हटकर समाज के आदर्श और यथार्थ मांग को महत्व दिया| यह रंगमंच हिन्दू और मुसलमानों को आपसी सद्भाव एवं भाईचारे की प्रेरणा देता रहा पृथ्वीराज कपूर के निर्देशन में कई सफल नाटक हुए| यह थियेटर अच्छे कलाकार और बेशुमार सीन-सीनरियाँ लेकर दूर-दूर के कस्बों और मंडियों में घूम घूम कर अपना प्रदर्शन करता रहा| उस समय ऐसा कि थियेटर मंचों को सरकारी प्रोत्साहन भी मिलता रहा और अनेक संस्थायें खुलने लगी, जिससे हिन्दी रंगमंच को एक स्वच्छ दिशा प्राप्त हुई|

हिन्दुस्तानी थियेटर

'हिन्दुस्तानी थियेटर' का केन्द्र दिल्ली रहा| जिसके मुख्य प्रवर्तक थे हबीब तनवीर, कुदसिया जैदी, शमा जैदी और एम.एम. सैथ्यु आदि| इस थियेटर ने अनेक प्रमुख नाटकों का प्रदर्शन किया जिनमें 'मुद्राराक्षस', 'शकुन्तला', 'मिट्टी की गाडी' आदि प्रमुख थे| यथार्थवादी शैली को अपनाकर संगीत नाटकों

एवं काव्य नाटकों की तरफ भी यह संस्था अग्रसर हुए| शूद्रक के 'मृच्छटिकम्' का हिन्दी अनुवाद 'मिट्टी की गाडी' नाम से प्रस्तुत कर हबीब जी ने इसे 'नई नौटंकी' की संज्ञा दी|

आगे चलकर इस संस्था ने बर्टोल्ट ब्रेख्त के प्रभाव में 'सफ़ेद कुण्डली' का प्रदर्शन किया जो बेहत सफलता अर्जित की| डॉ. सुरेश वशिष्ट जी के अनुसार 'हिन्दुस्तानी थियेटर' ने संस्कृत नाटकों के अनुवादों के अलावा कई शास्त्रीय नाटक भी खेले जिनमें अन्य प्रभाव के साथ साथ भारतीय मंच के निजी रूप खोजने का यत्न भी किया था|[1] बाद में हबीब तनवीर जी ने 'नया थियेटर' की नीव रखी जिसमें उन्होंने 'मिर्जा सोहरत' और 'रुस्तम' सोहराब' नाटकों का सफल प्रदर्शन किया|

राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय

विश्व को भारतीय रंगमंच की सही पहचान कराने के उद्देश्य को लेकर 'संगीत नाटक अकादमी', 'सांग एंड ड्रामा डिविज़न' और राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' की स्थापना की गई| 'संगीत नाटक अकादमी' संगोष्टियों, उत्सवों एवं समारोहों के आयोजन से प्रादेशिक रंगकारों को समीप लाने का प्रयास किया जिससे अन्य विकसित रंगमंचों से सम्पर्क स्थापित करने का मौका मिला जो रंगकार्य में उत्साहजनक वृद्धि लायी|

---

[1] डॉ. सुरेश वशिष्ट, हिन्दी नाटक और रंगमंच, ब्रेख्त का प्रभाव, पृ : 61

वर्तमान रंग कार्य का बहुत ज्यादा श्रेय राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय को है जिसकी स्थापना सन् 1959 को दिल्ली में हुई| आज देश भर में इस संस्था से प्रशिक्षित रंगकर्मी फैलते जा रहा है| इस संस्था को व्यापक परिप्रेक्ष प्रदान करने में 'इब्राहिम अल्का' जी का नाम उल्लेखनीय है| जो इस संस्था के प्रथम निर्देशक थे जिन्होंने पन्द्रह वर्ष के अनवरत साधना से इस संस्था को राष्ट्रीय मान्यता और महत्ता हासिल करा दी| 'अल्का जी' के सहयोग से हिन्दी के 'अंधायुग', आधे अधूरे', 'आषाढ़ का एक दिन' और 'लहरों का राजहंस' नामक नाटकों की सफल प्रस्तुतियाँ हुई| भारतीय रंगमंच की तलाश और विशेषकर हिन्दी रंगमंच को एक महत्वपूर्ण ऊँचाई पर पहूँचाने का कार्य इस संस्था ने किया है| परंपरागत शैलियों और प्रदर्शन पद्धतियों को भी संस्था ने निष्ठा से देखा और परखा है तथा उसमें आमूल परिवर्तन कर उसे तलाशा है| डॉ. सुरेश वशिष्ट के अनुसार – "पारसी रंगमंच की लोकप्रियता और पृथ्वी थियेटर एवं 'इप्टा' का स्वस्थ योगदान व जनमानस में जागृति का संचार, 'हिन्दुस्तानी थियेटर' व अनेक छोटी-बड़ी नाट्य संस्थाओं के सहयोग के बावजूद भी हिन्दी रंगमंच अपनी स्वस्थ और अलग पहचान बना पाने में उतना समर्थ नहीं हुआ जितना 'राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय' की स्थापना के बाद उसे सफलता मिली|"[1]

---

[1] डॉ. सुरेश वशिष्ठ, हिन्दी नाटक और रंगमंच, ब्रेख्त का प्रभाव, पृ : 68

इस प्रकार इस संस्था के द्वारा हिन्दी में नई रंग चेतना का उदय हुआ| इन संस्थाओं के प्रयासों से रंगमंच की परंपरागत प्रवृत्तियों की तरफ हमारा ध्यान जाने लगा है और लोकमंच एवं दूसरे रूपों के प्रति हमें जागरूक भी किया|

भारतेन्दु युगीन रंगमंच

आधुनिक हिन्दी रंगमंच के इतिहास में भारतेंदु हरिशचन्द्र एक युगप्रवर्तक रंगकर्मी के रूप में अवतरित हए थे| भारतेंदु जी का जन्म जिस राजनीतिक सांस्कृतिक और साहित्यिक उथल-पुथल के समय में हुआ वह इतिहास में चिरस्मरणीय रहेगा| उनका युग संक्रान्ति का युग था|

डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार –"अंग्रेजों ने अपने साम्राज्यवाद की जड़ें मजबूत बनाने के लिए देशी-उद्योग धंधों, आचार-विचार, संस्कृति-शिक्षा आदि पर जो सांघातिक प्रहार किए उनके अनजाम में इस देश का काफी हित हुआ| प्राचीन जर्जर रुढियों से चिमटे हुए भारतवासियों को नए ढंग से सोचने के लिए बाध्य होना पड़ा|"[1]

उन्नसवीं शताब्दी संसार के इतिहास को एक जबर्दस्त मोड़ देने वाली शताब्दी है| 1857 की क्रांति के परिणामस्वरूप ब्रिटिश राज्य सत्ता ने जहाँ राजनीतिक तौर से अपनी जड़े जमा ली और इस उपनिवेश पर मुख्यतः अपनी सुविधा के लिए औद्योगिक क्रांति की| रेल, तार, टेलीफोन, जहाज़, मोटरकार

---

[1] डॉ. बच्चन सिंह - हिन्दी नाटक - पृ : 22

और अंत में हवाई जहाज़ आदि का आगमन इसी युग में हुआ था| अंग्रेजों की औद्योगिक क्रांति से बढती हुई महँगाई, बेकारी, टैक्सों की भरमार, फिसूलखर्ची, फैशन, आदि ने देश की अर्थ व्यवस्था पर बड़ा भारी प्रहार किया| न केवल इतना बल्कि 1878 में अंग्रेजी सरकार ने भारतीय भाषाओं को भी पनपने से रोक दिया और अपने साम्राज्यवाद को और भी दृढ़ करने के लिए देश में अंग्रेजी शिक्षा का जो सूत्रपात किया उससे हमारे देश में पढ़े लिखे व्यक्तियों का एक नया मध्यवर्ग पैदा हुआ| देश में एक नयी राष्ट्रीय चेतना करने का श्रेय इसी वर्ग को जाता है| भारतेंदु मंडल के अधिकांश व्यक्ति इसी वर्ग के थे|

उन्नीसवीं शताब्दी में सामाजिक दृष्टि से देश कई वर्ग में बँटा हुआ था| पहला सामंत वर्ग जो ब्रिटिश साम्राज्य के सहायक होकर अपने ही देश की जनता के साथ जुल्म करते थे| दूसरा वर्ग है मध्यवर्ग अंग्रेज़ी शिक्षा का लाभ उठाते हुए नयी राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने का श्रेय इनको है| तीसरा वर्ग था खेतिहर और मज़दुर जिनपर ब्रिटिश राज्यसत्ता सामंत वर्ग और मध्यवर्ग ये तीनों अपना जुल्म ढो देते थे| भारतेंदु युग के रचनाकारों ने इस युग के यथार्थ को प्रकट करने का खूब प्रयत्न किया|

भारतेंदु युग में बाल विवाह, बेमेल विवाह, वृद्ध विवाह, विधवा विवाह जैसी वैवाहिक रूढ़ियाँ मुँह बाये खडी थी| उसी प्रकार मद्य-माँस सेवन, जुआ खेलने की कुरीति, पंडों, ओझाओं और मठाधीशों के द्वारा फैलाए गए अंधविश्वास आदि ने समाज को बहुत मैला कर दिया था| उस समय नारी तो उपेक्षित थी|

स्त्री शिक्षा महज एक सपना ही थी| यानी कि यह युग अनेक समस्याओं का था| उनके प्रति जागरुकता और सक्रियता का भी युग था| भारतेंदु उस युग के प्रति जागरूक व्यक्ति थे उन्होंने युग यथार्थ को उभारने एवं सुधारने वाले कई नाटकों की रचना की|

डॉ. गोविन्द चातक के शब्दों में –"विषयवस्तु के कई सोद्देश्य आयामों के लिए भारतेंदु के नाटकों का महत्त्व है| युग की समस्त चेतना और समस्याओं का समाहार कर ही उन्होंने नाटक लिखे थे| देश और राष्ट्र का उद्धार, आर्थिक दुर्दशा, देशवासियों की पारम्परिक कला, फूट, आलस्य, निर्धनता, अविद्या, पाश्चात्य सभ्यता का अंधानुकरण, धार्मिक अंधविश्वास, छुआ-छूत, पाखण्ड, भूत-प्रेत मातृभाषा के प्रति उदासीनता, बाल विवाह आदि अनेक समस्याओं से उनके नाटक सराबोर है|"[1]

भारतेंदु युग की सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने के लिए अनेक समाज सुधारकों ने प्रयास किया था| देश में वैचारिक क्रांति का बहुत कुछ दायित्व इन समाज सुधारकों तथा उनकी संस्थाओं का है| कलकत्ते में राजाराम मोहन रोय ने 'ब्रह्मसमाज' नामक संस्था की नीव डाली| उत्तर भारत में महर्षि दयानंद सरस्वती के नेतृत्व में 'आर्य समाज' की स्थापना की गई| रामकृष्ण परमहंस द्वारा 'रामकृष्ण मिशन', आनी बसेंट द्वारा 'थियोसफिकल सोसिटी' जैसी अनेक संस्थाओं तथा उनके पुरस्कर्ताओं द्वारा अनेक महत्वपूर्ण काम किए

[1] गोविन्द चातक - हिन्दी नाटक इतिहास के सोपान -पृ : 12

गये हैं| भारतेंदु से लेकर नाटक के माध्यम से समाज के अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ उठाने का कार्य शुरू हुआ, वह भी लोकनाट्य परंपरा के तहत|

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र :- आधुनिक हिन्दी के इतिहास में भारतेंदु हरिश्चन्द्र एक युग प्रवर्तक रंगकर्मी थे| भारतेंदु बहुज्ञ थे| वे युग के प्रति जागरूक थे| एक विशाल देश जागरण और देश भक्ति के विशाल आन्दोलन के केन्द्र में वे खड़े थे|

डॉ. बच्चन सिंह के अनुसार –"जिस समय भारतीय समाज राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक परिवर्तनों के मोड़ से गुजर रहा था उस समय भारतेंदु हरिश्चन्द्र ने उसकी अध्वोंन्मुखी शक्ति को पहचाना और उसे विकासमान बनाने में सारी शक्ति लगा दी|"[1]

भारतेंदु ने इस बात को अच्छी तरह समझ लिया था कि सामाजिक वास्तविकता की यथार्थ अभिव्यक्ति नाटकों में ही हो सकती है| ऐसी स्थिति में छन्दोबद्ध नाटकों की अनुपयुक्तता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने गद्य का प्रवर्तन किया| भारतेंदु के नाटकों के रूप विन्यास तथा विषयवस्तु दोनों पर संक्रमणकालीन परिवर्तनशीलता की गहरी छाप पड़ी है| यह ऐसा भी समय था जहाँ बुद्धि जीवि वर्ग के साथ आम जनता को भी आकर्षित करने की शक्ति रखने वाला सुरुचिपूर्ण रंगमंच न के बराबर था| रंगकर्म के नाम पर व्यावसायिक पारसी रंगमंच और उसके साथ गाँवों में सिमटा हुआ लोक-रंगमंच अपने

---

[1] डॉ. बच्चन सिंह, हिन्दी नाटक, पृ : 23

अस्तित्व को टिकाए रखने का प्रयास कर रहा था, "भारतेंदु ने जब नाट्यलेखन कार्य आरंभ किया तब उस समय नाटक की मुख्यतः पाँच शैलियां विद्यमान थीं, जिनमें चार-रामलीला, रासलीला, स्वांग एवं यात्रा आदि जननाटकों की थी तो पाँचवी मौलिक साहित्यिक नाटकों की थी| इन शैलियों ने उन्हें नाटक लिखने की प्रेरणा देने के साथ उनका मार्ग भी प्रशस्त्र किया|"[1]

डॉ. गोविन्द चातक ने भी भारतेंदु को अपने युग के बहुत बड़े शैलीकार बताया है| उनके अनुसार –"भारतेंदु और उनके सहयोगियों की महत्ता इस बात में है कि वे लोकजीवन, लोकवाक्-पद्धति आदि से पूरी तरह परिचित थे| अतः लोक से सम्बद्ध शैली में उन्होंने हिन्दी के जनपदीय रूप को भी अपने नाटकों की भाषिक संरचना का अंग बनाया|"[2]

इस प्रकार भारतेंदु के सामने ऐसी स्थिति थी जो उनके नाटककार के रूप को झकझोर कर रही थी| पर उन्होंने स्वयं इन सबसे प्रेरणा ग्रहण करते हुए किसी एक पद्धति का अन्धानुकरण न कर सुरुचिपूर्ण नाटक लिखकर उसे मंचित करने का संकल्प किया और उसे साकार भी कर दिखाया|

भारतेन्दु के नाटक

भारतेन्दु ने साहित्य के सभी अंगों-कविता नाटक, आख्यान, निबंध तथा इतिहास - पर लेखनी उठाई थी| वह अपने प्रत्येक रूप में महान भी थे किंतु

---

[1] डॉ. शांति मलिक, भारतेंदु युग के नाटकों की शिल्पविधि, पृ : 39

[2] गोविन्द चातक, हिन्दी नाटक इतिहास के सोपान, पृ : 14

उनकी प्रतिभा विशेषतः उनके नाटकों में प्रकट हुई है| उनके नाट्य कृतियों में तत्कालीन परिस्थितियों, मौजूदा राजनीतिक, सामजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों का दस्तावेज है|

भारतेंदु युग में मौलिक एवं अनूदित दोनों प्रकार के नाटकों की रचना हुईं| स्वयं भारतेंदु ने जिन नाटकों की रचना की उनमें अनेक नाटक अनूदित हैं| जिनमें 'रत्नावली', 'धनंजयविजय', 'पाखण्ड-बिडंबन', 'मुद्राराक्षस' और कर्पूरमंजरी प्राकृत से तथा 'दुर्लभबन्धु' अंग्रेजी से अनूदित हैं| मौलिक नाटकों में 'भारत जननी', 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति', 'विषस्य विषमौषधम्', 'भारत दुर्दशा', 'नीलदेवी', 'अंधेर नगरी', 'सति प्रताप', 'प्रेम जोगिनी' आदि है| देश काल की चेतना उनके सभी नाटकों में है| अपने नाटकों के द्वारा उन्होंने तत्कालीन ज्वलन्त समस्याओं एवं प्रश्नों को केवल उठाया ही नहीं बल्कि उनके सार्थक समाधान का प्रयत्न भी किया है| भारतेंदु अपने युग के बहुत बड़े शैलीकार थे| उन्होंने विषय-वस्तु और नाट्य विधा के विविध रूपों को लेकर प्रयोग ही नहीं किए वरन् भाषा और शैली के क्षेत्र में भी अपना पूर्ण योगदान दिया| उनके नाटक ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, पौराणिक धरातलों पर केंद्रित हैं| इतना ही नहीं आम जनता की समस्याओं को उन तक पहुँचाने के लिए उन्होंने प्रचलित लोकशैली को भी अपनाया| लोकशैली, लोकभाषा, आम जनता से चुने गए साधारण पात्र, लोकगीत, लोककहानी, व्यंग्य जैसे अनेक वैविध्य उनके नाटकों की खूबी हैं| भारतेंदु युग से ही नाटकों में सामाजिक परिदृश्य एवं प्रभाव परिलक्षित होता है| भारतेंदु ने अपने नाटकों के

माध्यम से लोकशैली को और अधिक सामाजिक बनाया| लोकनाट्य शैली में ही आम आदमी की तकलीफों की अभिव्यक्ति संभव हो सकती है|

भारतेन्दु जी के मौलिक नाटकों में कथानक की दृष्टि से लोक से जुडी हुई कथा को चुनने का प्रयास किया गया है| 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' में धार्मिक कर्मकांड की आड़ में व्याप्त धर्मावलंबियों की कुटिलता का भंडाफोड़ दिखाया गया है| कथानक की दृष्टि से यह नाटक लोकनाट्य शैली की काल्पनिक श्रेणी में आता है| लोकजीवन से जुडे विश्वास रूढ़ियाँ आदि सहज रूप में कथानक पर प्रभाव डालते हैं| 'श्री चन्द्रावली' नाटिका एक प्रेम कथा है| इसमें काल्पनिक कथा के आधार पर रासलीला दिखायी गयी है| यह नाटक कृष्ण एवं चन्द्रावली के प्रेमविरह की कथा है| इस नाटक में भारतेंदु जी धार्मिक कथा के साथ रासशैली को अपनाकर नाटक को अनुपम बनाया है| ऐसे ही एक कथानक को लेकर 'सतीप्रताप' नाटक लिखा गया| 'सतीप्रताप' नाटक में धार्मिक कथा को लोकमान्यताओं और लोकविश्वासों से आधिक पुष्ट बनाया| लोकनाट्य के धार्मिक एवं पौराणिक कथानकों की श्रेणी में यह नाट्य आता है|

भारतेंदु जी के ऐतिहासिक नाटक 'नीलदेवी' का कथानक ऐतिहासिक होते हुए भी सामाजिक धरातल पर प्रस्तुत किया गया है| ऐतिहासिक कथानक तो सामान्यतः कई लोकनाट्य शौलियों पर देखा जाता है| प्रस्तुत नाटक का कथानक ऐतिहासिक होने पर भी लोकशैली का प्रभाव हम देख सकते हैं| वैसा

प्रभाव “भारत दुर्दशा” नाटक में भी देख सकते हैं| क्यों कि प्रस्तुत नाटक का कथानक देशभक्ति पर केन्द्रित है|

लोक कथानक पर लिखा गया भारतेंदु का प्रमुख नाटक है “अंधेरनगरी”| उन्होंने “अंधेरनगरी” नाटक में लोककथा, लोकपरिवेश और लोकभाषा को अपनाकर इसे पूर्णतः लोकशैली के ताने बाने से बुनने का प्रयास किया गया है| “अंधेर नगरी” नाटक में लोकनाट्य के समान कथा में हास्य की सृष्टि की गई है| लोकनाट्य का प्रारंभिक उद्देश्य ही मनोरंजन है| यहाँ ‘अंधेर नगरी’ में पूरी ग्रामीण जनता के परिवेश को व्यंग्यात्मक शैली में उभारा गया है| यह लोकनाट्य की खासियत है| डॉ. दशरथ ओझा ने कहा - ‘इस नाटक में ग्रामीण जनता ने आद्योपांत जितना हास्यविनोद पाया उतना ही राष्ट्रीयता का पाठ भी अनजाने सीख लिया| अन्यायी राजा को अंत में टिकटी पर चढ़ाकर भारतेंदु जी ने भविष्य में भारत उद्धार की ओर संकेत किया है| अकेले इस नाटक ने जितना उपकार ग्रामीण जनता का किया है उतना कदाचित् अद्यावधि किसी अन्य नाटक ने किया हो|”[1]

इस प्रकार भारतेंदु जी ने अपने नाटकों में लोकप्रचलित कथाओं एवं नाट्य शैलीयों को आधार बनाया| अतः ये नाटक इतनी मज़बूत एवं कालजयी बन गए हैं|

---

[1] डॉ. दशरथ ओझा - हिन्दी नाटक उद्भव और विकास, पृ : 181

गीत एवं संगीत योजना

लोकनाट्य जीवन की समग्र अभिव्यक्ति है| उसमें गीतों का समावेश सहज ही होता है| भारतेंदु जी के नाटकों में गीतों की बहुलता देखी जा सकती है| नाटकों में गीतों को शामिल करके उसको और भी रसात्मक बनाया गया है| जो कभी कभी मंच पर पात्रों की मनोदशा का वर्णन भी करता है| "वैदिक हिंसा हिंसा न भवति" नाटक में गीत-संगीत का प्रयोग किया गया है जिसमें लोकगीत के धुन पर आधारित एक गीत का उदाहरण इस प्रकार है|

"रामरस पिओ रे भाई जो पिए सो अमर होई जाई |

चौके भीतर मुद्रा पाके जैबलै नहाय कै ऐसन जनम जर जाई ||

रामरस पीओ रे भाई ||"[1]

यह गीत नाटक में व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है| वह नाटक में रसात्मकता लाता है| भारतेंदु जी लोकनाट्य शैली की शक्ति पहचानते थे| "श्री चन्द्रावली" नाटक में भारतेंदु जी ने रास शैली का प्रयोग किया है| रासशैली में कृष्ण के प्रति प्रेम एवं उनके विरह को प्रकट करने हेतु विभिन्न गीतों का प्रयोग किया गया है| ऐसे ही प्रयोग "श्री चन्द्रावली" नाटिका में भी देख सकते हैं|

"सखी ये नैना बहुत बुरे|

[1] भारतेंदु जी, वैदिक हिंसा हिंसा न भवती, पृ : 8

तब सो भए पराये, हरि सो जब सो पाई जुरे ||

मोहन से रस बस ह्बै डोलत तलफत तनिक दुरे ||"[1]

"श्री चन्द्रावली" नाटिका स्थान स्थान पर ऐसे अनेक प्रयोग किए गये हैं| रासलीला में इस तरह के गीतों की अधिकता होती है| रासलीला का महत्वपूर्ण दृश्य है अन्त में होने वाली आरती| "श्री चन्द्रावली" नाटिका में भी इसी प्रकार के दृश्य हैं जिनमें प्रयुक्त गीत रासलीला की आरती गीतों के ही समान है|

"दोनों-नीके निरखि निहारिनैन भरि नैनन को जल अजु लहौरी

जुगुल रूप छबि अमित माधुरी रूप सुधा रस सिंधु बहौरी||"[2]

इस प्रकार गीत योजना की दृष्टि से भारतेंदु जी की नाटिका 'चन्द्रावली' में रासशैली का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित है| गुलाम भारत की व्यथा का वर्णन करने वाला प्रतीकात्मक नाटक है "भारत दुर्दशा"| कथानक की दृष्टि से लोकशैली पर न होने पर भी इस नाटक में प्रयुक्त गीतों को हम लोकशैली के निकट कह सकते हैं| इस नाटक में प्रमुख छंदों का प्रयोग हुआ है जैसे लावनी, गजल आदि |

"लावनी

रो अहु सब मिलकै आबदु भारत भाई

हा हा भारत दुर्दशा न देखि जाई||"[1]

---

[1] भारतेंदु जी, श्री चन्द्रावली, पृ : 5

[2] भारतेंदु जी, श्री चन्द्रावली, पृ : 15

प्रमुख छन्दों के प्रयोग होने पर भी इसमें प्रत्येक लोकनाट्य का प्रभाव लागू नहीं होता बल्कि प्रचलित सभी लोकनाट्य शैलियों के अनुरूप ही गीत योजना का निर्वाह हुआ है|

भारतेंदु के ऐतिहासिक नाटक 'नीलदेली' एवं पौराणिक नाटक "सतीप्रताप" में भी लोकगीतों का प्रयोग हुआ है 'नीलदेवी' नाटक में लावनी, गजल आदि के प्रयोग के साथ बधाई के गीत, वन्दना, लोरी आदि है|

"बधाई गीत

सब मिलि गाओं प्रेम बधाई|
यह संसार रतन एक प्रेमहि और बादि चतुराई|
प्रेम बिना फीकी सब बातै कहहु न लाखू बनाई||
जोग ध्यान जप तप व्रत पूजा प्रेम बिना बिनसाई||"[2]

"सतीप्रताप" नाटक में प्रयुक्त लावनी छप्पय ठुमरी और प्रमुख राग इस नाटक को लोकशैली से जोड़ते हैं|

"ठुमरी

सखीत्रय – देखों मेरी नई जोगनियाँ आई हो – जोगी पिय मन भाई हो|
खुल कैसे गोरे मुख सोहत जोहत दृग सुखदाई हो||"[1]

---

[1] भारतेंदु जी - भारत दुर्दशा - पृ : 18
[2] भारतेंदु - नीलदेवी, पृ : 7

प्रचलित लोकगीतों में बधाईगीत, लोरी आदि को लोकधुनों के साथ प्रयुक्त किया है|

भारतेंदु जी का प्रमुख नाटक “अंधेर नगरी” गीत योजना की दृष्टि से एक सफल नाटक है| गीतों में लोकगीतों के धुनों का अनुकरण है| लोकजीवन से सीधा संपर्क स्थापित करने में यह सक्षम भी है| इस प्रकार भारतेंदु जी ने अपने नाटकों में लोकगीत, लोकधुन, नृत्य आदि के मिश्रण से लोकशैली को मुखरित किया है जो उनके नाटकों को जनसामान्य के निकट रखते हैं|

कथावस्तु को गतिशीलता प्रदान करने, पात्रों के मनोभावों को अभिव्यक्ति देने तथा नाटक में रस की निर्झारिणी प्रवाहित करने के लिए भाषा एवं संवादों की आवश्यकता पड़ती है| इसी हेतु संवाद जितने संक्षित, सरल, सरस, तीखे गतिशील एवं प्रभावोत्पादक होंगे, नाटक उतना ही सुन्दर सफल एवं शक्तिशाली होगा| भारतेंदु ने संवादों पर विशेष ध्यान दिया है| इनके अधिकांश संवाद सरल, सुबोध, सजीव, मर्मस्पर्शी एवं अवसरानुकूल बन पड़े हैं| संवादों के दृष्टि से उल्लेखनीय रचनाएँ हैं – ‘नीलदेवी’, ‘सत्यहरिशचन्द्र’, ‘वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति’, तथा ‘सतिप्रताप’| प्रहसनों के संवादों में सहज विनोद व्यंग्य तथा अन्य आवश्यक तत्व सहजता के साथ शामिल किया गया है| लोकशैली के नाटकों की भाषा की विशेषता उसकी लोकभाषा एवं बोली के निकट होने में है| इस दृष्टि से

[1] भारतेंदु - सतिप्रातप, पृ : 14

'अंधेर नगरी', 'भारत दुर्दशा', 'श्री चन्द्रावली' और 'सती प्रताप' लोकभाषा एवं बोली के निकट जान पड़ते हैं|

'अंधेर नगरी' नाटक में लोकभाषा एवं बोली का प्रयोग किया गया है| इसके सवाद छोटे छोटे हैं जो सीधे सरल बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त हुए हैं

"नारंगीवाली –नारंगी ले नारंगी – सिलहट की नारंगी बुलवट की नारंगी

राम वाग की नारंगी, आनंदबाग की नारंगी| भाई नीबू से नरंगी|"[1]

लोकनाट्यों की एक और विशेषता है संवादों में तुकबंदी का समावेश जो उसे लयात्मकता प्रदान करती है| 'अंधेर नगरी' नाटक में बाज़ार के दृश्य इसी तरह के संवाद हैं| नाटक में एक जगह लोकबोली के प्रयोग भी मिलते हैं| "भारतदुर्दशा" नाटक में इसी प्रकार लोकबोलियों का प्रयोग हुआ है जो नाटक को लोकनाट्य के समकक्ष लाते हैं| 'सती प्रताप' नाटक की भाषा खुली बोली है लेकिन इस नाटक में पद्यमय संवादों का उपयोग हुआ है

"लावनी

लवंगी –'सीख! बोले जीवन महाकठिन ब्रत कीनो|

यह जोग भोख कोमल अंगन पर लीनो|

---

[1] भारतेंदु जी - अंधेर नगरी - पृ : 12

मधु –'सखि! यही जगत की चाल जिती है क्वारी|

उनके सभी विधि मात पिता अधिकारी||"[1]

लोकनाट्य में संवाद पद्यमय होते हैं| पद्यमय संवाद नाटक में कई स्थान पर हुए जो उसे लोकनाट्य के समकक्ष लाए हैं| भारतेंदु जी ने अपने नाटकों की भाषा अत्यंत स्वाभाविक, जीवनपूर्ण, प्रवाहमयी बनाने के लिए लोकप्रचलित लोकबोलियों का काफी प्रभावात्मक ढंग से प्रयोग किया| डॉ. शांति मलिक के शब्दों में –"भारतेंदु केवल खड़ी बोली गद्य के संस्थापक ही नहीं अपितु विभिन्न शैलियों के जन्मदाता भी है| इन भाषा शैलियों में लोकप्रचलित शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है, जिससे भाषा के प्रवाह एवं सौन्दर्य में पर्याप्त वृद्धि हुई है साथ ही स्वाभाविकता की भी रक्षा हुई है|"[2]

लोकनाट्यों को जनसामान्य के निकट लाने वाली विशेषता है उसका मंचन| लोकनाट्य मुक्ताकाशी मंच की अपेक्षा रखती है| भारतेंदु जी के नाटकों में मंचसज्जा और दृश्ययोजना लोकनाट्य शैलिओं के समकक्ष है| 'श्री चन्द्रावली' नाटिका रासलीला पर आधारित है| इसलिए नाटक का मंचन रासशैली निबाहा गया है लेकिन पूर्णतः नहीं| भारतेंदु के सभी नाटक साधारण मंच की अपेक्षा रखते हैं| किसी भी प्रकार की साज सज्जा या तैयारी की कोई आवश्यकता नहीं| "अंधेर नगरी" नाटक का मंचन खुले मंच पर कर सकते हैं| जिसमें अंक विभाजन

---

[1] भारतेंदु जी - सती प्रताप - पृ : 23

[2] डॉ. शांति मलिक - भारतेंदु युग के नाटकों की शिल्पविधि -पृ : 76

में पर्दा गिराने का संकेत दिया हुआ है| ऐसा टेकनीक भारतेंदु के सभी नाटकों में देख सकते हैं|

इस प्रकार भारतेंदु प्रचलित लोकशैलियों का प्रयोग करके अपने नाटकों को जनसामान्य के निकट लाये हैं| लोकशैलियों की विशेषताओं पर आधारित विविध पक्षों के विस्तृत विवेचन करने पर उनके अधिकांश नाटकों लोकनाट्य शैलियों का प्रभाव अंशतः हम देख सकते हैं| “श्री चन्द्रावली” नाटिका पर रासलीला का प्रचुर प्रभाव पड़ा है| इस प्रकार उनके नाटकों में किसी विशेष लोकनाट्य शैली का प्रभाव न होकर लोकनाट्य के तत्वों का प्रभाव हम अवश्य देख सकते हैं|

भारतेंदु ने अपने नाटकों द्वारा समयानुकूल समाज में सुधार लाना चाहा| इसीलिए उन्होंने अपने नाट्य साहित्य द्वारा तत्कालीन राष्ट्रीय दुर्बलताओं एवं सामाजिक जीवन की कुरूपताओं के प्रदर्शन के साथ उनके समाधान भी देने का प्रयास किया है|

भारतेंदु-युगीन रचनाओं के अध्ययन से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि तत्कालीन अधिकांश नाटककार निश्चित रूप से भारतेंदु की कृतियों से विषयगत एवं शिल्पगत प्रेरणा ग्रहण कर नाट्यसृजन करते थे| इस प्रकार सभी नाटककार अपने अपने भिन्न व्यक्तित्व रखते हुए भी एक विशाल साहित्यिक मंडल की तैयारी में लगे हए थे| भारतेंदु के सभी प्रकार के नाटक तत्कालीन लेखकों के लिए मार्गदर्शी से रूप में सिद्ध हुए हैं| भारतेंदु युगीन नाटकों में विभिन्न

सामाजिक परिस्थितियों तथा तत्कालीन राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक समस्याओं का वर्णन होता था| भारतेंदु ने प्रचलित लोकनाट्य तत्वों को अपने नाटकों में स्थान दिया उनके ही प्रभाव से जाने अनजाने ही उनके युग के अन्य नाटककारों के नाटकों में भी लोकनाट्य तत्व हम देख सकते हैं| रामलीला और रासलीला उस समय काफी प्रचलित थे| इस दोनों रूपों में उन दिनों नाटकीय तत्व विद्यमान थे| नौटंकी लोकशैली का भी काफी प्रचलन था| इसी कारण इनसे भी हिन्दी नाटकों को काफी प्रेरणा मिली उस समय की प्रायः सभी मौलिक कृतियों में लोकनाट्यों की झलक देखने को मिलते हैं| दूसरे शब्दों में हमारे आदि नाटककारों को इनसे भावात्मक एवं कलात्मक प्रेरणाएँ मिलीं|

भारतेंदु युगीन नाटककारों में देवकीनंदन त्रिपाठी, राधा चरण गोस्वामी, प्रतापनारायण मिश्र, लाला खड्गबहादुर मल्ल आदि नाटककारों ने अपने नाटकों में लोकबोलियों एवं लोकधुनों को शामिल करके अपने नाटकों को लोकशैलियों के करीब लाने का प्रयास किया है

देवकी नंदन त्रिपाठी की रचनाओं में “रुक्मणी हरण, कंसवध, नंदोत्सव, सीताहरण, बालविवाह, रक्षा बंधन, भारती हरण” आदि प्रमुख है| त्रिपाठी जी के नाटकों में मुख्यतः धार्मिक, पौराणिक कथानकों को स्थान मिला है जिनमें लोकविश्वास, रूढ़ियां आदि प्रमुख हैं|

भारतेंदु युग में रासलीला एवं रासलीला को आधार बनाकर अनेक नाटकों की रचना हुई है| इनमें “शीतला प्रसाद त्रिपाठी का नाटक “जानकी

मंगल' मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं जिनमें रासलीला का वर्णन है| रामचरित मानस को आधार बनाकर यह नाट्य लिखा गया है|

डॉ. नीना शर्मा का कहना है –"श्री बन्दीदीन कृत "सीताहरण" नाटक रामलीला पर आधारित है| ....भाषा लोकभाषा के अधिक निकट है|"[1]

ऐसा जान पड़ता है कि बन्दीदीन जी के साथ साथ श्री जगगोविंद मालवीय का "अथ रामचरित नाटक" लाला शालिग्राम वैश्य का "मोरध्वज" आदि नाटककारों के नाटकों में भी रामलीला का प्रभाव है|

डॉ. शांति मलिक के अनुसार - "देवकीनंदन त्रिपाठी कृत रामलीला, बन्दीदीन दीक्षित कृत "सीता स्वंयवर" नाटक, द्विजदास कृत "रामचरित' नाटक तथा शिवशंकरलाल वाजपेयी कृत "रामयशदर्पण" नाटक जन नाटकों की कोटी में आते हैं| उन दिनों सांग अथवा स्वांग नाटकों का अत्यधिक प्रचलन एवं प्रभाव देखकर प्रतापनारायण मिश्र ने तो कालिदास के प्रसिध्द नाटक "अभिज्ञान शाकुन्तलम" को गीतिनाट्य के रूप में सांगीत-शाकुंतल" नाम से स्वांग शैली पर ही लिखा| इनमें निहित गीत ग्रामगीतों को अथवा जनप्रिय रागों की ही धुनों पर रचे गए हैं|"[2]

भारतेंदु युग में कई लेखक हुए हैं जिनकी अधिकांश रचनाओं में लोकतत्व हम देख सकते हैं| भारतेंदु-काल के नाटककारों ने नाटक, एकांकी प्रहसन आदि

[1] डॉ. नीना शर्मा - आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन - पृ : 97

[2] डॉ. शांति मलिक - भारतेंदु युग के नाटकों की शिल्पविधि - पृ : 158, 159

लिखकर नाट्य क्षेत्र को उर्वर एवं विकासोन्मुख बनाने की कोशिश की| उन्होंने भारतेंदु द्वारा प्रचलित नाटक की विभिन्न धाराओं – पौराणिक, प्रेमप्रधान सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा ऐतिहासिक को काफी आगे बढाया| इस धारा के अंतर्गत पौराणिक नाटक ज्यादातर होते रहे जिनमें राम संबंधी नाटक, कृष्ण संबंधी नाटक तथा संत संबंधी पात्र होते हैं| इन नाटकों में रामलीला, रासलीला, स्वांग नाट्य शैली आदि का स्पष्ट प्रभाव देख सकते हैं और जिसके कारण इन नाटकों में नाटकीय तत्व अंशतः ही मिलते हैं| यह एक कमी के रूप में लेने की जरूरत नहीं क्योंकि नाटकों के शुरुआती दौर में ऐसा होना स्वाभाविक सा लगता है| भारतेंदु युग के नाटककारों ने मुख्यतः पौराणिक, ऐतिहासिक कथानक ही चुन लिए| इस युग के नाटककार पात्रों के शील निरूपण और वस्तु विन्यास की विविध परिस्थितियों की योजना में अलौकिकता को छोड़कर अधिकाधिक मानवीय दृष्टिकोण को अपनाया| बड़ी से बड़ी पौराणिक कथा के निरूपण में भी अपने देश की दरिद्रता और दुखावस्था को नहीं भूल पाते थे|

भारतेंदु के पूर्व और सहवर्ती समाज की स्थिति बड़ी दयनीय थी| ऐसी स्थिति में जागृति का माध्यम केवल रंगमंच था| इस युग में रंगमंच का विकास भारतेंदु ने इन्हीं कारणों से प्रेरित होकर किया| भारतेंदु एक नवीन नाट्यदर्श की प्रतिष्ठा भी करना भी चाहते थे जिसमें प्राचीन और नवीन अर्थात् पूर्वी और पश्चिमी नाट्य धर्म का समन्वय हो| नाटकों के आरम्भ में मंगलाचरण, सूत्रधार,

नेपथ्य और आकाश भाषित आदि का प्रयोग संस्कृत के अनुरूप किया गया| गीत, मौन, झाँकी, रामलीला की चित्रसज्जा, पद्यात्मक संवाद आदि लोक नाटकों से ग्रहण किए गए| भारतेंदु ने अपनी नाट्य प्रस्तुतियों द्वारा रंगकर्मियों का एक मंडल तैयार किया| इनकी नाटक मंडली भारतेंदु मंडली के नाम से प्रसिद्ध हुई| देश प्रेम, जन जागृति, राष्ट्रहित, समाज सेवा आदि का संचरण करना इस मण्डली का उध्देश्य रहा|

प्रसाद युगीन हिन्दी नाटक और रंगमंच

भारतेंदु के पश्चात् हिन्दी को उसका 'निजी नाट्य' देने का महत्वपूर्ण और सार्थक प्रयास जयशंकर प्रसाद ने किया| प्रसाद का आविर्भाव हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में नया अध्याय है| नयी दिशा का संकेत है| नाटक के क्षेत्र में प्रसादजी एक युग प्रवर्तक कलाकार के रूप में आये| उन्होंने संस्कृत नाटकों से रस सिद्धांत पाश्चात्य नाटकों के अंतः संघर्ष बाह्य संघर्ष तथा शील वैचित्र्य की परंपरा, बंगाल नाटकों के भाव संवेदना को अपनाकर अपनी प्रतिभा के समन्वय से हिन्दी नाटकों के क्षेत्र में स्वच्छन्दवादी अभिनव नाट्य कला को जन्म दिया| उन्होने नाटक को विचारों या भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम माना| प्रसाद ने वस्तु चरित्र रस टेकनिक तथा वातावरण में क्रन्तिकारी परिवर्तन खड़ा किया| प्रसाद जी ने समन्वयात्मक शैली का अनुगमन किया| उन्होंने भारतीय रंग-विधान और पाश्चात्य शील वैचित्य के समन्वय का पथ अपनाया|

प्रसाद जी ने प्रारम्भ में अपने नाटकीय विधान में संस्कृत नाटक के शास्त्रीय तत्वों के साथ पाश्चात्य नाट्य पध्दतियों का अद्‌भुत समाहार किया| लेकिन वे अपने नाटकों के लिए स्वतंत्र शैली की खोज में भी लगे रहे| प्रसाद जी की नाट्य वास्तु में तीन मौलिक शक्तियाँ है –काव्यात्मक, ऐतिहासिक चेतना और सांस्कृतिक चेतना| प्रसाद मूलतः कवि थे और उनका यह कवित्व संपूर्ण नाटकीय संयोजन में फूटा है| प्रसाद जी के नाटक एक भिन्न स्तर पर पारसी रंगमंच के युग की ही चरम उपलब्धि सूचक है| प्रसाद के नाटक पारसी रंगमंच की बुनियाद पर खड़े हुए है| उनके कार्य व्यापार का विन्यास दृश्य-संयोजन, रूपबद्ध- सब कुछ पारसी रंगमंच की रुढियों और व्यवहारों से निर्धारित हुआ है| प्रसाद का महान योगदान इसमें है कि अपने नाटकों में उन्होंने एक भिन्न प्रकार की सामाजिक सांस्कृतिक चेतना का अन्वेषण किया| नाटक और रंगमंच दोनों को सर्जनात्मक स्तर प्रदान करने में वे सार्थक निकले|

प्रसाद और समसामयिक नाटककारों में भारतीय साहित्य और राष्ट्र की गरिमा का अनुभूति प्रवण अविग लहराता था| प्रसाद युग तक के नाटककारों ने अनेक ऐतिहासिक, पौराणिक तथा सामाजिक नाटकों का प्रणयन किया था| लेकिन प्रसाद ने जैसे जीवन की गहनता एवं जटिलता को भाषा में समेटने का कार्य किया था| वैसे इस युग के अन्य किसी नाटककार ने नहीं किया था|

प्रसाद के लेखन का प्रारम्भ द्विवेदी युग में हुआ था| उनकी प्रारंभिक रचनाएँ ‘प्रायश्चित’, ‘सज्जन’, ‘करुणालय’, “राज्यश्री”, विशाख आदि है, जिनमें

'विशाख' में कुछ सामाजिक यथार्थ और युगीन आदर्श को इतिहास के आवरण में बताया गया है| पर 'अजातशत्रु' में आकर छायावाद की अनुप्रेरणा स्पष्ट दिखाई देती है| जनमेजय का नागयज्ञ, 'कामना', 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि ऐतिहासिक नाटक हैं| प्रसाद जी के नाटकों में लोकनाट्य तत्वों का समावेश न के बराबर हुआ है| उनके ज्यादातर नाटक ऐतिहासिक धरातल के हैं| लेकिन उनमें इतिहास के ज़रिये सामाजिक कथानकों को दिखाने की कोशिश है| याने कि इतिहास प्रचलित रुढियां, प्रचलित मान्यताओं को दिखाकर सामाजिक सुधा लाने की कोशिश लोकनाट्य में हुई है| इस दृष्टि से प्रसाद जी की नाटकों का कथानक लोकनाट्य के कथानक से बहुत दूर है| प्रसाद जी के ऐतिहासिक नाटकों में उनके पात्र, देशकाल, भाषा, संवाद सभी शुद्ध ऐतहासिक ही हैं| प्रसाद जी के नाटकों में दिखाए गए द्वंद्व एवं दार्शनिकता लोकनाट्य में बिलकुल संभव नहीं होते|

लोकनाट्य के प्रमुख तत्व गीत संगीत को प्रसाद जी के नाटकों के गीतों के संदर्भ में विश्लेषण करें तो ये दोनों अलग अलग ही लगते हैं, "प्रसाद जी के नाटकों में गीतों का बाहुल्य देखने को मिलता हैं| ----प्रसाद जी के नाटकों में प्रयुक्त गीत छायावादी प्रवृत्ति से प्रभावित है संस्कृत भाषा में बंधे हुए गूढ़ अर्थों में प्रयुक्त पात्र की मानसिक स्थिति का चित्रण करते हैं, वही लोकनाट्य में प्रयुक्त गीत लोकगीतों की तर्जों पर आंचलिकता से प्रभावित लोकबोली में प्रयुक्त गीत, कथा

को बढ़ाने में सहायक होते हैं|"[1] स्पस्ट है कि प्रसाद जी के नाटकों की गीत योजना लोकनाट्य से भीन्न है|

भाषा एवं संवाद लोकनाट्य में जितना प्रमुख है उतना ही प्रसाद जी के नाटकों में भी | नाटकीय भाषा को नया रूप देने का श्रेय प्रसाद जी को है| प्रसाद जी के नाटकों की भाषा एवं संवाद शैली संस्कृत निष्ठ, आलंकारिक, दार्शनिक एवं आम आदमी तक पहुँचने में असमर्थ हैं| पर लोकनाट्य का प्रमुख तत्व भाषा जो सरल चुटकीली बोलियों से युक्त एवं आम जनता की भाषा की होती है| प्रकार प्रसाद की क्लिष्ट भाषा लोकभाषा के करीब भी नहीं पहूँच पाति|

प्रसाद जी के नाटकों पर यह आरोप लगाया जाता है कि वह रंगमंच के अनुरूप है या मात्र पठनीय है? उनके नाटकों की दृश्य योजना बहुत ही क्लिष्ट एवं जटिल है| लोकनाट्य का मंचन मुक्ताकाशी मंच की माँग करती है| जिसमें संवादों द्वारा जटिल दृश्यों का मंचन की जा सकती है|

प्रसाद जी के नाटक विशिष्ट वर्ग के लिए होते हैं जिनमें खर्चीले मंचन की अपेक्षा है| लोकनाट्य साधारण जनता का मंच है जिनके पात्र एवं दर्शक दोनों आम जनता होते हैं| इस प्रकार प्रसाद जी के नाटकों की मंच व्यवस्था एकदम लोकनाट्य से सुदूर है| इस दृष्टि से देखने पर प्रसाद के नाटकों में लोकनाट्य तत्वों का आभाव हम देख सकते हैं|

---

[1] डॉ. नीना शर्मा - आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशोलन - पृ 99

प्रसादयुगीन अन्य नाटककारों में प्रमुख है हरिकृष्ण प्रेमी, गोविन्द वल्लभ पंत, सेठ गोविन्द दास, बद्रीनाथ भट्ट, श्री लक्ष्मी नारायण मिश्र आदि|

हरिकृष्ण प्रेमी :- हरिकृष्ण प्रेमी ने प्रसाद की धारा को युगानुकूल मोड़ने का प्रयास किया| प्रसाद जी के पश्चात जो सफलता प्रेमी जी को मिली जो किसी अन्य लेखक को नहीं है| प्रेमी के नाटकों का मुख्य लक्ष्य सांस्कृतिक दृष्टि से हिन्दू-मुसलमान की एकता के माध्यम से राष्ट्रीयता को सुदृढ़ करना रहा है| उनके प्रमुख नाटकों में 'शिव साधना', 'प्रतिशोध', 'उद्धार', 'छाया', और 'बन्धन' प्रमुख है जिनमें ऐतिहासिक कथानकों की प्रमुखता है और लोकनाट्य के प्रभाव से एकदम अछूते हैं|

गोविन्द वल्लभ पंत :- गोविन्द वल्लभ पंत प्रसाद युग के सफल नाटककार हैं| उन्होंने अपने नाट्य साहित्य का सृजन कला के लिए कला की भावना से किया| पंत के नाटकों में संस्कृत नाटकों की नाट्यपरंपरा, पारसी रंगमंच, आधुनिक टेकनिक और पाश्चात्य नाट्यकला का प्रभाव परिलक्षित है| उन्होंने पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक क्षेत्र से अपने नाटकों की कथावस्तु का चयन किया जिनमें "वरमाला", 'राजमुकुट', ययाति आदि मुख्य है| इसके नाटकों पर लोकनाट्य तत्वों का प्रभाव बिलकुल नहीं पड़ा है|

श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र :- प्रसाद के बाद मिश्र जी का हिन्दी की नाट्य परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान हैं| मिश्रजी की नाट्यकला प्रसाद युग की नाट्यकला

से कई रूपों में भिन्न है| उन्होंने हिन्दी की नाट्यकला को वैचारिक धरातल की ओर मोड़ लिया मिश्रजी ने अपने नाटकों को पूर्ण रूप से अभिनेय बनाने का प्रयास किया| उनके नाटकों में “अशोक”, “सन्यासी”, ‘राक्षस का मंदिर’, ‘मुक्ति का रहस्य’, ‘नारद की वीणा’ आदि मुख्य है| उनके सभी नाटक शास्त्रीय नाटकों की श्रेणी में आते हैं तथा लोकनाट्य के तत्वों का इसमें कहीं प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता|

इस प्रकार प्रसाद और उनके युग के अन्य नाटककारों की रचनाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद युग के किसी भी रचना में लोकनाट्य का प्रभाव नहीं पडा है| किसी ने लोकनाट्य शैली का प्रयोग भी नहीं किया हैं|

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी नाटक और रंगमंच

1950 के बाद नाटक और रंगमंच को लेकर व्यापक स्तर पर सजगता का स्वर सुनायी पड़ने लगा| स्वतंत्र भारत की राजनैतिक सांस्कृतिक परिस्थितियाँ एक देशी रंगमंच की माँग करने लगी थीं| तब हिन्दी के पास पाश्चात्य यथार्थ वादी रंगमंच के आदर्श पर निर्मित यथार्थवादी रंगमंच ही बाकी था| पारसी रंगमंच भी अपनी अंतिम साँसें ले रही थीं| उस समय हिन्दी रंगमंच के पास पृथ्वी थियेटर्स नामक एकमात्र रंगमंच था लेकिन किसी गहन मानवीय सत्य के साथ साक्षात्कार करने वाला नाटक गायब था| अभाव की इस स्थिति के मुक्ति पाने के लिए एक निजी रंगमंच का सपना सब के दिल में उमड़ने लगी|

पाश्चात्य नाट्य प्रयोगों का प्रभाव और राजनितिक सांस्कृतिक स्तर पर रंगमंच की माँग ने हिन्दी नाटककरों को अपने रंगमंच की पिछड़ी स्थिति की ओर देखने पर मज़बूर किया| पश्चिमी रंगमंच भी इस समय यथार्थवादी रंगमंच की सीमाओं को तोड़कर नयी भूमियों की तलाश के लिए प्रयोग कर रहा था| यथार्थवादी रंगमंच की शक्ति को नए हिन्दी नाटककारों ने पकड़ा और उसे नये पश्चिमी रंगान्दोलन से जोड़कर ग्रहण किया|

पाँचवें दशक में संगीत नाटक अकादमी की स्थापना हुई और 1956 में अखिल भारतीय नाट्य गोष्ठी का भी आयोजन हुआ| पश्चिम से प्रभावित रंगमंचीय सजगता का यह आन्दोलन अखिल भारतीय स्तर पर कार्यरत हुआ| बंगाल मराठी कन्नड़ और हिन्दी सभी भाषाओं में एक नयी रंगदृष्टि का प्रादुभार्व हुआ| पश्चिम के प्रभाव से भारत के नाट्यकर्ता अपनी निजी रंगमंचीय दाय के प्रति सजग होने लगे|

हिन्दी नाटक पर पश्चिम का प्रभाव भारतेंदू और प्रसाद के युग में ही देखने को मिलता है| लेकिन स्वतंत्रता के बाद पाश्चात्य साहित्य और चिन्तन के परिचायक अनेक वादों का प्रभाव हिन्दी नाटक साहित्य पर स्पष्ट रूप से पड़ा है| पश्चिम में ब्रेख्त ने टोटल थियेटर के नाम पर पूर्वी की संगीत-नृत्यपूर्ण नाट्य शैलियों को लेकर नाटक लिखना शुरू किया| वहाँ उनकी थूम मच गयी| बेख्त के नाटकों में संस्कृत तथा लोकनाटकों का समन्वित रूप प्रस्फुटित है| बेख्त अपने कार्य और विचार दोनों दृष्टियों से भारतीय रंगकार की प्रेरणा बने| उन्होंने उन्हें

सच्ची भारतीय रंगदृर्ष्टि की खोज के लिए प्रेरित किया| उन्हें आश्चर्य हुआ की भारत के दिशा निर्देश के लिए पश्चिम की ओर देख रहे थे| प्रदेशिक भाषा के नाटककार जो अपनी जमीन से अब तक कटे हुए थे, वे भी नयी तलाश में जूट गये| बंगाल और मराठी के नाटककार भी जात्रा और तमाशा शैलियों में नाटक लिखने लगे| हिन्दी नाटकों में भी लोकतत्वों और शैलियों को अपनाया जाने लगा| हिन्दी रंगमंच पर कुछ ऐसे नाटककार थे जो पश्चिम की होड़ में भी अपनी परम्परा अपनी संस्कृति से जुड़े रहने का प्रयत्न कर रहे थे| यह उनका प्रयत्न मात्र नहीं था बल्कि अपनी मिट्टी तथा अपने संस्कार से जुड़े रहने की स्वाभाविक प्रक्रिया भी थी|

स्वातन्त्र्योत्तर नाटकों की कथावस्तु चरित्र और नाट्यानुभूति में अनेक मौलिक परिवर्तन हए| यहीं से आधुनिक भावबोध की अभिव्यक्ति नाटकों में आरम्भ हुई| आधुनिकता की इस प्रक्रिया में नाटकों में लोकतत्व का समावेश एक ऐतिहासिक घटना के रूप में हुआ|

जगदीश चन्द्र माथुर, मोहन राकेश, और लक्ष्मी नारायण लाल जैसे नाटककार ने अपने नाटकों में नये रंग प्रयोग किये| उनमें एक और भारतीय और पाश्चात्य रंग परंपराओं का अन्वेषण है तो दूसरी ओर मौलिक दृष्टि और गहरा युगबोध| इस नाट्य प्रयोगों की दिशाएँ बहुमुखी है| इनमें रंगमंच या नाट्य के नये रूपों की खोज के विविध प्रयास दीखते हैं| पुराण, इतिहास मिथक आदि की तरफ नाटककारों की यात्रा शुरू हुई| फलतः इनमें लोकतत्वों का समावेश धीरे-

धीरे होने लगा, कहीं “फैशन” के रूप में कहीं “प्रयोग” के रूप में| इस प्रकार नाटकों में लोकतत्वों का प्रयोग प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में होना शुरू हुआ| स्वातन्त्र्योत्तर नाटकों में लोकतत्व के विभिन्न प्रयोगों का अध्ययन उस समय के प्रमुख नाटककारों की रचनाओं से करना समीचीन रहेगा|

धर्मवीर भारती :- डॉ. धर्मवीर भारती का ‘अन्धायुग” हिन्दी का सर्वप्रथम गीतिनाट्य है, “समसामयिक परिवेश से जन्मी धर्मवीर भारती की महाकाव्यात्मक नाट्यकृति “अंधायुग” हिन्दी साहित्य की कालजयी, क्लासिक रचना है|”[1] इस में नाटककार ने महाभारत युद्ध के परवर्ती परिणामों की नयी व्याख्या की है| युद्धोपरांत संस्कृति, विघटित जीवन मूल्य, कुण्ठा, भौतिक क्षति, नैतिक अपकर्ष एवं क्षत विक्षत मानव जीवन की कथा को अंधायुग के माध्यम से नई मानसिकता के तहत प्रस्तुत किया गया हैं|

“अन्धा युग” में प्रयोग की अत्यंत महत्वपूर्ण दिशा उसके नये नाटयरूप की खोज में उजागर हुई है| भारती ने इस खोज के लिए संस्कृत, पश्चात्य, लोकनाट्य और पारसी रंगमंच सभी परंपरा रंग पध्दतियों को आधार बनाया है| नाटक का प्रारम्भ मंगलाचरण और प्रस्तावना से होता है जो संस्कृत नाट्य शैली से प्रेरित है|

नाटक की संघटना लोकनाट्य के अधिक अनुरूप बैठती है| लोकनाट्य में जिस प्रकार कथा गायन के द्वारा घटनात्मक सूत्रों को जोड़ा जाता है, नाटकीय

---

[1] डॉ, गिरीश रस्तोगी - हिन्दी नाटक का आत्मसंघर्ष - पृ : 91

व्यापार पर टिप्पणियाँ, विश्लेषण किया जाता है वैसे ही यहाँ भी हर अंक की शुरुआत और अन्त में कथा गायन रखा गया है, कथा गायन नाटक में कई महत्वपूर्ण कार्यों को सिद्ध करता है| एक ओर यह जहाँ मंच पर अभिनीत न होने वाली घटनाओं की सूचना देता है, वहाँ दूसरी ओर वातावरण की मार्मिकता की और गहन बनाने एवं कहीं-कहीं कथावस्तु के प्रतीकात्मक अर्थों को स्पष्ट करने के कार्य में सहायक होता हैं|[1] प्रथम अंक का आरम्भिक कथा-गायन हमें कथा की पृष्टभूमि से परिचित करता है|

"युध्द महायुध्द के अंतिम दिन की सन्ध्या है
छायी चारों ओर उदासी गहरी
कौरव के महलों का सूना गलियारा है
धूम रहे केवल दो बूढ़े प्रहरी"---[2]

कथा गायन के अतिरिक्त यहाँ दो निम्न वर्ग के पात्रों की योजना है| ये दोनों प्रहरी कथा विश्लेषण का काम तो करते ही हैं, साथ ही नाटक के दो सामान्य पात्र भी है तथा आवश्यकतानुसार ये सूचक का काम भी करते हैं, प्रहरियों के रूप में आने वाले इस पात्रों की योजना लोकनाट्य में "रंगा" पात्र के समकक्ष रख सकते हैं|

---

[1] डॉ. इंद्रनाथ मदान - हिन्दी नाटक और रंगमंच-पहचान और परख - पृ : 72

[2] डॉ. धर्मवीर भारती - अन्धा युग - पृ : 8

धर्मवीर भारती ने नाटक में महाभारत की पौराणिक कथा को आधुनिक संवेदना से जोड़ने का प्रयास किया है, इस कथा के सहारे नाट्यकार ने युद्धजन्य अर्धसत्यों, कुंडाओं, अंध-स्वार्थ-परता, विवेक शून्यता आदि का उद्घाटन करते हुए इन्हीं के बीच उगती हुई मर्यादा आस्था कर्मपरता आदि की शुभ्र और मंगलमयी ज्योति का जो उल्लेख किया है वह अंध गह्वर में भटकते हुए मानव के लिए निरंतर सहायक सिद्ध होगी|"[1]

अन्धा युग नाटक रंगमंच के लिए एक चुनौती भरी रचना है| इस नाटक का मंचन लोकशैली में किया जाना भी समीचीन रहेगा, "मूलतः अंधायुग चरित्रों का सृजन जीवंत भाषा का रचाव है| शास्त्रीय शैली, लोकशैली, प्रतीकात्मक पद्धति से मुक्ताकाशी मंच पर यह कहीं भी अभिनीत हो सकता हैं|"[2] "अंधायुग" नाटक में डॉ. धर्मवीर भारती जी ने लोकतत्व का प्रयोग कहीं प्रत्यक्ष रूप में कहीं परोक्ष रूप में किया है|

जगदीश चन्द्र माथुर :- "कोणार्क" माथुर जी का महत्वपूर्ण नाटक है, परम्परागत संस्कृत लोक और पाश्चात्य नाट्य शैलियों तथा ध्वनि-प्रकाश आदि आधुनिक पाश्चात्य रंगमंच की नवीनतम शैलियों के उपयोग से माथुर ने 'कोणार्क' का जो रूपबंध खड़ा किया है उसका रूप नितांत नवीन एवं प्रयोगात्मक है| रंगमंच की दृष्टि से माथुर का यह सबसे सफल व सशक्त नाटक है|

---

[1] डॉ. बच्चन सिंह - हिन्दी नाटक - पृ : 58

[2] डॉ. इन्द्रनाथ मदान - हिन्दी नाटक और रंगमंच पहचान और परख - पृ : 97

डॉ. नरनारायण राय का कहना है "'कोणार्क' हिन्दी नाट्य रचना परंपरा में एक अभिनव प्रयोग था| इसमें शिल्प और कथ्य के धरातल पर ऐसे नवीन प्रयोग किए गए जिससे रंगमंच पर प्रस्तुत की जा सकनेवाली एक सुन्दर कृति तैयार हो सकी|"[1] बिम्ब रचना की क्षमता माथुर के दूसरे महत्वपूर्ण नाटक "शारदीया" में दिखाई देती है| शारदीय रोमानी त्रासदी है| इस नाटक में संस्कृत के काव्यतत्व लोकनाट्य के गीत तत्व तथा यथार्थवादी नाटकों की दृश्य सज्जा का प्रयोग मिलता है|

वस्तु और रूप दोनों ही स्तरों पर खोज का प्रयास जगदीश चन्द्र माथुर का नवीनतम प्रयोग 'पहला राजा' है| यह नाट्य प्रयोग माथुर के पूर्ववर्ती से भिन्न तथा अधिक पौढ़ है| "पहला राजा" में मिथक के माध्यम से अनेक प्रश्नों को उठाना चाहा है और ये सभी प्रश्न आज के जीवन सामाजिक, राजनीतिक और मानवीय संदर्भों से जुड़े हैं|

नाटक के रचना-तंत्र का सर्वाधिक मौलिक प्रयोग है सूत्रधार और नटी की परियोजना| सूत्रधार और नटी "पहलाराजा" के रचना विधान का अनिवार्य अंग बनकर आये है| नाटक में गीतशैली और लोकशैली का प्रभाव है लेकिन इससे किसी भी प्रत्येक शैली का आरोप नहीं लगाया जा सकता|

---

[1] डॉ. नरनारायण राय - नया नाटक उद्भव और विकास : पृ : 48

"पहला राजा" नाटक की भूमिका में नाटककार ने लिखा है –"मुख्यपात्र और प्रसंग मैं ने वैदिक और पौराणिक साहित्य से लिए हैं| लेकिन इसलिए ही यह नाटक पौराणिक नहीं कहा जा सकता| पृष्टभूमि के कुछ अंश और कुछ सूत्र मोहनजोदाड़ो-हडप्पा सभ्यता की खुदाइयों से सबन्ध है| पर इसी से यह नाटक ऐतिहासिक नहीं हो जाता| कुछ संवाद वर्तमान बोलचाल की भाषा में है गीतों पर लोक शैली की छाप है| वह केवल इसलिए नाटक को यथार्थवादी रचना नहीं ठहराया जा सकता"[1]

माथुरजी का "दशरथ नन्दन" लोकशैली पर आधारित एक नाटक है| रामलीला शैली का इस नाटक पर प्रभाव पडा है| रामकथा सभी वर्गों को एक साथ जोड़ने वाली सेतु है क्योंकि गाँव और शहर उच्च वर्ग और निम्न वर्ग सबमें रामकथा मानस और रामलीला के प्रति समान आकर्षण का भाव है| माथुर जी की यह रचना न केवल परम्परा का एक सार्थक निर्वाह है अपितु रामचरित मानस की नाटकीय संभावनाओं का परिचायक भी है| गद्य-संवादों के साथ साथ मानस के दोहे और चौपाइयों का प्रयोग भी देख सकते हैं| नाटककार ने अधिकांश में तुलसी की ही शब्दावली का उपयोग किया है| दोहा, सोरठा और चौपाई आदि का उपयोग नाटक को एक सुदृढ पूर्ण रामलीला बनाता है| जगदीश चन्द्र माथुर मात्र नाटककार ही नहीं थे बल्कि एक दूरदर्शी कलाकार भी थे| उनके मंच संबंधि नाट्य विचार आधुनिक नाटकों तथा आन्दोलनों से पूरी

[1] जगदीश चन्द्र माथुर - पहला राजा - भूमिका

तरह मेल खाते थे| संस्कृत नाटक का काव्यत्व, लोकनाट्य से गीत तत्व तथा पश्चिमी नाटकों से यथार्थवादी शैली को लेकर हिन्दी नाटकों को एक नयी रंगधार्मिता उन्होंने प्रदान की|

मोहन राकेश :- नाट्य प्रयोग की दृष्टि से अपने युग के सबसे महत्वपूर्ण प्रयोगकर्ता रहे है, मोहन राकेश| उनका "आषाढ का एक दिन"[1] ऐतिहासिक पृष्ट भूमि पर लिखा गया नाटक है| मोहन राकेश ने अतीत के कथानक को अपने युग की संवेदना और ज्वलन्त प्रश्नों से जोड़ने का प्रयास किया है| "अषाढ़ का एक दिन" के कथानक का ताना बना जिन तथ्यों से बुना गया है वह इतिहास कम और मिथक अधिक है|

लहरों के राजहंस :- "लहरों के राजहंस"[2] का कथा आधार ऐतिहासिक है| नाटककार ने 'सौंदरनन्द' से मूल संवेदना लेकर कल्पना से जोड़कर अपने भावों विचारों एवं मान्यताओं के अनुसार नाटक को रचा है| पूरा नाटक आधुनिकता का आग्रह लिए हुए है|

स्वयं मोहन राकेश जी के शब्दों में –"नाटक का नन्द इतिहास के नन्द की भाँती आचरण नहीं करता| --- मैं ने इस इतिहास कथा का उपयोग इसलिए किया क्योंकि इस कथा के माध्यम से विशेष प्रकार की व्याख्या प्रस्तुति की जा सकती

---

[1] मोहन राकेश - आषाढ का एक दिन - 1958

[2] मोहन राकेश - लहरों के राजहँस - 1963

थी| बुद्ध और नन्द की पत्नी सुन्दरी के बीच होने वाले संघर्ष का भी मैं उपयोग करना चाहता था|"[1]

मोहन राकेश जी के सभी नाटक आम दर्शक की नहीं एक विशिष्ट दर्शक की अपेक्षा रखते हैं| 'लहरों के राजहंस' का मूल संस्कार 'शहरी' है| इसमें लोकनाट्य की सी व्यापकता और सामान्य का अपील नहीं है| प्रस्तुत नाटक आधुनिक प्रेक्षक को संबोधित करता है|

आधे अधूरे :- आधुनिक हिन्दी नाटक की महत्वपूर्ण उपलब्धि माने जाने वाले मोहन राकेश का तीसरा नाटक है 'आधे अधूरे'| इसमें मध्यवर्गीय जीवन समस्याओं को दर्शाया गया है| 'आधे अधूरे' में पहली बार राकेश ने समकालीन परिवेश, चरित्र तथा जीवन को आज की जीवित भाषा में प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करने की सार्थक कोशिश की है|

इस प्रकार राकेश के प्रसिद्ध तीनों नाटकों पर किसी भी लोकशैली का प्रभाव हम देख नहीं पाते| उन्होंने अपने-नाटकों के माध्यम से अतीत के कथानक को आधार बनाकर अपने युग की संवेदना और ज्वलन्त प्रश्नों को जन मानस तक लाने का प्रयास किया है|

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल :- मोहन राकेश के साथ उल्लेखनीय नाटककार हैं डॉ. लाल| रंग चेतना उनके नाटकों का प्राण है| लाल का रंग दर्शन हिन्दी नाटक और रंगमंच को पूर्णतः समर्पित एक रंगकर्मी का है| उनमें भारतीय नाट्य

---
[1] मोहन राकेश - लहरों के राजहंस - पृ - भूमिका से

सौन्दर्य को पुनः स्थापित करने की सशक्त दृष्टि है| अपने मूल और मिट्टी से जुड़े भारतीय नाट्य और रंगभूमि का अद्‌भुत समन्वय है उनके नाटकों में| डॉ. लाल ने रंगमंच के अनुभूतिपरक और व्यावहारिक दोनों रूपों पर विचार किया है| नाटक की रचना प्रक्रिया की सम्पूर्णता उन्होंने रंगमंच पर ही मानी है|

वस्तुतः डॉ. लाल ने रंगमंच को जिया और भोगा है| आधुनिक देशकाल परिस्थिति की माँग के अनुसार डॉ. लाल ने लोकनाट्य पर अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किये है| वे लोकनाट्य को जीवन की सहज प्रतिकृति मानते हैं|

नाटक को जनसाधारण के बीच लाने, दर्शक और नाटक के बीच की खाई को पाटने, लोकमंच और लोकशैली को भारतीय परिवेश में और अधिक महत्वपूर्ण बनाने की चेतना डॉ. लाल में अत्यधिक दिखाई देती है| डॉ. लाल ने समय समय पर नाटककार की जिम्मेदारी के संबंध में अनेक महत्वपूर्ण सवाल उठाये| वे लेखन-निर्देशन, अभिनय तथा संघटन सभी स्तर पर संवाद स्थापित करने के पक्ष में थे| नाटक के प्रति सही आलोचनात्मक दृष्टि पैदा करने में उन्होंने बड़ी सक्रियता दिखाई है| इससे आधुनिक नाट्य समीक्षा को काफी बल मिला है|

अन्धा कुआँ :- डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का पहला नाटक है 'अन्धाकुआँ'| यह एक साधारण रचना है| 'अन्धा कुआँ' नाटक में पश्चिमी प्रभाव का आरोप है| लेकिन लोकतत्वों से जुड़े होने के कारण यह नाटक भारतीय परिवेश से एकदम जुड़ा हुआ है| लोकगीतों के अतिरिक्त भाषा, संवाद तथा ग्रामीण परिवेश को चित्रित करते हैं| नौटंकी, ख्याल आदि की शैलियों का मिला जुला रूप है यह

नाटक| यह पूर्णाकार नाटक चार अंकों में विभक्त है| नाटक का तीसरा अंक लोकगीत से शुरु होता है| यह नाटककार की लोकनाट्य के प्रति विशेष रुचि को स्पष्ट करता है|

सुन्दररस :- यह एक प्रहसन है जो दशरूपक का ही प्रकार है| यह एक ऐसी रचना है जिस में सभी प्रकार के आस्वाद मौजूद हैं| व्यंग्य, उपदेश, शिक्षा, व्यंग्य रोचक कथा और अभिनयात्मकता सब कुछ मौजूद हैं| यह कृति डॉ. लाल का एक मात्र प्रहसन है|

मादा कैक्टस :- यह एक नवीन प्रयोग है| नाटक का प्रारम्भ एवं अंत बिलकुल नये ढंग से किया गया है| नाटक के प्रारम्भ में सुधीर नामक एक पात्र मंच पर आकर दर्शकों से बात करता है| याने कि दर्शक और अभिनेता के बीच गहरा आन्तरिक सम्पर्क है| वह लोकनाट्य के सूत्रधार की भाँति दर्शकों से बातचीत करता है| नाटक में किसी लोकशैली का प्रयोग नहीं किया गया है|

सूखा सरोवर :- यह लोक मिथ के आधार पर सृजित एक प्रतीकात्मक प्रस्तुति है| सरोवर अतः चेतना का प्रतीक है| तीन अंकों में विभाजित इस नाटक में पहला अंक सरोवर के सूखने की सूचना देता है| दूसरा अंक पूर्णतः अंतराल के रूप में है| तीसरे अंक में राजकुमारी के करुण गीत की अनुगूँज एवं उसके प्रेमी के बलिदान द्वारा सरोवर में पुनः जल आने की घटना का वर्णन है| इन सबको प्रतीकों के माध्यम से नाटककार ने प्रस्तुत किया है|

रातरानी :- रातरानी में भारतीय रंगशैली का सैद्धान्तिक पक्ष अधिक स्वीकृत हो पाया है| प्रस्तुत कृति में दृश्यात्मकता एवं काव्यात्मकता समान रूप से संगठित है|

रक्त कमल :- रक्त कमल नाटक का संरचना शिल्प बिलकुल नया है इसमें रूपकात्मक दृश्य प्रस्तुत किये गये हैं| नाटक के भीतर नाटक का अभियोजन रक्त कमल के सम्पूर्ण शिल्प को अलग और अयथार्थवादी बना देता है| संस्कृत शैली और लोकनाट्य शैली दोनों से प्रेरणा लेकर नाटककार ने बेवकूफ पात्रों की परिकल्पना की है| नाटक में लोकगीतों का भी प्रयोग मिलता है| मगर यह नाटक किसी भी प्रत्येक शैली से प्रभावित नही है|

दर्पण :- 1966 में लिखा गया नाटक है दर्पण| 'दर्पण' नाटक में दर्पण' पात्र का नाम ही नहीं बिम्ब और प्रतीक भी है| यहाँ दर्पण मनुष्य के यथार्थ का प्रतीक है|

सूर्यमुख :- डॉ. लाल ने सूर्यमुख में मिथक का प्रयोग कर हिन्दी नाट्य जगत में सर्वथा मौलिक क्षितिज उद्घाटित किया है| सूर्यमुख प्रतीक के रूप में आत्मसाक्षात्कार की स्थिति का घोतक है| 'सूर्यमुख' का रंगमंच इसके भीतर ही परिव्याप्त है| इसके नाट्य की प्रकृति भारतीय परम्परा की है| यह अपनी ही रंग मिट्ठी से उपजा है| यह शुध्द भारतीय नाट्य परम्परा का आधुनिक प्रयोग है| रचना प्रक्रिया में मौलिक दृष्टिकोण रखने वाले इस नाटक में लोकगीतों का प्रयोग

एवं सामान्य पात्रों के संवाद समवेत रूप से नाटक के शरीर में लोकधर्मिता का रस भरते हैं|

कलंकी :- कलंकी में भारतीय रंग संस्कारों को काव्य के रूप में ढालने की कोशिश है| प्रतिबिम्ब भाव से भरा काव्य मंच पर दृश्य बनकर अवतरित होता है|

मि. अभिमन्यु :- प्रस्तुत कृति का शीर्षक ही एक विशिष्ट व्यंजना प्रस्तुत करता है| अभिमन्यु के आगे 'मिस्टर' लगाकर दो युगों की विभाजक रेखा को यहाँ स्पष्ट किया गया है| पुराना बुध्दिजीवी अपने आदर्श के लिए निर्भय होकर प्राणोत्सर्ग कर सकता था जबकि आधुनिक बुध्दिजीवी नपुंसक विद्रोह की ध्वजा लिये चलता है|

व्यक्तिगत :- कुल नौ दृश्यों में प्रस्तुत व्यक्तिगत नाटक, शिल्प की दृष्टि से हिन्दी में एक नया प्रतिमान स्थापित करता है| इसकी रंग शैली प्रयोगधर्मी है|

नरसिंह कथा :- 'नरसिंह कथा' डॉ. लाल का 1975 में प्रकाशित एक पौराणिक कथा पर आधारित नाटक है| वह समकालीन संदर्भों को अत्यधिक तीक्ष्णता एवं समसामयिकता के साथ उभारता है| डॉ. लाल के इस नाटक द्वारा हम देखते है कि पुराण कथा, पौराणिक चरित्र, पुराण की घटनाएँ हम फिर से भोग रहे हैं| वर्तमान-काल में पौराणिक युग साकार हो खड़ा है|

गुरु :- 'गुरु' नाटक डॉ. लाल द्वारा लिखित ऐतिहासिक पात्र 'चाणक्य' पर आधारित है, जिसके माध्यम से उन्होंने अपने जीवन-दर्शन को प्रस्तुत किया है| वर्तमान युग में शिक्षा प्रणाली में इतने बड़े परिवर्तन हुए हैं जिनके कारण 'गुरु' शब्द का अर्थ एवं उसकी मर्यादा दोनों बदल चुके है यह एक ऐतिहासिक नाटक है|

यक्ष प्रश्न :- डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल द्वारा रचित इस नाटक के दो भाग है – पौराणिक कथा के माध्यम से नाटककार ने आधुनिक काल के प्रश्नों का उत्तर माँगा है| नाटक में विदूषक नाम का पात्र है जो लोकनाट्य शैली की भाँती अन्य पात्रों से बात करता और उनके कथनों तथा आचरण की व्याख्या करता है| इसी प्रकार नाटक में दर्शकों की भागीदारी भी इस नाटक को लोकमंच के करीब लाती है, "प्रसंग की दृष्टि से इस नाटक का कथ्य लोक नाट्यों का है| उसके प्रदर्शन में भी लोक मंचों की तरह खुला रंगमंच या आखाडा रंगमंच ही उपयुक्त होता है| दर्शक और मंच के बीच की सहजता, सरलता को विदूषक बनाये रखता है| सीधे दर्शकों की आँखों में झांकते हुए उन्हें संबोधित कर कहने से दर्शक कलाकार बन जाते है एवं कलाकार दर्शक| लोकनाट्यों की यह मुख्य विशेषता है|"[1] इस प्रकार डॉ. लाल ने अपने पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटकों में लोकविश्वास की कथा को आधार बनाकर लोकमानस पर बदलाव लाने का प्रयास किया है|

[1] डॉ. शैलजा भारद्वाज - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य में लोकतत्व - पृ : 79

हमारी लोक परंपरा इतनी समृध्द एवं बहुआयामी है कि किसी भी रूप में कितनी ही बार प्रस्तुत करने पर भी वह पुरानी नहीं पड़ती| पारंपरिक होने के कारण दर्शक गण चाहे वह आम आदमी हो या बुध्दिजीवी वे लोकनाट्यों पर रुचि रखते हैं| डॉ. लाल ने अपनी नाट्य रचनाओं में इस तथ्य को आधार बनाया| इस प्रकार लोकनाट्यों से प्रेरणा लेकर तथा लोकनाट्य तत्वों को आधार बनाकर डॉ. लाल ने प्रत्येक शैली के आधार पर लिखे नाटकों में 'एक सत्य हरिश्चन्द्र', 'सगुण पंछी', 'तोता-मैना', 'राम की लड़ाई' आदि प्रमुख है|

एक सत्य हरिश्चन्द्र :- एक सत्य हरिश्चन्द्र उत्तर भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय लोकनाट्य नौटंकी पर आधारित है| नाटक में दो कहानी साथ साथ चलती है| एक सामाजिक दूसरा पौराणिक| नाटक का पहला दृश्य जनजागरण सूचक समूह गान एवं संगीत से ओत-प्रोत वातावरण से प्रारम्भ होता है| लोकनाट्य के अनुसरण में नाटक के बीच बीच में कोरस गीतों की योजना की गयी है|

नाटक के चतुर्थ दृश्य में काशी का बाज़ार एवं काशी की प्रसिध्द पतुरिया का कोठा दिखाया है| डॉ. लाल ने बाज़ार का दृश्य उपस्थित करने के लिए फूल वाला, तमोली, भंग वाला एवं नारंगी वाली को स्थानीय बोली एवं लहज में आवाजें लगाते हुए दिखलाया है| नाटक में पात्र योजना, संवाद शैली, भाषा, मंचन आदि लोकमंच के अनुरूप किये गये है| डॉ. लाल ने नौटंकी शैली के तत्वों को अपनाकर एक पौराणिक कथा नहीं कही है बल्कि शोषण, जागृति, विरोध,

क्रांति आदि की व्याख्या की है| वर्तमान परिस्थिति के अनुसार साहित्यकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह जनता को जागृति का सन्देश देकर कर्म के हेतु प्रेरित करें|

सगुन पंछी :- डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का 'सगुन पंछी' एक संगीत-लीला नाटक है| 'तोता-मैना' किस्सा बहुत प्राचीन समय से लोक कथाओं का अंग रहा है| तोता-मैना पुरुष और स्त्री के प्रतीक है| डॉ. लाल ने इस नाटक में तोता मैना की लोककथा को आधार बनाकर स्त्री पुरुष संबंध में आने वाली समस्याओं, आपसी कलहों, तनाओं एवं कुठाओं को व्यक्त करने की कोशिश की है|

'सगुन पंछी' 1960 में लिखे गये 'तोता मैना' नाटक का ही पुनर्लिखित रूप है| प्रस्तुत नाटक में भी तोतामैना के किस्से के माध्यम से यह दिखाना चाहते हैं कि 'तोता-मैना' में इतना विरोध है, तनाव है पर लोक मानस या उसकी सहज चेतना फिर उन दोनों की शादी कराके यह दिखाती है कि कुछ भी हो दोनों को मिलना भी है जिन्दगी चलाना भी है|

इस प्रकार 'सगुन पंछी' और 'तोता मैना' में डॉ. लाल ने आधुनिक संदर्भों में पारम्परिक लोक कथा को आधार बनाकर बनाया है| नाटक में प्रयुक्त लोकपक्ष पर डॉ. शैलजा भारद्वाज का कहना है, "लोकनाट्य और लोकगाथा की सहज शैली अपनाने के कारण जनजीवन में व्याप्त सहज विश्वास एवं रूढियों का सांकेतिक उल्लेख भी नाटक में हुआ है| प्रेतात्मा, पूर्व जन्म, जल छिडकने से रानी का मरना, ज़िंदा होना ऐसे ही लोक विश्वास नाटक में यत्र-तत्र देखने को

मिलते हैं| जन सामान्य के साथ तादाम्य स्थापित करने के लिए जन मानस का ध्यान रखना आवश्यक होता है|"[1]

राम की लड़ाई :- 'राम की लड़ाई' रामलीला पर आधारित एक नाटक है| लोकनाट्य शैली में लिखे गए इस नाटक में रामकथा से संबद्ध 'धनुष यज्ञ' प्रसंग को एक मिथक के रूप में चित्रित करते हुए आधुनिक संदर्भों से जोडा गया है| राम की लड़ाई वर्तमान समय की लड़ाई है| नाटककार ने नाटक की पृष्ठभूमि ऐसी जगह को चुन लिया जहाँ पहले बहुत धूम धाम से रामलीला का आयोजन होता था| भ्रष्ट ग्राम पंचायत की अनीति से गाँव बदल गया, गाँववाले बदल गये| इस प्रकार लोगों के बीच भाईचारा खतम हो गया| प्रस्तुत नाटक का यह दृश्य वर्तमान भारत की स्थिति से मेल खाता है| क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज की स्थिति बहुत दयनीय थी| रामलीला के ज़रिये नाटककार जनसामान्य को यह दिखाने की कोशिश कर रहा है| वस्तुतः यह लीला नाटक है| लीला नाटक में दर्शक अपनी कहानी चाहते है| नाटककार ने 'राम की लड़ाई' में आम की कथा चुनकर दर्शक को उसका सहभागी बनाया है| नाटक में डॉ. लाल ने सरल सहज भाषा का उपयोग किया है| नाटक का मंचन खुले रंगमंच पर किया जा सकता है| इस प्रकार नाटककार ने 'राम की लड़ाई' नाटक में रामलीला का निर्वाह किया है|

---

[1] डॉ. शैलजा भारद्वाज - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य में लोकतत्व - पृ : 86

अभी तक की रंगयात्रा से यह स्पष्ट हो जाता है कि डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने अपने नाटकों में लोकनाट्य शैली को अपनाया है| उन्होंने लोकशैली के माध्यम से नाट्य रचना करके शिल्प और शैली को इतना लचीला और सजीला बना दिया कि आधुनिक होने के साथ-साथ यह रंगमंच सबका अपना भी सिध्द हो जाता है|

स्वातन्त्र्योत्तर नाटककारों ने अपनी रचनाओं में इतिहास, मिथक और पुराण को आधार बनाया है लेकिन डॉ. लाल की रचनाओं में ही एक प्रत्येक शैली का प्रभाव हम देख पायेंगे| 1960 के बाद नाटकों में लोकनाट्य शैली का प्रत्यक्ष प्रभाव हम देख पायेंगे| इस प्रकार स्वतंत्रता के बाद नये नाटककारों द्वारा एक नयी परम्परा की शुरुआत की गयी, जिसकी नीव डालने में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का महत्वपूर्ण योगदान रहा है| उनके साथ-साथ अनेक नाटककारों ने रंग संस्कारों को परिनिष्ठित, परिमार्जित और सुसंस्कृत बना दिया|

साठोत्तर हिन्दी नाटक और रंगमंच

साठोत्तर हिन्दी नाटकों की अर्जित उपलब्धियों में एक बड़ी उपलब्धि यह है की एक लम्बे समयांतराल के बाद रंगमंच गतिविधियों के तीव्रतर होने तथा नाट्यधर्मिता और रंगधर्मिता जैसे चिन्तनों के विकसित होने से नाटक को मंच सापेक्षता की स्थिति हासिल हुई| नाटक को दर्शकों तक पहूँचाना रंगमंच का अनिवार्य धर्म माना गया| मंच पर नाटक का पूर्णतः अभिनीत कराना ही उसकी

दृश्यात्मकता है| नाटक अनुभूति को उसी रूप में दर्शकों तक सम्प्रेषित करने का माध्यम है जैसा अवबोध सुदृढ़ हो गया|

साठोत्तर नाट्य समीक्षा में रंगधर्मिता की विशिष्ट एवं रंगदृष्टि की प्रखरता ने ही नाटककार का ध्यान रंगमंचीयता की ओर खींचा है| इसलिए एक नाटककार नाट्यरचना करते समय अथवा नाटक की रचना प्रक्रिया के दौरान उसकी रंग-परिकल्पना याने दृश्यात्मकता को महत्व देता है| अतः नाट्य समीक्षक भी रंगमंचीय प्रस्तुती से जुड़े तत्वों, पक्षों एवं आधार को महत्व देते हैं| नाटक का सारा रंगविधान उसके आलेख में रहता है याने रंगमंच का सारा विधान नाट्य लेख में ही निहित हैं|

सन् 60 के बाद लिखे जाने वाले नाटकों को नवीन जीवन दृष्टि के आधार पर रंगमंचीय उपलब्धियों के कारण हिन्दी नाटक और रंगमंच के इतिहास में गरिमापूर्ण स्थान मिला है| मोहन राकेश और डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में हिन्दी नाटक और रंगमंच की नई दिशाएँ और सम्भावनाएँ नज़र आती हैं| वस्तुतः सन् 60 से हिन्दी नाट्य लेखन नवीनता के आग्रह से नई संवेदना और शिल्प प्रयोगों से रंगमंच को समृध्द करने का काल है|

छठे दशक में हिन्दी नाटक और रंगमंच अनेक नवीन प्रयोगों से गुज़रे| इसी दौर में अपनी परम्परा से जुड़ने की प्रक्रिया अपने आप में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है| इस प्रक्रिया में नाटककारों ने नाटकों में लोकतत्व का समावेश किया| शिल्प के धरातल पर लोकनाट्य की तरफ नाटककारों का विशेष

आकर्षण दिखाई पड़ने लगा| अपनी ज़मीन से जुड़े रहने वाले प्रमुख नाटककार डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का कथन यहाँ दृष्टव्य है --"हिन्दी का नया नाटक और उसका नया रंगमंच विभिन्न रंग प्रयोगों का उदाहरण है, किसी एक परम्परा का पालन नहीं| और न तो यह किसी बासी समाप्त रंग पध्दति का 'हैंग ओवर' ही है| हिन्दी का यह नाटक अपने सही अर्थों में प्रयोग है| जिसने नाटककार तथा रंगकर्मी को एक विशाल, अपूर्व कर्मक्षेत्र प्रदान किया| इस रंग उल्लास तथा नवजीवन के पीछे, केवल बौध्दिकता ही नहीं है| और यह सामर्थ अपने रंग अन्वेषण तथा रंगमंच-प्रतिष्ठता में हिन्दी अथवा भारतीय रंगमंच की नयी पध्दतियाँ निर्धारित कर रहा है और साथ ही शैलियाँ भी निर्मित कर रहा है|"[1]

नवीन प्रगोग से इस युग में नाटककार ने लोक नाटकों में प्रचलित कथाओं को साहित्यिक नाटकों में प्रश्रय दिया वही लोक नाट्य शिल्प के माध्यम से आधुनिक जीवन की संवेदनाओं को अभिव्यक्ति देने का प्रयास भी किया| इससे नाटक सिर्फ पढने के लिए न रहकर रंगमंच से जुड़ने लगा| 1960 में लिखित डॉ. लाल का 'तोता मैना' नाटक इसी प्रकार एक लोकप्रचलित कथा पर आधारित है| यह नाटक आगे चलकर 'सगुन पंछि' नाम से पुनर्लिखित किया गया| डॉ. लाल के साथ साथ इस युग में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मणि मधुकर, शंकर शेष, विनोद रस्तोगी जैसे अनेक नाटककार उभरे उन्होंने लोकनाट्य शैली को अपनाकर अपने नाटकों को नयी श्रेणी में खड़ा कर दिया|

[1] डॉ, जयदेव तनेजा - समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच - पृ : 9

राकेशोत्तर हिन्दी नाट्य साहित्य के विकास में जिन नाटककारों का योग है उनमें 'सुरेन्द्र वर्मा' का नाम सुप्रतिष्ठित है| लेकिन इन्होंने अपने नाटकों में मुख्यतः परिवर्तित काम चेतना को ही उजागर किया है| सुरेन्द्र वर्मा के बाद नाटक के क्षेत्र में 'भीस्म साहनी' का नाम उभरकर आया जिन्होंने 'हानुश', 'माधवी', 'कबीरा खड़ा बाज़ार में', 'मुआवज़े' आदि नाटक लिखे हैं| इसमें लोकनाट्य शैली से प्रभावित एक नाटक है 'कबीरा खड़ा बाज़ार में'| 'कबीरा खड़ा बाज़ार में' 'भीस्म साहनी' जी का दूसरा नाटक है| इस नाटक में लोक प्रचलित गीत, कबीरा की वाणी, पदों एवं लोकबोलियों का प्रयोग किया गया है| कबीर जैसे प्रख्यात नायक को लेकर की जाने वाली रचना का उध्देश्य कबीर के समय को उनकी काव्य रचना की पृष्ठभूमि के नाते - दर्शकों के सामने लाना था| इस नाटक में लोकनाट्य के विशेष तत्वों को अपनाया गया है| लेकिन साहनी जी ने प्रत्येक लोकनाट्य शैली को नाटक का माध्यम न बनाया|

डॉ. शंकर शेष :- डॉ. लाल की अपेक्षा कम नाटक लिखकर भी अधिक ख्याति अर्जित करने वाले एक नाटककार है 'डॉ. शंकर शेष'| उन्होंने अपने अधिकतर नाटकों की रचना महाभारत-कालीन पृष्ठभूमि पर की है| उनके प्रमुख नाटकों की श्रेणी में 'फंदी', 'खजुराहो की शिल्पी', 'कालजयी', 'अरे मायावी सरोवर', 'चेहरे', 'कोमल गाँधार', 'पोस्टर' आदि आते हैं| लोकनाट्य शैली के आधार पर लिखा गया प्रमुख नाटक है 'पोस्टर' नाटक महाराष्ट्र की कीर्तन शैली पर लिखा हुआ लोकनाट्य है| नाटक का आरम्भ कीर्तनकार के कीर्तन से होता

है| नाटककार ने आरंभ में गणेश वन्दना का आयोजन करके इस नाटक को मध्ययुगीन लोकनाट्य की परम्परा में बिठाने का प्रयत्न किया है|

नाटक में सहज सरल भाषा के प्रयोग के साथ साथ लोकबोलियों, मुवाहरों का प्रयोग हुआ है| एक अंकीय इस नाटक में समूहगीत का आयोजन भी किया है| भाषा, संवाद, गीत, संगीत, नृत्य, मंचन आदि दृष्टि से भी यह नाटक लोकनाट्य शैली से प्रभावित है|

मणि मधुकर :- मणि मधुकर ने लोक कला का नवीन प्रयोग एब्सर्ड शैली के मिश्रण से किया है| नाटककार ने राजस्थानी का लोकनाट्य 'ख्याल' की शक्ति का रचनात्मक उपयोग करते हुए उसे विकसित तथा संश्लिष्ट रंगमंच के साथ जोड़कर अपने मौलिक रंग विधान की सृष्टि की है| उनके प्रमुख नाटक 'रस गन्धर्व' और 'बुलबुल सराय' में लोककथाओं का प्रयोग राजनैतिक, सामाजिक स्थितियों को स्पष्ट करने के लिए किया गया है| श्री मणि मधुकर की नाट्यकला पर विचार करते हुए श्री जयदेव तनेजा ने इस प्रकार लिखा है, "लोकधर्मी नाटकों के माध्यम से आम आदमी के पक्ष से सम्पूर्ण व्यवस्था पर तीखा कटाक्ष करते हैं|"[1]

लोकनाट्य शैली के नाटकों की श्रृंखला में राजस्थान के 'कुचामणी ख्याल' शैली की रंग परम्परा में रचित नाटक 'दुलारी बाई' बहुत ही चर्चित नाटक रहा है| इसका शिल्प पक्ष पारसी रंगमंच तथा कुचामणी ख्याल का मिश्रित शिल्प है|

[1] डॉ, जयदेव तनेजा - समकालीन हिन्दी नाटक और संग्मंच - पृ : 29

'मंगलाचरण' से नाटक की शुरुआत होती है| मंगलाचरण, सूत्रधार, गायन-वादन, नृत्य मण्डली आदि के प्रयोग से यह नाटक लोकशैली का निर्वाह करता है| नाटक का पात्र लोकनाट्य के अनुसार अपना परिचय देते हैं| 'दुलारी बाई' नाटक में मणि मधुकर जी ने कुचामणी ख्याल के समान पात्र योजना हास्य व्यंग्यपूर्ण लोकगीतों की धुनों पर गीत रचना तथा जिस प्रकार ख्याल लोकनाट्य में होता है वैसे कथा का चुनाव भी किया है| इस प्रकार यह नाटक पारसी एवं ख्याल लोकनाट्य शैली का मिला जुला रूप है|

छटे दशक के प्रयोग शील नाटककारों में 'रमेश बक्शी', 'शरद जोशी' 'दया प्रकाश सिंहा' आदि के नाम उल्लेखनीय है|

हमीदुल्ला :- हमीदुल्ला द्वारा लिखित "जैमती" विशेष उल्लेखनीय नाटक है जिसमें हमीदुल्ला जी ने राजस्थानी लोककथा को आधार बनाया है| "जैमती" एक प्रेमकथा है| साथ ही समाज में व्याप्त अंधविश्वासों, कुरीतियों पर तीखा चोट भी है| जैमती में हमीदुल्ला जी सामाजिक रीती-रिवाज़ एवं नारी शोषण के खिलाफ एक नारी के विद्रोह तथा नारी के स्वतन्त्र अस्तित्व की महत्ता का जीवंत दस्तावेज भी प्रस्तुत करता है| इस नाटक में 'फड़' नामक लोकनाट्य शैली का उपयोग किया गया है| इसकी कथा लोककथा है| नाटक में प्रयुक्त गीत संगीत, वाद्य यंत्र भी फड़ शैली "भोपा भोपी" परम्परा पर आधारित है| इस तरह यह पूर्णतः लोकनाट्य शैली को अपने में समाहित नाटक है| लोकनाट्य के प्रति हमीदुल्ला जी सफल प्रयासों के बारे डॉ. नरनारायण राय लिखते है|

"मंचीय सौन्दर्य बढाने के लिए और कथ्य की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए हमीदुल्ला ने लोकनाट्य की शैली, लोकनाट्य के विभिन्न तत्व और लोकनाट्य की प्रचलित रूढियों का भी कलात्मक उपयोग कर एक ओर जहाँ प्रयोग की नयी दिशा दी है वही रचना की संप्रेषणीयता में आशातीत वृद्धि की है|"[1]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना :- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना कवि होने के साथ साथ एक नाटककार भी है| उनके उल्लेखनीय नाटक हैं बकरी और लड़ाई| बकरी नाटक में लोकनाट्य की प्रसिध्द शैली 'नौटंकी' को अपनाई गयी है| बकरी नाटक में अशिक्षित आम जनता की व्यथा को उन्ही की भाषा में उन तक पहुँचाने की कोशिश की है| इस नाटक का रंगमंच रूपबंध बिलकुल लचीला है जो लोकशैली पर ढला गया है| इस नाटक के रूपबंध पर नौटंकी तथा पारसी रंगमंच का प्रभाव है| इस नाटक के व्यंग्य पद्य में ही उभरे हैं| नौटंकी की लोकप्रिय धुनें और बहरेतबील जैसे छंदों ने इस व्यंग्य को और भी उभारा है| गद्यात्मक संवाद नाटक के कथ्य को उभारते है पर उन्हें प्रभावशाली बनाने का कार्य तो पद्यात्मक संवाद ही करते हैं| यह नाटक आम आदमी का नाटक है| अत्यंत सीमित साधनों के माध्यम से इस नाटक का मंचन कही भी किसी गाँव या कस्बे में हो सकता है| यदि एक ओर यह नाटक चौपाल में खेला जा सकता है तो नागरी मंच पर भी इसका अभिनय हो सकता है| समीक्षक सुन्दरलाल कथूरिया ने कुछ ऐसा लिखा है – "कथ्य की दृष्टि से ही नहीं, शिल्प के धरातल पर भी

---

[1] डॉ. नरनारायण राय - नया नाटक : उद्भव और विकास - पृ : 124

बकरी एक जनवादी नाटक है| भारतीय नौटंकी और पारसी शैली के मिश्रण से बुने गए इस नाटक का शिल्प सहज और लचीला है| खुले रंगमंच के लिए लिखा गया 'बकरी' नाटक को रंगशाला की चारदीवारी से मुक्त कर उसे आम आदमी से जोड़ता है|"[1]

होरी धूम मच्यो री :- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी ने इस नाटक में लोकशैली 'रासलीला' को अपनाया है| रामलीला में कृष्ण और राधा की लीलाओं का वर्णन होता है| यह धार्मिक धरातल पर होने वाला एक लोकनाट्य है| विशेष अवसर पर गाँवों में रासलीला का खेल खेला जाता है| प्रस्तुत नाटक का गढ़न एकदम रासलीला शैली पर किया गया है| नाटक में कृष्ण, राधा , सखियाँ अदि पात्र हैं जो होली जैसे विशेष अवसर को मनाने के लिए बहुत उत्साहित है| राधा और कृष्ण का प्रेम, राधा का रूट जाना, कृष्ण द्वारा राधा को चिढाने की चेष्टायें, राधा का चिढ जाना, दोनों का मिलना, कृष्ण द्वारा राधा को मनाना आदि कई रोचक दृश्यों को नाटक में उभारा गया है| सक्सेना जी ने "होरी धूम मच्यो री' के शिल्पपक्ष को पूरा का पूरा रासलीला शैली में ढालने की कोशिश की है|

मुद्राराक्षस :- हिन्दी नाट्य जगत के बहुचर्चित नाटककार हैं मुद्राराक्षस| "मुद्राराक्षस ने यह नाटक दस दिनों के भीतर, एक विशेष परिस्थिति में लिखा

---

[1] सुन्दरलाल कथूरिया - समसामयिक हिन्दी नाटक - पृ : 92

था, जल्दबाजी जिसमें से एक थी, इसलिए नाटक की कथा तुरत में 'गोगेल' के नाटक इंस्पेक्टर जनरल' से ले ली गई थी और भारतीय परिवेश में अन्तरित कर दी गयी|"[1] हास्य व्यंग्य नाटक रचना करने वालों में मुद्राराक्षस परिचित हस्ताक्षर है राजनीतिक छल-प्रपंच एवं राजनीतिक विसंगतियों को यथार्थवादी शैली एवं शिल्प में कर दिखाना उनका अभीष्ट काम रहा है| मुद्राराक्षस का 'आला अफसर' गोगल के नाटक "इन्सपेक्टर जनरल' का अनुवाद है जिसे नौटंकी शैली में प्रस्तुत किया गया है| प्रस्तुत नाटक वर्तमान राजनीति की एक जीवंत तस्वीर है| शासक वर्ग का पार्टी बदलना, मतलबी बनना, स्वार्थ पूर्ती के लिए जनसामान्य को अनदेखा करना आदि बातों का सच्चा चित्रण नाटक में हुआ है| नाटक में वर्णित सभी विडम्बनाओं को नाटककार ने नौटंकी शैली की हास्य व्यंग्य शैली में प्रस्तुत किया है| नाटक में प्रयुक्त भाषा खड़ीबोली है| संवाद में लोकबोली एवं पद्यात्मक शैली को अपनाकर नाटककार ने नाटक को नौटंकी शैली में सिध्द करने की कोशिश की है|

हबीब तनवीर :- हिन्दी नाट्य साहित्य के सुप्रसिध्द नाटककार एवं रंगकर्मी हबीब तनवीर का नाटक चरनदास चोर छत्तीसगढ़ अंचल की लोकशैली 'नाचा' पर केंद्रित है| इनके सभी नाटकों में छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य का प्रभाव देखने को मिलता है| चरनदास चोर पूर्णतः 'नाचा' शैली में ढाला गया है|

---

[1] मुद्रा राक्षस - आला अफसर - भूमिका

प्रस्तुत नाटक एक लोककथा पर आधारित है| इस कथा के ज़रिये हबीब तनवीर ने वर्तमान समय के आदमी की बेबसी का चित्रण किया है| आदमी जब तक बेईमानी का चोला पहन कर घूमता है तब तक वह इस समाज की विषैली व्यवस्था के बाणों से बचा रहेगा| पर जब वह सत्य को अपनाता है तब उसका जीना मुश्किल बन जाएगा| इसी सत्य को हबीब जी ने प्रस्तुत नाटक में चित्रित किया है|

नाटक में मुक्ताकाशी रंगमंच की योजना है जहाँ 'नाचा' लोकशैली की गीत, नृत्य, भाषा, बोली आदि का प्रयोग भी किया गया है| छत्तीसगढ़ी लोककला एवं लोककलाकारों के प्रति विशेष रुचि रखने वाले हबीब तनवीर ने स्वयं इसे छत्तीसगढ़ के नाचा लोक कलाकारों द्वारा मंचित करवाया है|

कुसुम कुमार :- डॉ. कुसुम कुमार द्वारा रचित नाटक "रावणलीला' रामकथा पर आधारित है| धार्मिक कथ्य के माध्यम से 'रावणलीला' नाटक वर्तमान संदर्भों को समेटते हुए वर्तमान अर्थव्यवस्था की परतें खोलता है| इस नाटक पर रामलीला तथा पारसी रंगमंच का मिश्रित प्रभाव है| प्रस्तुत नाटक दो स्तर पर चलता है एक जो नाटक मंचित किया जा रहा है दूसरी कथा इस नाटक के अभिनेता की निजी जिन्दगी की समस्याओं से सम्बधित है| प्रस्तुत नाटक में खेला जा रहा नाटक रामलीला के नाम से अभिनीत किया गया है| इस बात की घोषणा नाटक में बार बार होती है|

---"(रामलीला में क्षणिक रूकावट देख दर्शकों की सीटियाँ और शोर)

रावण :- (दर्शकों से) – भाइयों यह देसी रामायण है| चुप हो जाइए|"[1]

नाटक की भाषा संवाद आदि एकदम देसी है जिसके लिए नाटककार ने जनसभा के चलते प्रयोगों, गालियों, लहजों आदि का प्रयोग किया है| नाटक में व्यंग्य का इस्तेमाल वर्तमान व्यवस्था पर चोट करने हेतु किया है| धार्मिक कथा को माध्यम बनाते हुए नये संदर्भों को व्याख्यायित किया जिसके लिए कुसुम कुमार जी ने रामलीला शैली का प्रभाव ग्रहण कर उसे अपने अनुरूप इस नाटक में ढाला है| डॉ. नरनारायण राय लिखता है – "रामलीला और नौटंकी की पारसी शैली का मिश्रण होने के कारण कुसुम कुमार का यह नाटक अपनी एक स्वतंत्र शैली का नवीन शैली का निर्माण करता है|"[2]

सरजू प्रसाद मिश्र :- सरजू प्रसाद मिश्र का दूसरा नाटक है 'नारदमोह'| 'नारदमोह' नाटक में सरजू प्रसाद मिश्र ने शासक वर्ग की सत्तालोलुपता को उद्घाटित करने की कोशिश की है| डॉ. मिश्र का यह नाटक रामलीला के माध्यम से मिथक को समकालीन संदर्भों एवं प्रश्नों से जोड़ने का प्रयास है| नाटक में रामलीला का संयोजन हो रहा है| रामलीला कंपनी के मालिक द्वारा आरती के थाल को पैसे से भरने की कोशिश जारी है| इस प्रकार नाटक में दर्शक और पात्रों

---

[1] कुसुम कुमार - रावणलीला - पृ : 21

[2] डॉ. नरनारायण राय - नया नाटक : उद्भव और विकास - पृ : 175

के बीच के वार्तालाप का चित्रण दिखाया है| नाटककार ने रामलीला मंच की रूढियों का अन्धानुकरण नहीं किया है| नाटक में बीच बीच में 'रामचरित मानस' की चौपाईयों तथा दोहों का गायन होता है| प्रस्तुति के समय इन गीतों को लोकधुनों में बाँधकर लोकधर्मिता को पूर्णतः उजागर किया है| रामलीला में एक ही पात्र का विभिन्न भूमिकाओं में उतारने की प्रवृत्ति के अनुसार 'नारदमोह' में विदूषक, प्रतिहारी, महात्मा राजकुमार आदि विभिन्न रूपों में आदि से अंत तक बना हुआ है|

इस दौर के प्रमुख नाटककारों में शैलेन्द्र, गिरिराज किशोर आदि का नाम उल्लेखनीय है| गिरिराज किशोर की श्रेष्ट नाट्य रचनाओं में 'प्रजा ही रहने दो' का विशेष महत्व है| रंगमंच की दृष्टि से यह प्रयोगों से जुडा है| नवीनतम प्रयोगों में लोकमंच को उभारने वाले नाटककार है 'नरेन्द्र मोहन'| उन्होंने बदलते रंग परिचय के नवीन प्रयोगों और रचनात्मक संवेदनाओं को आत्मसात् कर अपने नाटकों को बिलकुल एक नये अन्दाज में प्रस्तुत करने की कोशिश की है| नरेन्द्र मोहन के पाँच नाटकों में 'सींगधारी', 'कहे कबीर सुनो भाई साधो' विशेष उल्लेखनीय है| 'सींगधारी' नाटक में लोककथा का प्रयोग हुआ है जो शुरू से अन्त तक चलती रहती है| इसी तरह 'कहे कबीर सुनो भाई साधो' नाटक में कबीर के ऐतिहासिक चरित्र को उसकी मिथकीय सीमाओं में रखते हुए आधुनिक अर्थवत्ता प्रदान करने की चेष्टा की है| नाट्य शिल्प के धरातल पर गायक गायिका का मंच पर दर्शकों की तरह बैठे रहना और लोकशैली के अनुसार अपनी बारी आने पर उठकर पात्र बन जाना आदि कुछ लोकशैली पक्षों को इस नाटक में

उभारा गया है| इस प्रकार नाटकों में लोकशैली के एक सर्वथा नवीन दृष्टि को डॉ. नरेन्द्र मोहन ने अपनाया है|

सुदर्शन मजीठिया :- नरेन्द्र मोहन की तरह सुदर्शन मजीठिया भी अपने नाटकों के नवीन प्रयोगों में लोकशैली को स्थान दिया है| उनके नाटक 'राजा नंगा है' एक लोकप्रचलित कथा पर आधारित है| इस नाटक का शिल्प पक्ष लोकनाट्य के आडम्बरहीन मंच का है| मजीठिया जी ने व्यावहारिक ज्ञान के आधार पर प्रायः ही सीधे –सादे रंगमंच एवं लचीले रंग विधान को अपनाया है|

इस प्रकार साठोत्तर हिन्दी नाट्य जगत में नवीन प्रयोगों की भीड़ में लोकनाट्य शैली को अपनाने वाले कई नाटककार हुए हैं| जिनमें कुछ लोग नवीन प्रयोग की तरह लोकनाट्य को अपनाया और कुछ लोग अपनी ज़मीन से जुड़ने की इच्छा से रंगकर्म देश और काल सापेक्ष्य होता है| लोकशैली पर सृजित नाटकों का मंचन कर हम लोकमानस को परितृप्त एवं संतुष्ट करता है|

निष्कर्ष

नाटक की विकास यात्रा के क्रम में लोकनाट्य धारा शास्त्रीय नाटकों को प्रभावित करती हुई दिखाई देती है| उसने आधुनिक काल के भारतेंदु युगीन नाट्यसाहित्य को प्रभावित कर उसे समृध्द बनाया| किंतु भाषा एवं शैली-शिल्प में प्रयोग के कारण भारतेंदु युग के उपरान्त यह धारा विलुप्त सी हो गई| धीरे धीरे एक अंतराल के बाद पुनः नवीन शैली शिल्प एवं भारतीय रंगमंच की

तलाश में लोकनाट्य धारा की ओर नाट्य साहित्य उन्मुख हुआ| यह प्रयोग छठे दशक के बाद अधिक मात्रा में हुआ भारतीय नाट्य साहित्य को इन प्रयोगों से नवीन शैली प्राप्त हो गयी| साथ ही सामान्य जन तक आधुनिक नाटकों की पहुँच भी हो गई| कहने का मतलब यह हुआ कि हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास में लोकनाट्य शैली का अपना महत्व है| उसने हर काल में नाटककारों ने अपने संप्रेषण का विषय बनाया है| साठोत्तर समय में विशेष रूप से इसका प्रयोग समकालीन यथार्थ के सार्थक संप्रेषण के सिलसिले में किया गया है| इससे संप्रेषण की शक्ति बढ़ जाती है और दर्शक के अन्तःमन को आन्दोलित करने की सफलता भी हासिल हो जाती है| इस दृश्टि से हिन्दी नाटकों में लोकनाट्य के प्रयोग की अलग दृष्टि अनावृत हो उठती है|

****

तीसरा अध्याय

नौटंकी शैली पर केंद्रित हिन्दी नाटक

नौटंकी उद्भव

नौटंकी उत्तरप्रदेश में प्रचलित एक लोकप्रिय लौकिक रंगमंच है| यह परम्परा कब प्रारंभ हुई इस विषय में निश्चित रूप से कुछ कह पाना मुश्किल है| यद्यपि यह स्वीकार करने में कोई हानि नहीं है कि अन्य लोकनाट्य रुपों की तरह नौटंकी के श्रोत भी भारतीय रंग परम्परा में होंगे और यह भारतीय लोकनाट्यों की एक सुदृढ़ परम्परा रही है|

नौटंकी परम्परा का इतिहास कई सौ साल पुरानी है| हमारी लोकनाट्य परम्परा 'स्वाँग' नाम से प्रचलित रहा है| डॉ.दशरथ ओझा के अनुसार "स्वाँग नाटक हिन्दी भाषा की उत्पत्ति के साथ-साथ ही जनता के सामने आ गये होंगे| हिन्दी साहित्य में स्वाँग से प्राचीनतर नाटक का उल्लेख शायद ही मिले|"[1]

नौटंकी का मूल रूप स्वाँग रहा है| नौटंकी के उद्भव और विकास को लेकर प्रायः विद्वानों में मतैक्य नहीं हैं| कुछ विद्वानों के अनुसार नौटंकी ज्यादा प्राचीन नाट्यविधा नहीं है| उनका मानना है कि ब्रज क्षेत्र विशेष रूप से मथुरा वृदावन का "भगत" लोकनाट्य हाथरस में आकर स्वाँग हो जाता है| कानपुर में प्रचलित नौटंकी के प्रारम्भ के पीछे मुख्य भूमिका हाथरस के स्वाँग की ही रही है|

---

[1] डॉ. दशरथ ओझा - हिन्दी नाटक का उद्भव और विकास - पृ : 36

ख्याल, स्वाँग, भगत और नौटंकी में वस्तु और संरचना की कुछ भिन्नता के बावजूद उस आंतरिक साम्य के लिए गुंजाइश दिखाई देती है| उसके आधार पर यह कह सकते है कि इन नाट्यविधाओं के स्त्रोत निश्चित रूप से समान है| अलग अलग प्रदेशों में विकसित होने के कारण इन्हें अलग अलग नाम मिला होगा| इनके बीच दिखाई पढने वाली संरचनागत भिन्नता का कारण भी वे क्षेत्रीय दबाव मानते हैं| उनके बीच में ये लोकनाट्य विधाएँ विकसित हुई हैं| उत्तर प्रदेश में प्रचलित नौटंकी का पूर्व रूप स्वाँग या भगत में ही दिखाई देता है| डॉ. श्याम परमार ने लिखा है, -"कही स्वाँग के नाम से नौटंकी विख्यात है तो कही भगत के नाम से| ऐतिहासिक दृष्टि से स्वाँग की प्राचीनता में संदेह नहीं भगत मध्यकाल की वस्तु है और नौटंकी रीतिकालीन अथवा उससे पहले की मिली-जुली धारा है|"[1]

विजय बहादुर श्रीवास्तव जी के अनुसार –"1909 -10 के आसपास पंडित जी की मण्डली के प्रदर्शन से प्रभावित होकर कानपुर के ख्याल गायकों ने भी एक स्वाँग का आयोजन किया| इसमें दूर दूर के कलाकार बुलाए गए थे| इस आयोजन से ही वहाँ इस स्वाँग अथवा सांगीत को नौटंकी कहा जाने लगा|"[2]

इस प्रकार अधिकांश विद्वानों का मानना है कि नौटंकी का मूल रूप स्वाँग ही रहा होगा|

---

[1] डॉ, श्याम परमार - लोकधर्मी नाट्यपरम्परा - पृ : 50

[2] विजय बहादुर श्रीवास्तव - नाटक के और बरस - पृ : 247

नौटंकी नामकरण

नौटंकी नामकरण को लेकर ज्यादातर विद्वानों में मतभेद नहीं है| अधिकांश विद्वानों का यह मानना है कि पंजाब की विख्यात कोमलांगी 'राजकुमारी नौटंकी' के जीवनवृत पर आधारित सांगीत नौटंकी शहजादी का खेल खेला गया था| वह खेल इतना लोकप्रिय हो गया कि वहीं से इसे नौटंकी नाम से संबोधित करने लगा|

श्री रामनिवास शर्मा जी ने अपने एक लेख में नौटंकी के प्रसिद्ध कलाकार भूदेव प्रसाद शर्मा से हुई बातचीत के बारे में इस प्रकार लिखा है "उन्होंने इस शब्द की उत्पत्ति के बारे में यह बताया ....नत्थाराम स्वंय भी एक अच्छे कवि थे, इसलिए उन्होंने भी कुछ खेल लिखे| एक लोकप्रिय गायक के रूप में मारवाड़ में उनका विशेष नाम हुआ| इसी दौरान जो कहानियाँ तमाशे की तर्ज पर लिखी गयीं| उनमें एक कहानी शहजादी नौटंकी भी लिखी गयी| यह पंजाब की कहानी थी| इसमें फूलसिंह और भूपसिंह दो सगे भाई पात्र के रूप में प्रस्तुत किए गये, जिसमें बड़े भाई भूपसिंह की शादी हो गयी थी| छोटा फूलसिंह कुँवारा था| कुछ काम काज भी नहीं करता था| एक दिन कुछ तेज़ मिज़ाज भाभी ने किसी बात पर ताना दे दिया की यह तो "शहजादी नौटंकी" को ब्याह कर लायेगा| शहजादी नौटंकी सुन्दर राजकुमारी थी| उसकी मशहूरी थी कि वह नौटंक फूलों से तुला करती थी| उस दिन भाभी की बात फूल के मन में न्वश्तर- सी उतर गयी| कुछ कर दिखाने का साहस लेकर वह घर से निकल गया

और अन्त में उसे ब्याहकर लाया| यह कहानी जनता में बहुत पसन्द की बन गयी| जहाँ भी मंडलियां जाती नौटंकी स्वाँग की ही माँग होती| इसलिए लोग स्वांग के लिए नौटंकी ही कहने लगे|"[1]

कुछ विद्वानों का मानना है कि –"नौटंकी खेल में जो नौ प्रकार के नक्कारों के टंकारों की प्रतिध्वनि आती है उसी से नौटंकी नाम ऐसा पड गया| इन तमाम स्थापनाओं से यह मानना होगा कि नौटंकी प्रायः उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में विकसित होती हुई वह लोकनाट्य विधा है| स्रोत पूर्व मध्यकालीन या उत्तर मध्यकालीन लोकनाट्य परंपराओं में अवश्य है| किंतु इसका स्रोत पंजाब का स्वाँग आगरा मथुरा का भगत तथा हाथरस का स्वाँग है| यह भी कहा जा सकता है कि नौटंकी का रंगमंच मूलतः संगीत का रंगमंच है| इस विधा को नौटंकी नाम बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक दशकों में मिला|

नौटंकी – प्रमुख दो शैलियाँ

नौटंकी में कई सारे प्रभावों के चलते हुए भी इसके प्रमुख रूप से दो शैलियों को ही मान्यता मिली है जिन्हें हाथरस की शैली और कानपुर की शैली कहते हैं| मूल रूप से दोनों शैलियाँ एक है| मुख्य शीर्षक के साथ उर्फ़ लगाकर सहायक शीर्षक की परम्परा दोनों में चलते है| मूल से एक होने के साथ ही सूक्ष्म एवं स्थूल भिन्नताएँ दोनों में दिखाई देती हैं जैसे प्रस्तुतीकरण, मंचन, वेशभूषा

[1] राम निवास मिश्र - लोकनाट्य परम्परा - नौटंकी - नटरंग - जनवरी मार्च - 1993

आदि कहीं न कहीं इन शैलियों में भिन्न भिन्न प्रभाव लाता है| प्रमुख रूप से दोनों शैलियां गायकी प्रधान होती हैं| डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी जी का कहना इस प्रकार है –"हाथरस में स्वाँग रंगमंच के अखाड़े थे| इन अखाड़ों का सीधा संबंध वस्तुतः ख्याल गायकी से था हालांकि आगे चलकर कानपुर में भी निर्मित होने वाली नौटंकी मंडलियों का सम्बन्ध भी ख्याल गायकी से ही थी|"[1]

हाथरस की शैलियों में गायकी पर विशेष जोर देता था| कलाकार अपनी गायकी विशेष से ही दर्शकों तक किसी मनस्थिति को प्रकट करने में सक्षम थी जहाँ कलाकारों की संतुलित उतार चढ़ाव वाली आवाज़ से दर्शक सहज ही आकर्षित होते थे|

कानपुर की शैलियाँ पहले से ही पारसी थियेटर से प्रभावित थीं| वहाँ गायन से ज्यादा अभिनय पर जोर दिया जाता था| इस लिए ही हाथरस की वार्ता पद्यात्मक तथा कानपुर की गद्यात्मक और ओपेरा नाटकों के तर्ज की होती है| कानपुर शैली की नौटंकी में नक्कारावादन की प्रमुखता थी| लेकिन इसमें थियेटर की हीनरुचि गायन और बाद में फ़िल्मी गानों ने ख्याल गायन की गंभीरता को विस्थापित कर दिया| इसके अलावा अपनी अपनी मण्डली की शान बढ़ाने वास्ते अनेक कृत्रिम उपकरणों का समावेश किया गया| इस प्रकार अनेक परिवर्तनों ने कानपुर शैली की नौटंकी को लोकप्रिय तो बनाया| किंतु

---

[1] डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी - भारतीय लोकनाट्य - पृ :129

इसके संबंध ने भगत और स्वाँग रंगमंच के पारम्परिक शिल्प को थोड़ा शिथिल कर दिया|

नौटंकी के प्रमुख कलाकार

इन अखाड़ों में कई नौटंकी कलाकारों के नाम जुड़े हैं| कुछ प्रसिध्द कलाकारों के बारे में विषय बहादुर श्रीवास्तव जी लिखते हैं –" यहाँ यह परम्परा विभिन्न अखाड़ों के माध्यम से विकसित होती रही है| इन अखाड़ों में सहदेव का निष्कलंक अखाडा, इंदरमन का तुर्रा अखाडा, वासम जी का अखाडा, नाथाराम गौड़ का बुर्स अखाडा विशेष प्रसिध्द रहे हैं|"[1]

श्रीकृष्ण पहलवान, लालमन नम्बरदार तथा कन्नौज के त्रिमोहन की नौटंकी मंडलियों की खूब धूम रही| इसके द्वारा लिखित नौटंकियाँ खूब चर्चित रही हैं| कानपूर की नौटंकी मंडलियों की देखादेखी में विभिन्न अंचलों में स्थानीय भाषा में अनेक मंडलियों का जन्म एवं विकास हुआ| भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नौटंकी मंडलियों का जाल-सा बिछ गया था| यहाँ विशेष उल्लेखनीय बात यह रही थी कि उस समय महिला कलाकारों द्वारा संचालित मंडलियाँ भी खूब चर्चित रही हैं| जिनमें कानपूर की 'गुलाब बाई', 'कृष्णाबाई' मथुरा की कमलेश लता आये, मुरवां बांदा की गुलाब बाई, मऊरानीपुर, झांसी की भगवती बाई व पीलीभीत की राधारानी आदि की मंडलियों के नाम प्रमुखता से लिए जाते हैं| इस प्रकार देखते देखते नौटंकी का महत्व बढ़ गया, मंडलियों

[1] डॉ, विजय बहादुर श्रीवास्तव - नाटक के सौ बरस - पृ : 247

की शान बढ़ गयी| इसकी तरफ रईसों का खास झुकाव बढा| विवाह शादियों में नौटंकी ले जाना शान समझा जाने लगा| इस प्रकार नौटंकी की लोकप्रियता पूरे उत्तर भारत में फैल गयी|

हिन्दी नाट्य साहित्य में नौटंकी

प्रत्येक काल में साहित्य अपने समाज एवं उसमें व्याप्त स्थितियों एवं परिस्थितियों से प्रभावित रहता है| नाटक की विकास धारा के क्रम में परंपरानुमोदित लोकनाट्य धारा न केवल शास्त्रीय नाटकों को प्रभावित करती रही वरन् इन, नाटकों की जन्मदात्री भी रही है| आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्य शैली का प्रयोग सन् 1960 के बाद अधिक होने लगा| यह ऐसा युग है जहाँ एक ही समय परम्परा का निर्वहण और नाट्य रचना संबंधी नई दृष्टि का उन्मूलन दोनों होते रहे| फलतः नाटक के परंपरागत रास्ते से आगे बढ़ने वाले लेखकों के द्वारा पुराने मूल्यों और आदर्शों का समर्थन एक ओर होता रहा, तो स्वतंत्रता के बीच नये जोश में और नये राष्ट्र के निर्माण की कल्पना के उत्साह में पुरानी मान्यताओं एवं मूल्यों को हटाकर नये मूल्यों और जीवन दर्शन को संस्थापित करने की क्रान्तिकारी दृष्टि अपनाने वाले नये ढंग के नाटकों की रचना जारी रही|

हिन्दी नाट्य साहित्य में लोकनाटकों का समावेश एक ऐतिहासिक घटना है| लोकशैली का उपयोग नयी दृष्टि एवं नये संदर्भों के साथ ही हुआ है| लोकशैली के माध्यम से नाटककारों ने आधुनिक भावबोध को मंच पर प्रस्तुत

किया है| इस तरह सहज रूप से लोकनाटक आधुनिक हिन्दी नाटकों में प्रवेश पा गया| आधुनिक जीवन के साथ-साथ अपनी मिट्टी से जुडे रहने वाले नाटककारों में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मुद्राराक्षस, अशोकमिश्र, विनोद रस्तोगी आदि उल्लेखनीय हैं| अपनी मिट्टी अपनी परंपरा संस्कार के प्रति इनका स्वाभाविक आकर्षण रहा है| इन नाटककारों ने लोकनाटकों का प्रयोग नये अर्थ एवं नये संदर्भों में किया है|

लोकनाट्य शैली की नौटंकी को इन नाटककारों अपने नौटंकी में उतारा है| परिणाम स्वरूप उनके नाटक दर्शकों के बहुत करीब आ गये| अपनी मिट्टी के होने की वजह से इनके नाटकों ने दर्शकों को अधिक प्रभावित किया| नौटंकी शैली को अपनाकर ये नाटककार अपने दर्शकों को अपनी भूमि एवं परम्परागत संस्कार से परिचित कराना चाहते थे| साथ ही साथ समकालीन परिस्थितियों को नाटकों के द्वारा व्यक्त कराना भी इसका लक्ष्य रहा है|

डॉ. शैलजा भारद्वाज जी के अनुसार –“स्वातंत्र्योत्तर नाटकों में लोक नाटकों का प्रयोग शिल्प के धरातल पर अपना कर नाटकों को एक नया अर्थ एवं रूप मिला है| कही स्त्री-पुरुष संबंधों को इस शिल्प एवं कथानक के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया तो कही समकालीन शासन व्यवस्था सामाजिक विसंगति को उभारा गया है|”[1]

[1] डॉ. शैलजा भरद्वाज - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक साहित्य में लोकतत्व - पृ : 161

आज साहित्यिक नाटकों में नौटंकी शैली अधिक लोकप्रिय है| यह शैली पद्यबद्ध होने के बावजूद अनेक नाटककारों ने इस शैली को अपने नाटकों में अपनाया है| दर्शकगणों के साथ सीधा संबंध की क्षमता इस शैली को और भी प्रिय बनाता है| दर्शकगण की इस शक्ति को पहचानते हुए डॉ. लाल ने इस प्रकार लिखा है –"स्वभावतः ये दर्शक न यथार्थवादी नाटक चाहते हैं, नाटक ऐसा जो एक और इनके विषय, इनके यथार्थ से सम्बंधित हो, दूसरी ओर जो इनकी भावानुभूति इनके दर्शन को उसके भीतर से वाणी दे सके| उन्हीं के मानव चित्र, उन्हीं के राग-रंग में जो उन्हें बाँध सके और उन्हें रंगशाला में बैठने के लिए जो आकर्षित कर सके| क्योंकि व्यावहारिक स्तर पर आज नाटककार से पहले रंगशाला में दर्शक की समस्या है|" [1]

नौटंकी का लोकनाट्य परम्परा में सशक्त स्थान है| यह हमारी सांस्कृतिक विरासत ही नहीं बल्कि जन जागृति और जन संपर्क का भी बड़ा माध्यम रहा है| सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों को जनमानस तक पहुँचाने का प्रयास उस समय के नौटंकियों में होता रहता था| बल्कि नौटंकी ही ऐसा एक माध्यम था जिनके ज़रिये लोक मन तक बात पहुँचा सके| जन जागृति पैदा करने वाले प्रमुख नौटंकियों में श्रीकृष्ण पहलवान द्वारा लिखित "जालियाँवाला बाग", "टीपू सुलतान", "शहीद भगत सिंह", "बलिया का शेर" आदि प्रमुख है| इन नौटंकियों ने लोकमानस में राष्ट्रीय भावनाओं का शंखनाद किया| डॉ. लाल, सक्सेना,

---

[1] डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल - रातरानी - भमिका

मुद्राराक्षस, आदि लेखकों ने नौटंकी की शक्ति को पहचाना और अपने नाटकों को जनता तक पहुँचाने का ज़रिया बनाया| नौटंकी में लोकभाषा और लोकबोली का प्रयोग होता है| प्रेक्षकों में हर वर्ग और रुची के लोग होते है| इसलिए लोकशैली के प्रभाव से प्रेरित इस नाटककारों ने सामान्य जन की भाषा और लोकबोलियों का प्रयोग करना आवश्यक माना| नौटंकी के माध्यम से नाटककारों ने अपने नाटकों में ग्रामीण शब्दों, देशज शब्दों, मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग किया और साहित्यिक भाषा की जटिलताओं को उतार फेंका|

व्यंग्य का प्रयोग नौटंकी की सबसे बड़ी खासियत है| गंभीर विषयों को सरल एवं चुटीले शब्दों में लोगों तक पहुँचाने के लिए व्यंग्य का प्रयोग किया करता था| नौटंकी की इस खासियत को नाटककारों ने बहुत ही प्रभावी ढंग से आज़माया है| इस प्रकार नौटंकी की भाषा, बोली, व्यंग्य, गीत-नृत्य, प्रस्तुति सब में एक प्रकार का अनोखापन है जो इसे बाकि सभी लोकशैलियों से अलग बनाता है| नौटंकी की उर्वराशक्ति से प्रभावित प्रमुख नाटककार हैं डॉ. लाल, सक्सेना, मुद्राराक्षस, अशोक मिश्र आदि| इस सबके नाटकों में नौटंकी शैली का प्रभाव हम देख सकते हैं| इसलिए इनके नाटकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन इस अध्याय के लिए बहुत ही आवश्यक है| सर्वेश्वर दयाल सक्सेना द्वारा लिखित “बकरी” डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल द्वारा लिखित “एक सत्य हरिश्चन्द्र”, “सगुन पछि”, मुद्राराक्षस द्वारा लिखित “आला अफसर” अशोकमिश्र का “बजे ढिंढोंरा उर्फ़ खून का रंग” आदि नौटंकी लोकशैली से प्रभावित नाटकों में महत्वपूर्ण है|

बकरी – सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

व्यंग्यपूर्ण रचनाकार के रूप में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी का महत्वपूर्ण स्थान है| 'बकरी' नाटक सक्सेना जी का नवीन शिल्पगत प्रयोग है| सामान्य जन को ध्यान में रखकर यह नाटक किया गया है| समकालीन राजनैतिक व्यंग्य को नाटककार ने लोक शैली में प्रस्तुत किया है| डॉ. नीना शर्मा का कहना है – "भारत का सत्तर प्रतिशत उस अशिक्षित, अल्पबुद्धी, धर्म भीरु आम आदमी की कहानी है जिन्हें लूटने की साजिश वे रचते है जो खुद को जनता का सेवक कहते है|"[1]

बकरी नाटक में युगीन यथार्थों को जीवन यथार्थ से जोड़कर नौटंकी शैली में प्रस्तुत किया गया है| वह सीधे जनसामान्य से जुड़ जाता है| बकरी में नाटककार ने भारतीय जनमानस में समाई गयी रंग शैलियों का समन्वय किया है| इसमें संस्कृत नाटकों की तरह दोहा, चौबोला, दौड़, बहरेतबील का प्रयोग किया गया है| नट मंगलाचरण में राजनैतिक संदर्भ देकर उसे समसामयिक बताता है| नट गायनों का आयोजन प्रत्येक दृश्य के आरंभ में होता है| नाटक में नाटककार ने इस प्रकार कई नवीन प्रयोगों का इस्तेमाल किया है जो इसे समसामयिक बनाता है|

---

[1] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 134

श्री जयदेव तनेजा के शब्दों में – “यह नाटक कथ्य और शिल्प की दृष्टि से एक ऐसा अभिनव प्रयोग है, जो एक स्तर पर रंगमंच की सर्वव्याप्ति की संभावनाएं उजागर करता है तो दूसरे स्तर पर ख़ास तौर से हिन्दी के व्यंग्य प्रधान नाटकों को एक नया आयाम देता है| एक स्तर पर रंगमंच को कला की कसौटी पर खरा उतारते हुए सामाजिक यथार्थ से, राजनीति से जुड़ने की तमीज़ सिखाता है, तो दूसरे स्तर पर उन तमाम तकनीकी जटिलताओं को फोड़ने की क्षमता प्रदर्शित करता है, जो जन साधारण को अभिजात्य वर्ग से, गाँव को शहर से दूर रखने में सहायक होते रहे हैं|”[1] प्रस्तुत नाटक में सक्सेना जी नौटंकी शैली को अपनाकर अशिक्षित जनता की व्यथा को उन्हीं की भाषा में उन तक पहूँचाने की कोशिश की है|

एक सत्य हरिश्चन्द्र, सगुन पंछी – डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल

हिन्दी के जाने पहचाने आधुनिक नाटककार डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल द्वारा रचित नाटक है ‘एक सत्य हरिश्चन्द्र’| ‘एक सत्य हरिश्चन्द्र’ प्रश्नहीन बनी जनता की जागृति की कथा है| प्रस्तुत नाटक में नाटककार ने ‘नाटक में नाटक’ का शिल्पगत नवीन प्रयोग किया है| सक्सेना ने लोकनाट्य शैली के उपयोग से प्रस्तुत नाटक को जनसामान्य के अधिक निकट लाने का प्रयास किया है|

[1] डॉ.जयदेव तनेजा, समकालीन हिन्दी नाटक और रंगमंच, पृ : 28

शिल्प की दृष्टि से यह पूर्णतः मौलिक और अपनी धरती से उपजा अभिनव रंग प्रयोग है जिसमें नौटंकी, रामलीला, पारसी और यथार्थवादी शैलियों का सम्मिश्रण किया गया है| नाटक में पौराणिक पात्रों के माध्यम में समकालीन यथार्थ की सच्चाई को अभिव्यक्त किया गया है| नौटंकी में जो सूत्रधार है वह नाटक में रंगा है| डॉ. लाल ने प्राचीन शैली में आधुनिक यथार्थ की अभीव्यक्ति करके युग बोध की तरफ सबका ध्यान खींचा है|

परंपरागत नौटंकी शैली में लिखा गया नाटक है 'सगुन पंछी'| स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों की गहराई को अभिव्यक्ति देने के लिए डॉ. लाल ने 'सगुन पंछी' का आधार लोक कथा बना लिया है| विशुद्ध लोकनाट्य शैली में प्रस्तुत इस नाटक में परंपरागत लोक नाट्य की रूढियों का खुलकर प्रयोग किया है| परंपरागत चरित्र विदूषक भी नाटक में विद्यमान है| नाटककार ने लोकनृत्य, लोकगीत, लोक कथा और चरित्र लोक जीवन के विविध पक्षों को नाटक में प्रस्तुत किया है साथ ही लोक रस से इस नाटक को सरोबार किया है| लोक नाट्य की यह विशेषता है कि वह लोक मानव के अधिक निकट होता है, सगुन पंछी में भी यह शक्ति विद्यमान है| इस लिए ही यह नाटक दर्शक समुदाय के बीच बहुत ही लोक प्रिय रहा है|

बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग – अशोक मिश्रा

अशोक मिश्रा हिन्दी के प्रसिद्ध नाट्य निर्देशकों में से है| लोकनाट्य शैली नौटंकी को आधार बनाकर 1984 में लिखी गयी उनकी प्रमुख नाट्य रचना है 'बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग'| अशोक मिश्रा जी ने कविता लिखने के अपने

शौक और बचपन में देखी नौटंकियों की कुछ यादों को अपने ढंग से इस नाटक में इस्तेमाल किया है| उनका मानना है कि हिन्दी में जिस तरह के दर्शक हैं उन्हें समझकर नाट्य लेखन नहीं हुआ है| पश्चिमी नाट्य कला से प्रभावित होकर जो नाटक लिखे गए हैं वे निष्प्राण हैं| अशोक मिश्रा जी आज के समय में ऐसे नाटकों की ज़रूरत महसूस करते हैं, जो अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए सक्षम हैं| नौटंकी शैली वर्तमान व्यवस्था का पर्दाफाश करने का सशक्त माध्यम सिद्ध हुई है| अशोक मिश्रा जी का मानना है – "मेरी सोच में हमेशा यही रहा है कि मैं उन लोगों के लिए नाटक लिखूँ जिनके लिए नाटक नहीं है| इसलिए मैं ने यह नौटंकी लिखी| नौटंकी में अपार नाटकीय संभावनाएँ हैं और बात को कहने के लिए शक्तिशाली माध्यम है|"[1] किंतु अशोक जी इस शैली को नाटक की सीमा नहीं मानते| प्रस्तुत नाटक अशोक मिश्रा की सफल एवं सशक्त कृति है| यह राजस्थानी, लोक कथा को आधार बनाकर वर्तमान राजव्यवस्था, स्वार्थपरता एवं जनसामान्य की बेबसी को नौटंकी फ्रेम में जड़ कर प्रस्तुत करने की एक सफल कोशिश है| वर्तमान समाज की सबसे बड़ी विसंगति यह है कि यहाँ ईमानदार फँसता है और बेईमान बच जाता है| यही विसंगति इस नाटक में उभर कर आयी है| ईमानदारी एवं बेइमानी की व्याख्या यहाँ अपने स्वार्थ के अनुरूप बदल जाती है|

---

[1] अशोक मिश्रा, बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग : 'दो शब्द' में से

आला अफसर – मुद्राराक्षस

हिन्दी के बहुचर्चित आधुनिक नाटककार मुद्राराक्षस द्वारा लिखित 'आला अफसर' नाटक हास्य व्यंग्य के ताने बाने से बुना गया है| यह नाटक वर्तमान राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दा खोल देता है| नौटंकी के कलात्मक प्रयोग के कारण आला अफसर का हिन्दी नाटक और रंगमंच के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है| नाटक में दोहा, बहरतबील, ठुमरी आदि का प्रयोग है| संवादों में गद्य-पद्य शैली का प्रयोग है| आला अफसर नाटक अपनी शैलीगत विशिष्टता में जीवंत और मौलिक है और हिन्दी नाट्य जगत में एक रचनात्मक मोड़ है|

नौटंकी से प्रभावित नाटकों का शैलीगत विश्लेषण

भारतीय नाट्य परंपरा के विकास में छठे दशक का महत्वपूर्ण स्थान है| इस दशक में कई प्रकार के नवीन प्रयोग हुए है| इस युग में नाटककारों का ध्यान लोकनाट्य की तरफ गया तथा उन्हें कथ्य, चत्रित एवं शिल्प के स्तर पर अनेक नवीन संभावनाएं दिखायी पडीं|

नौटंकी लोकनाट्य शैली अपनी शिल्पगत विशेषताओं के लिए विख्यात रहा है| नौटंकी का रंगमंच मुख्यतः संगीत का रंगमंच है| नौटंकी के अपने पात्र, वेशभूषा, गीत, भाषा, बोली, मंच आदि होते हैं| नौटंकी लोकशैली से प्रभावित नाटकों में लोक की शिल्पगत विशेषताओं का नवीन प्रयोग हुआ है| प्रस्तुत अध्याय में नौटंकी शैली से प्रभावित नाटकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन हुआ है|

बकरी, एक सत्य हरिश्चन्द्र, सगुन पंछी, बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग, आला अफसर आदि नाटकों का शिल्पगत अध्ययन हम निम्न आधारों पर कर सकते है| पात्र एवं वेशभूषा, भाषा एवं संवाद, गीत-संगीत, मंच एवं दृश्यविधान|

पात्र एवं वेशभूषा

नौटंकियों में विविधता के अनुसार उसके पात्र भी विविधता लिए हुए हैं| लोकनाट्य रुढियों की तरह नौटंकी में पुरुष ही स्त्री पात्रों की भूमिका निभाते हैं| सन् 1939-40 के आसपास जब महिला कलाकार मंच पर आने लगे| तब से प्रायः स्त्री पात्रों की भूमिकाएँ महिलाएँ ही करने लगी हैं| कानपुर की पद्मश्री गुलाबराय को नौटंकी के पहली महिला कलाकार होने का श्रेय प्राप्त है|

नौटंकी का प्रमुख पात्र रंगा होता है| रंगा द्वारा खेले जाने वाली नौटंकी की घोषणा से ही नौटंकी का प्रारंभ होता है| रंगा नौटंकी खेल का सूत्रधार होता है| 'आला अफसर' नाटक में नौटंकी के पारंपरिक पात्र रंगा की योजना की गई है जो सूत्रधार के रूप में कार्य करता है| कथा सूत्रों को जोड़ने का एवं घटनाओं का वर्णन करने का काम रंगा करता है| रंगा का प्रवेश नाटक के प्रारंभ में होता है|

"रंगा – (सामने आकर) हाँ तो अपने मेहरबान कदरदान लोगों के सामने आज एक ऐसा खेल दिखाने जा रहे हैं जो खेल कम है, सच्चाई ज्यादा है| क्या है?"[1]

[1] मुद्राराक्षस, आला अफसर, पृ : 23

'रंगा' पात्र की योजना 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' और 'बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग' नाटक में भी है| 'सगुन पंछी' नाटक में 'मसखरा' नामक पात्र रंगा की भूमिका निभाता है| पर 'बकरी' नाटक में 'नट एवं नटी' आते हैं| नाटक की सूत्रधारिता का भागडोर अपने हाथ में संभालते हैं तथा पारंपरिक वेशभूषा की अपेक्षा रखते हैं| रंगा नौटंकी खेल का सूत्रधार होता है इसलिए यह नाट्य की मुख्य भूमिका निभाता है| जो नौटंकी के बीच बीच में आके कथाप्रसंग को आगे बढ़ाता है| वह जनता के मनोरंजनार्थ एक जोकर का कार्य भी करता है| नौटंकी के पात्रों का दर्शकों से सीधा संबंध होता है| कथा की माँग के अनुसार रंगा पात्र मानवेतर पात्र की भूमिका भी कभी कभी निभाता है| 'बकरी' नाटक में 'बकरी' की भूमिका मुखौटा लगाकर कोई पात्र निभाता है,

-"दर्शकों को हंसाने की चेष्टा में यह कभी कभी अश्लील हो जाते है| दरबारी, मुनीम, पहरेदार आदि छोटी छोटी भूमिकाएँ अदा करने के साथ साथ आवश्यकता पड़ने पर इसे प्रतीक रूप में हाथी, घोड़ा, वगधा आदि भी बनना पड़ता है|"[1] 'सगुन पंछी' नाटक में 'तोता-मैना' की भूमिका कोई पात्र मुखौटा लगाकर करता है|

एक ही पात्र द्वारा एक से अधिक पात्रों की भूमिका निभाना नौटंकी की विशेषता है जिसका उल्लेख खुद नाटककार ने दिया है, -"संगीत समाप्त होते-होते

[1] विजय बहादुर श्रीवास्तव - नाटक के सौ बरस - पृ : 249

दायीं ओर से तोता जो अब किसान बन गया है और मैना गंगा, दोनों दिखते है|"[1] 'मंगलाचरण' नौटंकी लोकशैली की शुरुआत दृश्य है जिससे दैविक पात्रों की योजना भी होती है| कभी कभी यह दृश्य हास्य-व्यंग्य का माहौल पैदा करते हैं| 'बजे ढिढोरा उर्फ़ खून का रंग' नाटक में मंगलाचरण गणेश एवं मूशिक की हाज़िर में होता है, "मंच के मध्य में गणेश जी खड़े हैं| उनके पैरों के नीचे मूषक बैठा हुआ है| सभी पात्र समवेत स्वर में वन्दना गाते है|"[2]

इस प्रकार की योजनाएँ नौटंकियों में अक्सर होती है| दर्शकगणों की भागीदारी भी नौटंकी को अन्य नाटकों से अलग करती है| इस प्रकार नौटंकी शैली से प्रभावित नाटकों में पात्र योजना एवं पात्र संयोजन एकदम नौटंकी के अनुरूप होते हैं| जिससे वह आम जनता के करीब हो जाता है|

पात्र योजना को मुखसज्जा एवं वेशभूषा से अलग कर नहीं देख सकते| नौटंकी में पात्रों की वेशभूषा एवं मुखसज्जा का बहुत बड़ा स्थान है| वैसे तो वेशभूषा एवं मुखसज्जा कथानुसार पात्रोचित होती है साथ ही साधारण भी| 'बकरी' नाटक में लोकशैली का प्रयोग हुआ है| इसमें ग्रामीण जनता सामान्य वेशभूषा पहनती है| नाटक में ग्रामवासियों का पहनावा देखिए "औरत के साथ चार छः ग्रामवासियों का प्रवेश, सभी अनपढ़, नंगे है|"[3]

---

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - सगुन पंछी, पृ : 28

[2] अशोक मिश्र - बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग - पृ : 17

[3] सर्वेशवर दयाल सक्सेना - बकरी - पृ : 25

नौटंकी में मुखौटे का प्रयोग अक्सर होता है जो मानवेतर एवं दैविक पात्र के संदर्भ में| 'बजे ढिढोरा उर्फ़ खून का रंग' नाटक में 'गधा' 'मूशिक' 'गणेश' आदि| 'तोता-मैना' की भूमिका सगुत पंछी में सबसे महत्वपूर्ण पात्र है| बकरी नाटक का 'बकरी' इस प्रकार अनेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं|

नौटंकी में सादगीपूर्ण मुखसज्जा कभी कभी तडकीले भडकीले भी बन जाते है| सबसे बड़ी विशेषता रंगा पात्र की वेशभूषा में है| जिसकी वेशभूषा बिलकुल सामान्य किंतु ऐसी होती है जिसे देखकर दर्शक इसे अप्रासंगिक बेतुक की बातें करने की पूरी छूट देती है| नौटंकी में पुरुष पात्रों के लिए 'अचकन' 'चूड़ीदार' तथा कथा के अनुसार पात्रोचित वेशभूषा होती है| स्त्री पात्रों के लिए लहंगा, ओढनी, आदि का उपयोग करते हैं| नौटंकी में पहले असली जेवरों का उपयोग होता था| किंतु वर्तमान स्थिति में भिन्नता है| अब बनावटी जेवरों का उपयोग होता है| नौटंकी में मुखसज्जा के लिए मुर्दासिंगी, काजल, जिंक आदि के प्रयोग हुआ करते थे| 'पाउडर', लिपस्टिक' आदि का प्रयोग भी होता है|

इस प्रकार पात्रसंयोजन एवं वेशभूषा की दृष्टि से सभी नाटककारों ने अपनी कृति को लोकनाटकों के एकदम समीप लाकर खड़ा कर दिया है|

भाषा एवं सवाद

नौटंकी में भाषा एवं संवाद का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है| भाषा की दृष्टि से पद्य संवाद तथा उर्दू से प्रभावित भाषा की जाती है| इसके अतिरिक्त अवधी

पंजाबी जैसी स्थानीय एवं क्षेत्रीय भाषा-बोली का उपयोग भी होता है| 'आला अफसर' नाटक में लोकबोली का प्रयोग इस प्रकार हुआ है

"देवदत्त (झिझोटी)
झन झन झन बेडी बाजे
बान बटन मोरे हाथ छिलत है
और रईसी पेल सजनवा|
झन झन झन झन"[1]

उपयुक्त छंद में अपनाई गयी भाषा पूर्वी हिन्दी एवं व्रज है| 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में डॉ. लाल ने अनेक जगह पात्रों द्वारा लोकबोली का प्रयोग किया है| एक उदाहरण

"नारंगीवाली :- है| यह तो बड़ा मुरहा लग रहा है
गुंडा :- बड़े घोटे है गुरु, परम योगी है|
ब्राह्मण :- अरे चुपो चुपो परम योगी है योगी|
नारद :- नहीं भाई, सब गप्प है| अरे गुरु एक बीडा पान तो खिवाया हो|
नारंगीवाली :- हमारा नौरंगिया?
नारद :- राजा हो| हम्में तनिको अच्छा नाही लागत नारंगी|" [2]

---

[1] मुद्राराक्षस, आला अफसर, पृ : 37
[2] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - एक सत्य हरिश्चन्द्र - पृ - 51

नौटंकी विधा गायकी प्रधान है इसलिए नौटंकी में पद्यसंवादों की प्रमुखता रहती है| पद्यसंवादों की योजना आला अफसर में हम देख सकते है| उदाहरण

“पोस्टमास्टर (दोहा)

पोस्टमास्टर में यहाँ कहलाता नाचीज़|

सोच रहा हूँ आपसे कुछ मिल जाय तमीज़||

देवदत्त (दोहा)

मैंने कुछ सूना है यहाँ आपका नाम|

लोग बताते है मुझे खास आपका काम||”[1]

नौटंकी के संवादों में चुटीले व्यंग्य की प्रस्तुति उसकी एक खासियत है| बजे ढिढोरा उर्फ़ खून का रंग” नाटक का एक संवाद इस प्रकार है|

“फक्कड :- कब्जा कैसा कब्जा मालिक? मेरे पास तो एक बीघा ज़मीन नहीं है| नंगा आदमी हूँ ओढने बिछाने का ठिकाना नहीं|

पटवारी :- कानून मत छाँट| अबी तरे पास ज़मीन नही है तो रहता कहाँ है| चलता किस पर है? हंगता-मूतता कहाँ है? हवा में?”[2]

नौटंकी से प्रभावित होकर सभी नाटककारों ने अपने नाटकों में व्यंग्य संवादों का प्रयोग किया है| पद्य संवादों में तुकांत शैली पर आधारित संवाद भी नाटकों में देख सकते हैं|

---

[1] मुद्रा राक्षस - आला अफसर - पृ : 58

[2] अशोक मिश्र - बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग, पृ : 45

'एक सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक से उदाहरण है

"गोपोले :- सरदार मजेदार है नौटंकी| सवा सेर पर छटंकी|

यह कहते हुए मुझे होता है सदमा,

अब तक कुछ नहीं कर पाई मिस पद्मा|"[1]

तथा

भंगवाला :- दोनों हाथों से ले भंग|

नारंगीवाली :- नारंगी के संग|

भंगवाला :- बम भोले भंग घोले|

नारंगीवाली :- नारंगी| संतोले|[2]

इसके अतिरिक्त मुहावरे – लोकोक्तियों का प्रयोग भी नाटकों में बीच बीच हुआ है|

"जैसे – हाथ पाँव फुल रहे, मुँह तोड़ जवाब

कौये की चोच में अंगूर का दाना

खोद पहाड़ और निकले चूँहे"

'बकरी' नाटक में सक्सेना जी ने मंगलाचरण की व्यवस्था इस प्रकार की है जिससे आम आदमी की समकालीन स्थिति व्यक्त हो जाती है|

" है संकट मोचु

बना दे हमें घोंचु|

---

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - एक सत्य हरिश्चन्द्र - पृ : 44

[2] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल - एक सत्य हरिश्चन्द्र - पृ : 46

अपना सिर नोंचुँ न उनका मुँह नोंचुँ|

है संकट मोचू .....

किसकी रसोई में किसका कलेजा

कौन पकाए, कुछ भी न सोचुँ|

है संकट मोचू ....

हो जडभरत हमारे श्रोता

दर्द न छलके जितना खरोंचुँ|

है संकट मोचू.......

नट : नहीं भवानी, यह तो वन्दना थी, मंगलाचरण|

आम आदमी की हालत देखते हुए आम आदमी की ओर से"[1]

ऐसे ही प्रसंग अन्य नाटकों में भी मिलते हैं जिससे नाटककारों का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है| नाटककारों ने जिन जिन उद्देश्यों से नौटंकी को नाटक का माध्यम बनाया है उनके सफल पूर्तीकरण के लिए नौटंकी की भाषा एवं संवाद बहुत ही सहायक बना है|

गीत एवं संगीत

नौटंकी अपनी गीत संगीत के लिए बहुत ही प्रख्यात है| नौटंकी विधा में गायकी प्रमुख है| इसका अपना छंद विधान होता है| दोहा, चौबोला, बेहरतबील, दौड़ इसके प्रमुख छंद हैं| चौबोला हिन्दी साहित्य के ललित अथवा सार छंद के लक्षण का होता है, जबकि नौटंकी के अत्यंत आकर्षक व प्रभावशाली

[1] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - बकरी - पृ : 12

छंद बहरतबील उर्दु के मुतदारिक छंद के लक्षण का होता है| दौड़ छंद को नौटंकी की ही देन कहा जा सकता है|

विजय बहादुर श्रीवास्तव जी का कहना इस प्रकार है "दौड़ छंद विभिन्न मनस्थितियों में अलग अलग धुनों में गाए जाते है| जहाँ कथानक को विस्तार देने के लिए चौबोला का प्रयोग होता है, वहीं कथानक की गति संतुलित करने व नाटकीय मोड़ देने के लिए बड़ी सूझ-बूझ के साथ दौड़ का प्रयोग किया है| दौड़ का प्रयोग चौबोला छंद के साथ होता है|"[1]

नौटंकी शैली से प्रभावित नाटकों में नौटंकी की गीत संगीत शैली को लेखकों ने अपनाया है| 'बकरी' नाटक में मुख्य रूप में नट-नटी के ज़रिये गीतों का प्रयोग हुआ है| डॉ. नीना शर्मा लिखती है "वैसे तो लोकनाट्यों के गीत संगीत पक्ष से नाटककार ने बहुत कुछ लिया है| समूहगान (कहरवा) शैली के कुछ छंद, कोरस, वन्दना आदि के अतिरिक्त नौटंकी के अपने छंद जैसे दोहा, चौबोला, दौड़ एवं बेहरतबील का भी न्यूनाधिक रूप से नाटक में परिलक्षित होते हैं|"[2] नौटंकी का प्रारंभ भेटगायन से होता है जिसमें देवीदेवताओं की वन्दना होती है| इसके लिए सभी कलाकार मंच पे आकर कोरस रूप में गाते हैं| 'बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग' नाटक से उदहारण है,

" जय गणपति जय है गणनायक

[1] विजय बहादुर श्रीवास्तव, नाटक के सौ बरस, पृ : 249

[2] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 136

जय जनता के भाग्य विधायक

जय गणपति जय.......

मूषक पर क्यों चढ़े हुए हो

सदियों से क्यों अड़े हुए हो

कारण यही समझ में आया

शायद मूषक है नालायक|”[1]

यह वन्दना का स्वरूप लेखक ने व्यंग्यात्मक शैली में किया है| ‘आला अफसर’ नाटक में भी गणेश वंदना की गयी है| नाटक में यह लोककलाकारों द्वारा ही गाया जाता है| उदहारण – “ सभी पात्रों द्वारा समवेत गायन

सभी : गाइए गणपति जय |

जिनके कान न सुनते क्रंदन|

गाइए गणपति जय वंदन|

हर सवाल का सदा एक हल

नारे घिसो लगाओं चंदन

गाइए गणपति जय वंदन|”[2]

उपर्युक्त वंदना आज की वर्तमान व्यवस्था पर तीखा प्रहार है| ‘बकरी’ नाटक में नौटंकी के सभी छंदों पर गीतों का प्रयोग हुआ है| प्रमुख छंद चौबोला पर एक उदहारण है

---

[1] अशोक मिश्र, बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग, पृ : 17

[2] मुद्रा राक्षस, आला अफसर, पृ : 23

"चौबोला –

करन स्वाँग प्रारंभ आसरो हमको मातु तुम्हारे|

मझधारा के बीच भंवर डोंगा पडो हमारा|

नट : अनल कंठ में भरा सकल कायरता जड़ता जारौ

जन मन संशय हरौ दैन्य दानव दुर्दीन संहारो|"[1]

प्रमुख छंद 'दोहा' और 'चौबोला' के मिले जुले रूप 'आला अफसर' नाटक में इस प्रकार है,

"दोहा – कस्बा चितरपुर नाम का बसा शहर से दूर|

ओहदेदार जहाँ किए मिली-भगत भरपूर|

चौबोला –

मिली भगत भरपूर वहाँ इक चेयरमैन कहलाते हैं|

उनसे मिलकर ऊँचे अफसर भारी मौज उठाते है||

हेडमास्टर एक, एक दारोगाजी कहलाते है|

पोस्टमास्टर हाखिम साहब सुर में सुर मिल गाते हैं||"[2]

इन छंदों का प्रयोग नाटक में बीच बीच में हुआ है| 'बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग' नाटक में भी इन छंदों का प्रयोग हुआ है जो बेकारी और बेईमानी से भरे समाज पर तीखा व्यंग्य है| डॉ. लाल ने अपने दोनों नाटकों में गीतों का प्रयोग

---

[1] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बकरी, पृ : 11

[2] मुद्राराक्षस, आला अफसर, पृ : 24

किया है| 'सगुनपंछी' नाटक में परंपरागत छंदों का संकेत नहीं है बल्कि पंछी गीत का उपयोग नाटक में बीच बीच में किया है|

"(सब पंछी गाते हैं|)

लगिगें जोबनावां के धक्का

बलम कलकत्ता निकरि गै|

सोने की थाली में जेवना परोस्यों

जेवना न जेवै फुलावे गलुक्का

बलम कलकत्ता निकरि गै|"[1]

'एक सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में डॉ. लाल ने 'दोहा', चौबोला' छंदों का प्रयोग बीच बीच में किया है साथ ही जगह जगह लोकगीतों के प्रयोग से नाटक को आकर्षणीय बनाया है|

लोकगीत –

"मेरे जीवन में लाल जड़े

बहुत खरे ओ महाराज रे|

कोऊ मूंगा कोऊ सोना कहते है

परखन वाले पर गज पड़े........

बहुत खरे ओ महाराज रे|

कोऊ हीरा लाल कहत है|

---

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, सगुन पंछी, पृ : 46

चाखनवाले पर करम लड़े

उत खरे ओ महाराज रे|”[1]

इसी प्रकार लोकगीतों का प्रयोग स्थान स्थान पर देख सकते है| इसी क्रम में ‘नृत्यगीत’ भी उल्लेखनीय है जो लोकगीत से प्रभावित है| ‘आला अफसर’ नाटक में मुद्राराक्षस जी ने नौटंकी के सभी छंदों का प्रयोग किया है जो हर प्रसंग में देख सकते है| ‘बहरतबील’ छंद की तुकान्त शैली सिर्फ ‘आला अफसर’ में ही देख सकते हैं|

“डेढ़ मुर्गी जो पाली तो पीछे पड़े

कोतवाली की हालत तो देख ज़रा|

इसके सारे सिपाही नशे बाज है

वर्दियों को दरोगा ने गिरवी धरा|”[2]

कुछ इस प्रकार के तुकान्त पे खतम होने वाली और भी नौटंकी के ख़ास छंदों का प्रयोग आला अफसर में किया गया है|नौटंकी में मुख्य छंदों में दोहा, चौबोला, दौड़, बहरतबोल आते है| इन छंदों के प्रयोग से नाटककारों ने अपने नाटकों को नौटंकी की पारंपरिक शैली से जोड़ा है|

नौटंकी शैली में प्रमुख कुछ छंदों के साथ साथ अनेक सहायक छंदों का भी प्रयोग किया गया है| लावनी, छंद, दुबाला, सोहनी, कड़ा, वीर छंद, शिशक्त रेखता, डेढ़ तुकी, दादरा, लावनी, छोटी, लावणी वशीकरण, लावनी लंगड़ी,

---

[1] लक्ष्मीनारायण लाल, एक सत्य हरिश्चन्द्र, पृ : 66

[2] मुद्रा राक्षस, आला अफसर, पृ : 27

रंगत बाग़, मसनवी व झूलना आदि इस श्रेणी में आते हैं| इनमें अधिकांशतः उर्दू के सुपरिचित छंद के लक्षण पाए जाते हैं| 'आला अफसर' नाटक में सहायक छंदों में प्रमुख 'ठुमरी' का प्रयोग हुआ है|

"ठुमरी
भुजनिया भूजे बिना खा जाए|
बड़ी ने छोटी मछली निगली
बड़ी को और बड़ी है खाय
उसको और बड़ी ने खाय
बडकी और बड़ी ले जाए –
भुजनिया भुज बिना खा जाए|"[1]

नौटंकी के प्रमुख छंदों और सहायक छंदों के अलावा लोकगीतों का प्रयोग भी नौटंकी को अनोखा बना देता है| 'आला अफसर' में मुद्रा राक्षस जी ने नौटंकी के सभी परंपरागत गीतों और छंदों का उपयोग बड़ी कुशलता से किया है| भजन, कीर्तन, रसिया, बन्ना गीत आदि इसी क्रम में आते है| 'आला अफसर' से उदहारण है –

"(रसिया)
मारि गई महँगाई हो रामा बीच बजरिया
बाबू रोवे बबुआइन रोवें

[1] मुद्रा राक्षस, आला अफसर, पृ : 33

फाटि गई पतलुनियाँ हो रामा बीच बजरिया

नकली बेचें मिलाय दे गोबर

खालि खीच लै जाई हो रामा बीच बजरिया||”[1]

इन छंदों के बारे विजय बहादुर श्रीवास्तव जी लिखते हैं – “लावनी, छंद कलाग्ड्डा तथा सोहनी छंदों का प्रयोग दुःख, शोक व निराशा जैसी मनस्थितियों को प्रकट करने के लिए प्रयोग करते है, जहाँ किसी को कुछ समझाने बहकाने, बाध्य करने, जताने जैसे प्रसंगों में दादरा माड थियेटर व बहरकव्वाली छंदों का प्रयोग उपयुक्त होता है| वीरता प्रकट करने के लिए आल्हा अथवा वीर छंद का प्रयोग होता था|”[2]

‘बकरी’ नाटक में सक्सेना जी ने व्यंग्य की लेखनी के लिए नौटंकी के अन्य छंदों को भी प्रयुक्त किया है, जिसमें समवेत स्वर में गाये जाने वाले कुछ लोकछंदों को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता जो ‘बकरी’ नाटक में लोक शैली से न्यूनाधिक रूप में प्रभावित है| समूहगान के रूप में ‘कहरवा’ शैली का एक छंद इस में उल्लेखनीय है|

“समूहगान – कहरवा

बकरी मैया तेरे चरनन अरज करूँ

गाँधी बाबा तोरे चरनन अरज करूँ

---

[1] मुद्रा राक्षस, आला अफसर, पृ : 64

[2] विजय बहादुर श्रीवास्तव, नाटक के सौ बरस, पृ : 250

खेत न दाना

कूप न पानी

केकरे हुजूरे दरज करूँ

गाँधी बाबा तोरे चरनन अरज करूँ||[1]

सर्वेश्वर जी ने राष्ट्रीय गान का उपयोग बकरी नाटक में व्यंग्य रूप में प्रस्तुत किया है| कृष्णदत्त पालीवाल जी के अनुसार – "राष्ट्रीय गान तक को यह नाटक 'बकरी' माता के जय-जय गाने में बदलकर व्यंग्य करता है| 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' तथा 'रघुपति राघव राजाराम' को कवि ने सृजनात्मक कल्पना से एक नया सटीक एवं सार्थक अर्थ टोन दे दी है|"[2]

उदहारण – "डंडा गीत

डंडा ऊँचा रहे हमारा

सबसे प्यारा सबसे न्यारा

डंडा ऊँचा रहे हमारा|

सुख सुविधा सरसाने वाला

शक्ति सुधा बरसाने वाला

प्रभुता सत्ता का रखवारा

डंडा ऊँचा रहे हमारा"[3]

---

[1] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बकरी, पृ : 36

[2] कृष्णदत्त पालीवाल, बकरी, परिशिष्ट, पृ : 59

[3] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बकरी, पृ : 20

नौटंकी के गीतों में 'कव्वाली' का बड़ा ही महत्व है| 'बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग' नाटक से उदहारण है –

"कव्वाली

गायक मंडली

कटते गले है देखने को जा रहे हैं लोग

खूँ की दी में किसी तरह नहा रहे है लोग|

क्यों बात जरा सी न समझ पा रहे हैं लोग

है राह गलत फिर भी बढ़े जा रहे हैं लोग

कटते गले ....|"[1]

वर्तमान युग में फिल्मों के प्रभाव से नौटंकी में फ़िल्मी धुनों को भी बड़ी प्रमुखता मिली है| 'बजे ढिंढोरा उर्फ़ न का रंग' नाटक में इस प्रकार एक प्रयास हुआ है,

"जब नाटक किया तो डरना क्या

नाटक किया कोई चोरी नहीं की

हुंटिंग की परवा करना क्या|

जब नाटक किया तो............|"[2]

---

[1] अशोक मिश्र, बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून रंग, पृ : 80

[2] अशोक मिश्र, बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून रंग, पृ : 21

वर्तमान समाज में आए सब परिवर्तनों ने नौंटकी पर प्रभाव डाला है| इन सब परिवर्तनों के रहते हुए भी नौटंकी का प्रारंभ भेंटगायन से होता है| वही परंपरा आज भी चलती है|

गीत संगीत की यह प्रमुखता नौटंकी के वाद्य उपकरणों से भी संबंधित है| इसका मुख्य रूप नक्कारा वाद्य है| 'नक्कारा' नाम नौटंकी का पर्याय है| नक्कारा वादन से नौटंकी का न्योता सब दर्शकों को मिलता है| नक्कारे धुन सुनके ही दूर दूर से दर्शक एकत्र होते हैं| नक्कारे के अलावा 'हारमोनियम', ढोलक', 'तबला', सारंगी' आदि का उपयोग भी होता है|

गायकी प्रमुख होने के साथ नौटंकी में नृत्य का खूब प्रचार हुआ है| कथानक से संबंधित किसी प्रसंग का नृत्य व गायन के ज़रिए प्रारंभ करते हैं| स्त्री कलाकारों के आगमन से नृत्यमय आदायगी में एक झटके बाजी भी देख सकते हैं| नौटंकी के क्षेत्र में आज कल लोक नृत्य की प्रथा गौण होती जा रही है जहाँ फ़िल्मी धुनों के साथ नृत्य की झटके वाली कई नौटंकियों की जान बन गयी है| नौटंकी लोक शैली से निकटता रखने वाले नाटकों में लोकगीतों के साथ साथ लोकनृत्यों की योजना भी की गयी है| डॉ. लाल ने अपने दोनों नाटको में गीतों एवं नृत्यों की योजना बड़ी खूबी से की है| इस प्रकार नौटंकी शैली पर लिखे गये सभी नाटकों में गीत संगीत एवं नृत्य की योजना बिलकुल नौटंकी खेल की तरह ही की गयी है|

मंच एवं दृश्यविधान

लोकमंचों का अपना वैशिष्ट्य यह है कि वह सादगीपूर्ण होते है| लोक मंच आम आदमी के लिए आम आदमी के बीच खेला जाता है| नौटंकी का मंच साधारण होता है| तीनों ओर से खुला मंच उसके पीछे साधारण पर्दा लगाया जाता है| प्रारंभ में शामियाने के नीचे फर्श बिछाकर खेला जाता था और उसके चारों तरफ दर्शक बैठते थे| फिर मैदानों में तख्तों के ऊपर मंच बनाकर खेले जाते थे| पर्दों का प्रयोग भी हुआ करता था| श्रृंगार कक्ष मंच के समीप ही होता है किंतु कभी कभी व्यवस्था न होने पर मंच से दूर भी बनाया जाता है| श्रृंगार कक्ष दूर होने के कारण कलाकारों को तैयार होकर दर्शकगणों के बीच में से गुज़रकर मंच पर पहुँचना पड़ता था| लेकिन ऐसा करने में किसी भी प्रकार की हिचक नहीं होती थी|

नौटंकी शैली का मंचन मुक्ताकाशी है| इस परंपरा का निर्वाह नौटंकी शैली पर लिखे सभी नाटकों में हुआ है| नाटक का प्रथम अंक सादगीपूर्ण दृश्यों से निहित है| यहाँ पर केवल अभिनय क्षमता से ही काम चलाया जा सकता है| नाटक में आगे आने वाले सभी दृश्य जैसे – 'बकरी स्मारक निधि' वाला दृश्य, 'लोक सेवा सदन' वाला दृश्य और 'भोज एवं जुलुस' का दृश्य ये सब अभिनय क्षमता पर ही आधारित है| ये तीनों दृश्यों बिना किसी कठिनाई के खुले मंच पर खेल सकते हैं|

खुले मंच पर यह नाटक आसानी से मंचित कर सकते है| गाँव एवं शहर दोनों में यह नाटक बिना किसी तामझाम के खेला जा सकता है| बकरी के मंचन से संबंधित कृष्णदत्त पालीवाल लिखते है – "नाट्य संवेदना की ताज़गी और राजनीतिक व्यंग्य की मार के कारण बकरी स्कूल-कॉलेज, सड़क-चौराहों पर धूम मचाता रहा है| सच बात यह है कि इस नाटक ने हिन्दी नाटक और रंगमंच को नवीन ज़मीन दी है|"[1]

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के दोनों नाटक मुख्ताकाशी मंच पर खेल सकते हैं| चार अंकों में विभाजित सगुन पंछी नाटक में ज्यादा संकेत तो नहीं दिया है| सभी दृश्यों को पात्रों की अभिनय क्षमता पर छोड़ सकते हैं| कठिनाई उत्पन्न करने वाली दृश्यों की योजना नाटक में न के बराबर है|

एक सत्य हरिश्चन्द्र में सात दृश्य है| नाटक की प्रस्तावना में नाटककार ने खुद मंच के दृश्य बताए गए हैं| प्रस्तुत नाटक मुक्ताकाशी मंच की मांग करती है| नाटक में ऐसा कोई दृश्य नहीं है जिसके मंचन में दुविधा हो| सामान्यतः सभी दृश्य किसी भी प्रकार की साजसज्जा और पूर्व तैयारी की मांग नहीं करते| पहले के चारों दृश्यों को अभिनय और संवाद के द्वारा मंचित किया जा सकता है| बाज़ार वाला दृश्य पात्रों द्वारा बनाया जा सकता है|

[1] कृष्णदत्त पालिवाल, बकरी, परिशिष्ट

सातवें दृश्य में एक दृश्य ऐसा है जिसे मंचित करने में थोड़ी कठिनाई प्रतीत होती है| इस दृश्य को संवाद एवं गीत द्वारा बिम्ब रूप में दर्शोकों तक पहुँचा जा सकता है| ऐसे दर्शकों के मन में वह दृश्य अंकित हो जाएगा|

"रंगा – पुरुष वचन सुनके खुल गये मन के द्वार

आधी की आधी दई साडी रानी फार

बहाया गंग में रानी देय आशीष

छिप देख यह सब रहे नारद इंद्र – मुनीश"[1]

'आला अफसर' नाटक पूरी तरह नौटंकी मुक्ताकाशी मंच की मांग करता है| इसके दृश्यविधान में नाटककार ने ऐसी सुविधा रखी है कि संवादों के ज़रिए पूरे दृश्यों की झाँकी दर्शकों के मनपटल पर अंकित हो जाता है| नाटक के मंचन में किसी प्रकार की तामझाम की ज़रूरत नहीं है| कुछ दृश्य को महज दो तीन कुर्सियाँ लगाकर भी करवा सकते हैं| जैसे होटल, दफ्तर, घर आदि|

'बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग' नाटक में भी मुक्ताकाशी मंच ही लागू होगा| नाटक में कोई ऐसा दृश्य नहीं है जिसका मंचन परंपरा निर्वाह करने में सफल न हो| मुक्ताकाशी मंच परंपरा के लिए नाटक में कोई परिवर्तन नहीं करना है| पूरे नाटक का मंचन गाँव के चौपाल चबूतरे में ही हो सकता है| इस प्रकार हम देख सकते हैं कि मंच की व्यवस्था में सभी नाटकों में लोकनाट्य शैली की मुक्ताकाशी परंपरा का ही निर्वाह किया गया है|

---

[1] लक्ष्मीनारायण लाल, एक सत्य हरिश्चन्द्र, पृ : 76

संक्षेप में नौटंकी से प्रभावित नाटकों के शैलीगत विश्लेषण से यह पता चलता है कि सभी नाटकों में नौटंकी की शिल्पगत विशेषताएं बखूबी से निभायी गयी हैं|

नौटंकी का कथा क्षेत्र

नौटंकी का कथाक्षेत्र अत्यंत समृद्ध एवं व्यापक है| नौटंकी के कथानक में प्रेम कथाओं को प्रमुखता मिली है, किंतु इसमें पौराणिक, धार्मिक, सामाजिक एवं देशभक्तिपूर्ण कथानकों को भी स्थान मिला है| पौराणिक कथाओं में सत्यवादी हरिश्चन्द्र, रामायण, मोरध्वज, प्रह्लाद आदि आते हैं| ऐतिहासिक एवं देशभक्तिपूर्ण कथानकों में अमरसिंह राठौर, हकीकतराय, बलिया का शेर आदि आते है| प्रेम कथावों में देश विदेश की कथाओं को भी शामिल किया है जहाँ लैला मजनु, हीर रांझा, गुलबदन, स्याह पोश आदि पर भी मशहूर नौटंकियाँ बनी है|

इसके अलावा फ़िल्मी कहानियों पर भी नौटंकियाँ लिखी गई है| नौटंकी मंच पारसी मंच से अत्यधिक प्रभावित है| इसी तरह कई नाटकों का नौटंकी रूपांतरण भी खेला जाता था| इस प्रकार कथानक चाहे सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक व ऐतिहासिक रहे हो या फिर चरित्र निर्माण, देश-प्रेम व लोककथा आदि से संबंधित सभी का नौटंकी में स्वागत हुआ है| विजय बहादुर श्रीवास्तव के अनुसार – " यह मंच किसी रस विशेष का गुलाम नहीं रहा वैसे श्रृंगार (जिसमें संयोग वियोग दोनों होता है)| रस प्रधान नौटंकियाँ अधिक लिखी गई है,

लेकिन वीर व करुण रस से ओत-प्रोत नौटंकियों की भी कमी नहीं है|"[1] प्रस्तुत अध्याय में विश्लेषण के लिए चुने हुए नाटकों में नौटंकी शैली का निर्वाह हुआ है| ये नाटक कथ्य एवं रूप की दृष्टि से राजनैतिक एवं सामाजिक श्रेणी में आते है| दोनों संदर्भों की विषमताओं को उजागर किया गया है| 'बकरी' नाटक में राजनैतिक समस्याओं और उससे उपजी विषम परिस्थितियों का चित्रण अधिकांश हुआ है| चूँकि राजनीति समाज का ही अंग है अतः इस नाटक में सामाजिक समस्या को भी स्थान मिला है| 'सगुन' पंछी' नाटक सामाजिक नाटक की श्रेणी में आता है| 'आला अफसर', बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग' 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' आदि नाटक राजनैतिक – सामाजिक इन दोनों श्रेणियों में आते है|

'बकरी' में जेल से निकले तीन आदमी खदर पहनकर नेता बन जाते है| फिर तीनों मिलकर एक गरीब औरत की बकरी हड़प लेते हैं| बाद में उसे गाँधी जी की बकरी का बंशज बताकर तरह तरह के हथकंडे खड़ा करते हैं और आर्थिक शोषण करते हैं| अशिक्षित अनपढ़ गाँववालों पर किए गये इन अत्याचारों के खिलाफ युवक नामक एक पात्र के ज़रीये मुक्ति की आशा का प्रसार करते है|

राजनीति में नेता जो है कपट व्यवस्था का प्रतिनिधि है| उनके नीचे भ्रष्टाचार का बागडोर संभालनेवाली कई श्रेणियाँ हैं जिनमे प्रथम श्रेणी में नौकर शाही अफसर लोग है जो शासक वर्ग की पार्टी की फिकर न करते हुए भ्रष्टाचार में उनका साथ देते हैं और खुद अपनी स्वार्थ पूर्ति करते हैं|

---

[1] श्री विजय बहादुर श्रीवास्तव, नाटक के सौ बरस, पृ : 252

अफसरशाही नौकरशाही लोगों के शासक वर्ग के साथ गठबंधन की कहानी है ‘आला अफसर’ नाटक| प्रस्तुत नाटक में चितरपुर नामक कस्बे का चेयरमान और उनके नीचे कोतवाल, हेडमास्टर, पोस्टमास्टर, हाकिम आदि ऊँचे ऊँचे पद पर नौकरी करने वाले अफसरों की भ्रष्टाचार की सही पहचान नाटक में है|

राजनीति के क्षेत्र में होनेवाले अनैतिक गठबंधन का सूक्षम चित्रण ‘बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग’ नाटक में मिलता है| वर्तमान व्यवस्था में अधिकारी वर्ग गिरगिट की तरह रंग बदलते हैं| प्रस्तुत नाटक में निम्नवर्ग पर अधिकारीवर्ग के अत्याचार एवं शोषण का खुला चिट्ठा है| अधिकारी वर्ग अपने स्वार्थ के अनुरूप ईमानदारी की परिभाषा बदलते हैं| नाटक में पाँच ईमानदार लोगों की खोज में निकले शासक वर्ग के सामने सत्ता से लाभ प्राप्ति की आशा में नेता, सेठ, कोतवाल, पूजारी सब ईमानदारी की प्रतिमूर्ति बन जाते हैं| आखिर में जब बलि चढ़ के खून देने की बात आती है वहाँ ईमानदारी की परिभाषा बदलकर गाँव के सच्चे ईमानदार लोग आ जाते हैं, उनकी बलि होती है| इस प्रकार ईमानदार फँसते हैं बेइमान बच जाते हैं|

जाति पर केंद्रित भारतीय राजनीति का चित्रण करके दलित चेतना जगाने वाला व् अन्याय के विरुद्ध मिलकर आवाज़ उठाने का आह्वान करने वाला नाटक है ‘एक सत्य हरिश्चन्द्र’|

धर्म जनता के लिए अफीम है| धर्म व्यक्ति और सामाजिक जीवन को निश्चेतन कर देता है| उसे इस कदर निष्क्रिय बना डालता है कि वह सब कुछ देख सुन कर भी गूँगा बना रह जाता है| चाह कर भी विरोध नहीं कर पाता| धर्म द्वारा निष्क्रिय, निस्तेज, प्रश्नहीन बना देने के इस षड्यंत्र का पर्दाफाश डॉ. लाल ने अपने एक सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में किया है|

धर्म का रूप तब बदलता है जब वह सत्ता से जुड़ जाता है| प्रस्तुत नाटक में देवधर सवर्णों का प्रतिनिधि है और गाँव के पुराने जमींदार है| लौका शूद्रों की तरफ से सत्यनारायण कथा पारायण का एलान करता है| इसी कारण शूद्र सवर्णों के बीच संघर्ष होता है| लौका अपने साथियों को प्रतिहिंसा करने से रोकता है| वह अपने यहाँ सत्यनारायण की कथा के रूप में सत्य हरिश्चन्द्र का नाटक खेलता है| देवधर भी इंद्र की भूमिका करता है| वह दंगा करके लौका को दबाना चाहता है लेकिन सफल नहीं हो पाता| अंत में राजा हरिश्चन्द्र सत्य की परीक्षा में विजयी होकर इंद्र को सत्य की परीक्षा देने के लिए चुनौती देता है| यह चुनौती शोषित लोगों की जागृति का चिह्न है|

सामाजिक नाटकों में गिने जाने वाले 'सगुन पंछी' नाटक में डॉ. लाल ने तोता-मैना की लोक कथा को लेकर स्त्री पुरुष के संबंधों, समस्याओं और मानसिक कुंठाओं को व्यक्त करने का सफल प्रयास किया है| सगुन पंछी 1960 में लिखे गये नाटक तोता-मैना का ही पुनर्लिखित रूप है| तोता मैना का विवाद स्त्री पुरुष का शाश्वत विवाद है| स्त्री पुरुष की परिणति जब पति-पत्नी के रूप में

होती है तो दोनों को आपसी कलह, झगडा, तनाव, अविश्वास एवं विरोध के बावजूद अलग नहीं किया जा सकता| डॉ. लाल ने नाटक के आरंभ में निवेदन में लिखा है – “प्रकृति और पुरुष तो सनातन है| ये दो शक्तियाँ हैं| एक जल है तो दूसरा ताप है|एक धरती है तो दूसरा सूरज है| बिना एक के दुसरे का अस्तित्व नहीं| पर दोनों सर्वदा दो है| दोनों का दो बने रहना ही उनकी अपनी अस्मिता है| तभी इन दोनों के योग से तीसरे का सृजन और विकास होगा|”[1]

कथ्यगत विश्लेषण

समकालीन रचनाकारों ने अपनी मौलिक सृजनशीलता द्वारा मानव जीवन के तमाम पहलुओं को युगीन परिप्रेक्ष में शब्द बद्ध किया है| उनकी चौकन्नी दृष्टि सामयिक सच्चाई पर टिकी है| इसलिए वे समसामयिक, राजीनीतिक, सामाजिक गतिविधियों का मूल्यांकन करते हैं और उसके प्रति अपनी क्रिया-प्रतिक्रिया भी करते है|

स्वतंत्रता के पश्चात देश के राजनीतिक मंच पर समय-समय पर व्यापक पैमाने पर उथल पुथल हुए हैं जिनसे देशवासियों के जीवन पर गहरा असर पड़ा है| विगत साठ वर्षों में देश की अगुवाई कई बार बदली है| लेकिन तमाम सत्ताधीशों की मनोवृत्ति अत्यंत स्वार्थी रही है| उनकी कुर्सी-लिप्सा और भ्रष्टाचार मनोवृत्ति ने चाटुकारी संस्कृति भाई-भतीजावाद, दमन-आतंक एवं विसंगत संसद-प्रणाली का ही पोषण किया है| इन सबका सीधा असर लोक

---

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, सगुन पंछी, निवेदन से

जीवन पर पड़ा है| लोकतंत्र के नाम पर चालू दमनतन्त्रकारी सांप्रदायिक व्यवस्था से आज जनता खीझी हुई है|

समसामयिक नाटककारों ने भ्रष्ट और विकृत राजनीतिक सामाजिक परिदृश्य को अपने नाटकों में प्रस्तुत किया है| इस दृष्टि से बकरी, एक सत्य हरिश्चन्द्र, बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग, आला अफसर आदि नाटक उल्लेखनीय हैं| इन नाटकों में देश की शासन व्यवस्था धर्म, राजनीति और व्यवस्था के शोषण तंत्र आदि पर कई सवाल उठाये गए हैं|

राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार

भारत में भ्रष्टाचार सिर्फ एक शब्द नहीं रह गया है| यह शब्दकोश के पन्नों से बाहर निकलकर यथार्थ जीवन में सक्रिय हो चुका है| भ्रष्टाचार आर्थिक, राजनीतिक और औद्योगिक सभी क्षेत्रों में व्याप्त है| भ्रष्टाचार एक परंपरा बन चुका है| कोई उससे मुक्त नहीं|

मूल्यहीन भ्रष्ट नेता वर्ग :- वर्तमान संदर्भ में नेता का चरित्र ही व्यंग्य का आलम बन गया है| समकालीन नाटकों में नेता के चरित्र की पड़ताल बड़ी सूक्ष्मता से की गयी है| बकरी नाटक में कर्मवीर, दुर्जनसिंह पहले डाकू थे| बाद में संसद सदस्य है|

"दुर्जनसिंह सिपाही से कहता है – "अब हम डाकू नहीं शरीफ आदमी है"[1]

भ्रष्ट खोखले आदर्श :- भारतीय नेताओं की उपदेश विख्यात है| जन प्रतिनिधि जन कल्याण के कार्यों में विमुख है| भाषणों में खोखले आदर्शों को गले लगाए हुए हैं| ये नेता जनता, संस्कृति, जीवन इत्यादि बड़े बड़े आदर्शों की बातें करते हैं| पर वे जीवन के यथार्थ धरातल पर स्वप्रतिष्ठा, यश, मान, प्रतिभा के भूखे हैं|

'बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून के रंग' नाटक में नेता का भाषण इस प्रकार है|

"तो मैं कह रहा था|

(चौबोला)

ईमानदारी के पौधे में लगवाऊँगा

और हवा को भी ईमान सिखलाऊंगा|

योजनाओं से मैं हूँ घिरा आजकल

नहरें ईमानदारी की खुदवाँऊगा||

चुनाव और चुनावी हथकंडे:- लोकतंत्र में चुनाव का बड़ा महत्व है| चुनाव के समय झूठे वादे झूठे भाषण देते हैं| 'बकरी' नाटक में कर्मवीर इस प्रकार आश्वासन देता है –

"कर्मवीर – चुने जाते ही हम तुम्हारे गाँव तक की सड़क पक्की करा देंगे| सड़क पर पानी नहीं भरेगा|"[1]

[1] सर्वेश्वर याल सक्सेना, बकरी, पृ : 16

चुनाव में कुछ ऐसे हैं जो नम्रता से जनता से मतदान की बिनती करते हैं पर दूसरी ओर गुंडागर्दी, धमकी, घूस आदि देकर मत प्राप्त करते हैं| जब सीधी तरह से मतदाता मत देने के लिए तैयार नहीं होते तो ये नेता गुंडागर्दी का सहारा लेते हैं| बकरी नाटक में नेता दुर्जन सिपाही को आदेश देता है –

"अब तुम लोग तैयारी करो और दीवान जी, गाँव वालों को बता कि यदि कर्मवीर को वोट नहीं दिया तो................ खैर तुम समझदार हो दीवान जी| सारे हथकंडे तुम जानते ही हो|[2]

चुनाव जीतने के बाद नेता नहीं चाहता कि सोई हुई जनता जागे और अपने अधिकार के लिए लड़े| बल्कि वे तो सोचते है कि यह जनता इसी तरह लेटे रहे ताकि ये अपना उल्लु सीधा करते रहे| एक सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में नेता देवधर कहता है

"देवधर :- क्रांति करेंगें| उसके लिए बड़ी ताकत चाहिए| पूरी व्यवस्था चाहिए| वह काम मेरी पार्टी कर सकती है| मैं कर सकता हूँ|"[3]

नेता बनने के बाद लोग अपने आपको ईश्वर समझने लगते हैं| शक्ति का स्वरूप मानते हैं|

---

[1] अशोक मिश्र, बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग, पृ : 51

[2] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बकरी, पृ : 43

[3] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, एक सत्य हरिश्चन्द्र, पृ : 19

"देवधर :- तू जानता नहीं मैं क्या हूँ? शायद तुझे मेरी ताकत का पता नहीं है? मेरा इलाका है यह|"[1]

नेता का सबसे बड़ा गुण है झूठ बोलना| नेता अगर झूठ न बोले तो वह जनता की आँखों में नहीं बसता| जो नेता ईमानदारी से अपना बर्ताव करता है वह अधिक दिन राजनीति में टिक नहीं सकता| फिर वह झूठी ईमानदारी का भाषण न करते| बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग' नाटक में नेता का भाषण

"नेता : प्यारे भाईयों और बहनों और आदरणीय ढिढोरची जी महाराज| जैसा कि आप लोग जानते हैं मैं एक ईमानदार परिवार में बड़ी ईमादाती से पैदा हुआ हूँ| ईमानदारी से पैदा होने का गुण हमारे परिवार की परंपरा में प्राचीन समय से प्रचलित है|"[2]

नेता लोग आम आदमी को तुच्छ मानते हैं और सबके सामने उसे जनता जनार्दन कह कर सब कुछ उन्हीं पर सौपता है| एक सत्य हरिश्चन्द्र नाटक में देवधर का कहना है

"हाँ तो किसने कहा अब हमें देवधर बाबू की ज़रूरत नहीं है? देवधर बाबू को किसने बनाया|

गपोले : भगवान ने बनाया

---

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, एक सत्य हरिश्चन्द्र, पृ : 50

[2] अशोक मिश्र, बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग, पृ : 50

देवधर : नहीं जनता ने बनाया| सबने बनाया| तभी तो जनता को जनार्दन कहा गया है|”[1]

बकरी नाटक में भी इसका उदहारण मिलता है –

“औरत : हम आपकी परजा है सरकार|

दुर्जन : परजा नहीं, लोकतंत्र में जनता जनार्दन कहो जनता| क्या चाहती है तू?”[2]

आज राजनीति में स्वार्थी प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई है कि राजनीति देश सेवा के लिए न होकर स्वार्थ साधने के लिए है| ‘बकरी’ नाटक का नट व्यंग्यपूर्ण गीत गाकर यही बात कहता है|

“सेवा यहाँ पर स्वार्थ है

ओ स्वार्थ ही परमार्थ है
कोई किसी से है न कम
है देश के फूटे करम|”[3]

देश में राजनीतिक एकता नहीं रही| राजनीतिक अनेक दलों में विभक्त हो गए हैं और सभी दल स्वार्थ साधने में निमग्न है|

‘बकरी’ नाटक में नट गाता है –

---

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, एक सत्य हरिश्चन्द्र, पृ : 17

[2] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बकरी, पृ : 23

[3] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बकरी, पृ : 23

"पाँच देव सम पाँच दल

लगी ढोंग की रेस

जिनके कारण हो गया

देश आज परदेस|"[1]

प्रशासकीय भ्रष्टाचार :- युगीन समाज व राजनीति अफसरशाही के हाथों नाचने को विवश है| कार्यालयों में स्थिति यह है कि कोई भी कार्य रिश्वत या सिफारिश के अभाव में पूरा हो पाना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है| 'आला अफसर' नाटक में ऐसे ही नौकरशाही वर्ग का भ्रष्टाचार दिखाया है| चेयरमैन जो हर गलत कामों के लिए रिश्वत लेते हैं| संवाद इस प्रकार है|

"चोखे : वही बात आगे बोलूँ? चंदू हज्जाम सरकारी ज़मीन पर अपनी दूकान खोलने के लिए आपको दो सौ रुपया दे रहा था और आप उससे पाँच सौ..........."[2]

सरकार परिवर्तित होने पर भी प्रशासकीय वर्ग का परिवर्तित न होना नौकरशाही और राजनीतिज्ञों के पारस्परिक स्वार्थ का एक ठोस यथार्थ बन जाना, न्याय और सहानुभूति के नाम पर निर्धनों का शोषण आदि स्थितियाँ प्रस्तुत नाटक के गीतों में वर्णित है| आला अफसर नाटक में भ्रष्ट नौकरशाही की आलोचना करते हुए कुछ विसंगतियों को सप्रमाण उभारा गया है, -

"इन्ही हाथों में सत्ता है, इन्ही हाथों में है शासन|

---

[1] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बकरी, पृ : 11

[2] मुद्रा राक्षस, आला अफसर, पृ : 29

बड़ी मोटी है तोंद इनकी, बड़ा ऊँचा है सिंहासन

हमारी खाल की जूती इन्हीं के पाँव की रौनक

हम अपनी हड्डियाँ घिसकर लगा आयें उन्हें चन्दन”[1]

आज के प्रशासनिक वर्ग की भ्रष्ट व्यवस्था में अनेक जनकल्याण व विकास योजनायें हैं जिनके आयोजन ये लोग खुद के फायदे के लिए करते है| ‘आला अफसर’ नाटक का हाकिम और हेडमास्टर इसका उदहारण है|

“हाकिम : मुझसे कहते है क्या ओ चेयरमान जी
हेडमास्टर की करनी को देख ज़रा|
सात कमरे थे कस्बे के इस्कूल के
पाँच कमरे में इसने है भूसा भरा|
हेडमास्टर : बात हाकिम की सुनिए न बिलकुल कभी
अपने साले को ठेके है इसने दिए
जो बना था कुआँ अब गढ़ा भी नहीं
मुर्गीखाने है दफ्तर के कमरे किए||”[2]

वर्तमान शासन व्यवस्था में पुलिस की भूमिका : वर्तमान शासन व्यवस्था में अव्यवस्था का बोलबाला है| पुलिस विभाग तो भ्रष्टाचार का गढ़ माना जाता है| आम जनता के रक्षक मानी जाने वाली पुलिस आज भक्षक बनी है| भ्रष्टाचार के

[1] मुद्रा राक्षस, आला अफसर, पृ : 33
[2] मुद्रा राक्षस, आला अफसर, पृ : 27

कारण यह नेता मंत्री, पैसे वालों के तलवे चाट रही है| आम आदमी किसी नेता के खिलाफ बोलता है तो पुलिए उसे धमकाता और मारता पीटता है, -

ग्रामीण एक : नदियाँ पुल को बहा ले गई सड़के हुई बेकार

नेता : दोष नहीं है इसमें मेरा सुनो ढिंढोरची नन्द|

ग्रामीण एक : नाली दुखियारे के मुँह-सी भला हुए क्यों बन?

नेता : अन एजुकेटेड, इल्लिट्रेसी| कोतवाल साहब............

(कोतवाल ग्रामीण एक को मारता है| भगा देता है|)"[1]

पुलिस आम जनता का शोषण करता है, उन पर अत्याचार करता है| झूठे इल्जाम लगाके गरीबों से पैसे वसूल करता है| 'बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून के रंग' नाटक में पुलिस इसका उदहारण है|

"वृद्ध : गाँजा नहीं है, हुजुर तम्बाकू है, तम्बाकू|
कोतवाल : झूठ बोलता है साले|
(एक तमाचा मारता है| वह गिर जाता है| दूसरे आदमी को पकड़ता है|)
क्यों बे| तूने दूध में पानी मिलाना बंद नहीं किया|
दिखा साले कितना कमाई किया है पानी बेच कर|
(उसकी जेब से पैसे निकाल लेता है|)"[2]

---

[1] अशोक मिश्र, बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग, पृ : 50
[2] अशोक मिश्र, बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग, पृ : 28

इस समाज में मंत्रि, नेता से लेकर ऊँचे तबके से सभी समाज सेवा के नाम से जनता का शोषण ही करते हैं| आम आदमी पर होने वाले शोषण के विविध रूप इन नाटकों में देख सकते हैं|

अनपढ़ गरीब लोगों का शोषण : भारत के सत्तर प्रतिशत लोग अनपढ़ एवं गरीब है| इन लोगों का शोषण बहुत आसानी से हो सकता है| आज के राजनीतिज्ञ जनता को बेवकूफ समझते हैं| उनकी जिंदगी से नेता को कोई लेना देना नहीं है| ‘बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग’ नाटक के पात्र ‘गधा’ और ‘बकरी’ नाटक में ‘बकरी’ ये दोनों शोषण से पीड़ित आम आदमी का प्रतीक है|

गाँव की जनता ज़मीदार और बड़े व्यक्ति के बीच दबी हुई है| बकरी नाटक में निर्धन औरत विपत्ति की बकरी को नेता लोग हड़प लेता है और गाँधी जी का वंशज घोषित कर जनता के कल्याण के लिए बकरी शांति प्रतिष्ठान, बकरी संस्थान, बकरी सेवा संघ आदि संस्थाओं की स्थापना कर भोली भाली जनता को भरकस लूटते हैं| बकरी नाटक में ग्रामीण आदमी कहता है –

“बचवा, अब हम पढ़े लिखे नाहि न| पढ़वाइया के संगों साथ नहि न, ऊ ठहरे बड़वार, हम ठहरे छोटवार, छोटन के कहना माने के पड़त है| कहना न माने तो ठीक नाहि|”[1]

---

[1] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बकरी, पृ : 32

'बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग' नाटक में सेठ, और पटवारी जैसे बड़े लोगों से अनपढ़ जनता का शोषण होते दिखाया है| सेठ लोग अंगूठा लगवाकर उधार देता है बाद में चक्रवृद्धि ब्याज का हिसाब लिखकर अनपढ़ बढ़ई का सब कुछ वसूल करता है|

धार्मिक शोषण : भारत धर्म निरपेक्ष देश है| भारत में अनेक धर्म हैं| संविधान किसी एक धर्म को विशेष महत्व नहीं देता| अनपढ़ धर्म भीरु लोगों का शोषण 'बकरी' नाटक में दर्शाया है| 'बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग नाटक में अनपढ़ ढोंगी पंडित द्वारा औरतों का शोषण दिखाया है जो धर्म के नाम पर पतियों को धमकाता है|

"दरजी : पंडित जी, कुछ बचने का उपाय है?

पंडित : वही आदिकालीन उपाय, दान दक्षिणा कर|

घरवाली के हाथ रोज रात को हमारे मंदिर में दिए जलवा|"[1]

बरसों से चली आ रही जाती व्यवस्था पर भी नाटक में उल्लेख मिले है|

"पंडित : अपनी चिंता कीजिए पटवारी जी| हम न गिरे थे, न गिरे है| न गिरेंगे| वेद पुराण ज़माने की उठान है| कोई आज की नहीं|"[2]

---

[1] अशोक मिश्र, बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग, पृ : 43

[2] अशोक मिश्र, बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग, पृ : 41

धर्म का आवरण लेकर अपनाया गया एक सर्वनाश है सांप्रदायिकता| सांप्रदायिक दंगे का चित्रण 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक में हम देख सकते हैं|

"देवधर : इन इन गाँवों में ब्राह्मणों को भड़का दो चमार शूद्रों के खिलाफ| सत्य नारायण की कथा लौका कहने जा रहा है| आग लगाने के लिए इतना काफी है|"[1]

दलित शोषण : दलित लोगों पर हो रहे शोषणों का चित्रण नाटककारों ने इन नाटकों में किया है| बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग' नाटक में ढिंढोरची द्वारा नीच जाति के मोची को गाली देता है|

"नीच कल मूहे| तुझ पे बिजली गिरे| तुझ पर कहर फूटे| तेरा नाश हो| तेरा मुर्दा निकले साले चमार|"[2]

शूद्र लोग बरसों से अशिक्षित है और उनको शिक्षा से दूर रखा गया है यह प्रथा आज भी चली आ रही है| एक सत्य हरिश्चन्द्र में देवधर –

देवधर : ......भूख, शूद्र अज्ञान यह तीन धर्म साधना के बहुत बड़े विधान है| शतपथ ब्राह्मण और मनोवृत्ति में कहा है| अब्राह्मण और शूद्र ब्रह्मा विद्या के अधिकारी नहीं – शूद्र, को वेद के पढ़ने सुनने की मनाही है| शूद्र शमशान समान

---

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, एक सत्य हरिश्चन्द्र, पृ : 24
[2] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, एक सत्य हरिश्चन्द्र, पृ : 23

है| यदि वो धर्म ग्रंथ पढ़ते सुनते पाया तो उसकी जबान काट देनी चाहिए| उसके कान को पिघले शीशे और लाख से भर देना चाहिए|”[1]

आज भी दलितों की स्थिति ऐसी ही है जो बरसों से चली आ रही है| आला अफसर नाटक में ‘धोबन’ द्वारा पद्यात्मक रूप से इस का वर्णन है|

“धोबन : मुल्क में हरिजनों का चलाया जिकर
बाबा गाँधी ने हम सबको जीवन दिया
हम हज़ारों बरस से यहाँ दास है
जानवर से भी बदतर हमें है किया|
आज भी गन्दगी आपकी ढो रहे
आपके पैर में जूतियाँ बन पड़े|
जीना हमको जमीं पर भी दूभर हुआ
आसमां पर महल आपके है खड़े||”[2]

स्त्री का शोषण : ‘एक सत्य हरिश्चन्द्र’ नाटक में नारी शोषण का चित्रण हुआ है| देवधर मिस पद्मा का इस्तेमाल ‘लौका’ को बदनाम करने के लिए करता है|

“मिस पद्मा : थेंक्यु| (स्वगत) हर कोई इसके लिए एक चीज़ है इनके इस्तेमाल की चीज़| आखिर सब नाटक ही तो है इनके लिए| मेरे लिए वही जीवन है|”[3]

---

[1] अशोक मिश्र, बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग, पृ : 28
[2] मुद्रा राक्षस, आला अफसर, पृ : 63
[3] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, एक सत्य हरिश्चन्द्र, पृ : 30

पतुरिया जैसे बाज़ारू औरत का चित्रण है साथ ही शैव्या जैसे चरित्रवान औरत को किस प्रकार बाज़ारू होना पड़ता है इसका भी चित्रण है| दलित औरत धोबन का शोषण ‘आला अफसर’ नाटक में दिखाया है|

“धोबन : काम हाकिम की कोठी पे करती हूँ मैं
एक दिन कपडे धोने का मैं थी गई|
हाथ इज्ज़त पे डाला चेयरमैन ने
बात है कुछ न इसके लिए ये नई||
असफल जब ये हो गया लिया कलाई थाम|
कोड़े लगवाए लगा चोरी का इल्ज़ाम||”[1]

‘बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग’ नाटक में भी ढोंगी पंडित द्वारा औरतों का शोषण होता है| इस तरह कई प्रकार से शोषित नारी का चित्रण नाटको में मिलता है|

आम आदमी का विद्रोह : आम जनता अपने अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह करते हुए दिखाया गया है| ‘बकरी’ नाटक का ‘एक सत्य हरिश्चन्द्र’ नाटक का लौका आदि बिद्रोह के प्रतिक हैं| ‘बकरी’ नाटक के अंत में युवक का कहना है|

“बहुत हो चुका अब हमारी है बारी

बदल के रहेंगे ये दुनिया तुम्हारी|”[2]

---

[1] मुद्रा राक्षस, आला अफसर, पृ : 63

[2] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बकरी, पृ : 57

अत्याचार के खिलाफ जागृत होने वाले गाँव वालों का चित्रण 'एक सत्य हरिश्चन्द्र' में भी है|

"गाँव के लोग : अब कोई नहीं इंद्र, कोई नहीं होगा, विश्वामित्र, सब होंगे हरिश्चन्द्र|"[1]

इस प्रकार कई प्रकार से शोषित आम आदमी और उसका विद्रोह दिखाना नाटकों का मूल उद्देश्य रहा है|

निष्कर्ष

नौटंकी उत्तर प्रदेश का लोकनाट्य रूप है| ख्याल गायिकी से उत्पन्न होने के कारण इसमें संगीत की प्रमुखता है| सारी बातें चौबोला, दोहा, बहरतबील आदि छंदों में कही जाती है और अभिनय गायन के दौरान ही और कहीं कहीं अलग से किया जाता है जिसे ड्रामा कहते हैं|

आधुनिक भारतीय रंगमंच में जब लोकनाट्यों का इस्तेमाल की शुरुआत हुई तब नौटंकी का प्रभाव भी रंग लाने लगा| नौटंकी से प्रभावित नाटकों में 'एक सत्य हरिश्चन्द्र', बकरी, बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग, आला अफसर, सगुन पंछी आदि प्रमुख हैं| इन पाँच नाटकों में प्रत्यक्ष रूप से नौटंकी की शैलीगत विशेषताएँ उभर कर आयी हैं| इन नाटकों के कथ्य में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सामाजिक समस्याओं का चित्रण हुआ है| इन नाटकों में समाज के उन

---

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, एक सत्य हरिश्चन्द्र, पृ : 78

निम्न तबकों की विडम्बनाएँ आई हैं जो अब तक उपेक्षित रह गयी थी| नाटककारों ने समाज की इन्ही विसंगतियों को अपने नाटक का विषय बनाया है| इस लोकनाट्य से वर्तमान अर्थव्यवस्था पर उन्होंने प्रहार किया है| वैसे अपने उद्देश्य को जनसामान्य तक पहुँचाने में उन्होंने सफलता भी प्राप्त की है|

****

चौथा अध्याय

लीला शैली पर केंद्रित हिन्दी नाटक

रासलीला और रामलीला हिन्दी के लीलापरक लोकनाट्य हैं| रामलीला में हमें चरित नायक राम की तथा रासलीला में कृष्ण के जीवन की झलकियाँ देखने को मिलती हैं| भारतीय कलाओं में इन दोनों चरित्रों का व्यापक प्रभाव हैं| भक्तिकाल में प्रचलित लीलानाटकों में ये अवतारी पुरुष माने गये हैं किंतु दोनों के मूल आधार अलग अलग है|

लीला की उत्पत्ति

लीला की ऊर्जा का उत्स तत्कालीन भक्ति आन्दोलन है| पूर्व मधयकाल में उपासना के प्रकारों में काव्य लेखन, गायन, नृत्य आदि को आदरपूर्वक स्वीकार किया गया था| सगुण और निर्गुण दोनों ही पध्दतियों के काव्यास्वाद भक्ति का एक प्रमुख एवं मान्य तरीका था| सगुण भक्त कवियों ने काव्य रचना के माध्यम से भक्ति को समृध्द किया| उन्होंने मुख्य आधार के रूप में चार तत्वों को स्वीकार किया – नाम, रूप, लीला, धाम| इनमें 'लीला' और 'धाम' के वेश ने सगुण काव्य को लोकरंजन बना दिया| 'ब्रह्म की चार्या' को 'लीला' कहते है और 'धाम' रंगभूमि जहाँ लीला घटित होती है| लीला तत्व की अवधारणा पर श्री अनुपम आनंद जी ने लिखा है "लीला तत्व की अवधारणा महाकवि सूरदास के गुरु महाप्रभु वल्लभाचार्य के शुध्दाव्दैत के आधार पर स्थापित पुष्टिमार्ग की अवधारणा में निहित है| भागवत के 'पोषणं तदनुग्रहः' के आधार पर महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भगवतादनुग्रह के अर्थ में ही पुष्टि शब्द का प्रयोग किया है| इसी

प्रेम भक्ति के आधार पर अंशरूप जीवअंशी ब्राह्मण के साथ जो संबंध स्थापित करता है वही ब्रह्मा संबंध है|”[1]

रासलीला – उद्भव

कृष्ण की जीवनपरक लीलाओं का मंचित रूप है ‘रासलीला’| प्राचीन रंग परम्परा में धार्मिक मंच के रूप में इसका महत्वपूर्ण स्थान है| डॉ. वशिष्ट नारायण त्रिपाठी रासलीला के संबंध में कहते हैं “रासलीला का संबंध कृष्णचरित से है| कृष्ण का चरित्र कवियों तथा लोकनायकों में सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है| महाभारतकार ने कृष्ण के अनासक्त किंतु इतिहास निर्माता चरित्र को ‘लीला पुरुष’ के रूप में ही विकसित किया है| जयदेव, विद्यापति, सूर और रसखान जैसे कवियों के यहाँ भी कृष्ण पुरुषोत्तम है| उनका चरित्र लोकरंजक है| समूची व्रजभूमि उनकी लीला स्थली है|”[2]

ब्रजभूमि को रासलीला के महाकेंद्र के रूप में विकसित करने में भक्तियुग के कृष्णभक्ति आचार्यों और कवियों की महत्वपूर्ण भूमिका है| सांस्कृतिक जनजागरण की दृष्टि से सोलहवीं शताब्दी बिलकूल महत्वपूर्ण हैं| विदेशी आक्रमणों से त्रस्त सम्पूर्ण भारतीय समाज भक्ति की ओर अग्रसर हो गया था| शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, विष्णुस्वामी, बल्लभाचार्य आदि आचार्यों द्वारा अनेक सम्प्रदायों की स्थापना की गयी जिनके

---

[1] अनुपम आनन्द - रासलीला विमर्श - नाटक के सौ बरस - पृ : 220

[2] डॉ. वशिष्ट नारायण त्रिपाठी - भारतीय लोकनाट्य - पृ : 46

ज़रिये उन को इष्ट स्वरूप की पूजा उपासना आदि करने का अवसर मिल गया| भक्त एवं भगवान के बीच एक सीधा संबंध स्थापित हो गया|

रास के प्रथम आयोजन का श्रेय वल्लभाचार्य जी को दिया जाता है| इन्होंने सर्वप्रथम रास को एक वृत्ताकार नृत्य के रूप में आयोजित किया था| श्री वल्लभाचार्य जी के इस प्रयत्न में उनकी प्रेरणा रही स्वामी हरिदास जी| वृन्दावन को रास के एक महाकेंद्र के रूप में विकसित करने का श्रेय हित हरिवंश जी को भी है| यहाँ डॉ. वशिष्ट नारायण त्रिपाठी का कथन धांतव्य है, “आचार्य हित हरिवंश ने भी ‘करहला’ में विकसित हो रही ‘रास परम्परा’ को ही आत्मसात किया| हित हरिवंश जी द्वारा पुनर्गठित रासलीला में करहला की रास लीला की विशिष्ठतायें तो समाहित थी ही, उन्होंने इसमें संगीत के विकास पर ज्यादा ध्यान दिया| उन्होंने एक रास मंडल का भी निर्माण किया जिसकी नित्यप्रति वृन्दावन के ‘चैनाघाट’ पर प्रस्तुतियाँ होती थी| इस प्रकार हित हरिवंश जी ने नियमित रासलीला की एक सुदृढ़ परम्परा का सूत्रपात किया|”[1]

रासलीलानुकरण के प्रवर्तक के रूप में भक्तवर नारायण भट्ट का नाम उल्लेखनीय है| सन 1546 ई में श्री नारायण भट्ट जी ब्रज आये| भट्ट जी ने ‘करहला’ के निकट ऊँचे गाँव में निवास किया तथा ‘रास’ को नाट्य रूप में संगठित करने के लिए अपनी एक लीला मंडली भी बनाई| नृत्य संगीतात्मक रास शैली में कुछ अनुकरणात्मक शैली का होना स्वाभाविक था| श्री नारायण

[1] डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी - भारतीय लोकनाट्य - पृ : 51

भट्ट के प्रयत्नों से गद्यात्मक संवादों से युक्त अभिनय भी हुआ| श्री भट्ट ने 'व्रजभूमि' के विभिन्न स्थानों की कृष्णलीला भूमि के रूप में स्थापना की तथा अभिनेताओं और नर्तकों की प्रशिक्षित भी किया| भट्ट जी ने अपने प्रयत्नों से 'बरसाने' गाँव को रासलीला का केन्द्र बनाया| इस प्रकार रासलीला के क्षेत्र में भट्ट जी ने महत्वपूर्ण योगदान किया|

श्री डॉ. वशिष्ट नारायण त्रिपाठी की इस पर टिप्पणी है "वस्तुत: भट्ट जी ने 'रास' को रासलीला के रूप में प्रतिष्ठित किया| कहा यह जाता है कि हित हरिवंश जी द्वारा आरंभ रास में उनके बाद वह गति नहीं रह गयी थी| इस प्रकार व्रजभूमि में प्रायः मंद पड़ती हुई रास रसधारा को फिर से प्राणवत्ता और प्रयास प्रदान करने का श्रेय भी श्री नारायण भट्ट को दिया जाता है|"[1]

इस प्रकार नारायण भट्ट और उनके पूर्वजों के अनवरत प्रयत्नों से व्रज के 'करहला' 'बनारस' तथा 'वृन्दावन' आदि क्षेत्र रास के महत्वपूर्ण केन्द्रों के रूप में उभरते गए| व्रजभूमि में रासलीला रूप में प्रतिष्ठित इस लीला नाट्य ने उड़ीसा के संत शंकरदेव और चैतन्य महाप्रभु जैसे कृष्ण भक्तों के द्वारा 'अंकिया नाट' और 'जात्रा' के रूप में एक अन्य रूपांतरण प्राप्त किया| भक्ति आन्दोलन के मंद पड़ने के बाद वृन्दावन और मथुरा में रासलीला भी क्षीण होने लगी| इस प्रकार 'रास का समूचा विकास सोलहवीं से अठारहवीं शताब्दी तक होता रहा| आधुनिक युग में अनेक रासमंडलियों द्वारा रासलीलाएँ होती रहती हैं|

[1] डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी - भारतीय लोकनाट्य - पृ : 51

रामलीला

भारत की लोकधर्मी नाट्य परम्परा में लीला नाटकों का महत्वपूर्ण स्थान है| 'रामलीला' और 'रासलीला' लीलापरक लोकनाट्य है| भक्तिकाल में लीलानाटकों की एक लम्बी परम्परा प्रचलित रही है| रामलीला की मंचीय प्रस्तुति की परम्परा भले ही सुदीर्घ हो पर इसके आज के प्रचलित स्वरूप का श्रेय गोस्वामी तुलसीदास जी को जाता है| गोस्वामी जी ने रामचरित मानस की प्रचार-प्रसार के लिए रामलीला की शुरुआत की थी साथ ही रामकथा को एक नयी दिशा दी|

रामलीला की उत्पत्ति के बीज अनेक स्थानों में बिखरे पड़े हैं| अंजलि श्रीवास्तव जी लिखती है "तुलसी की रामलीला के पूर्व भी रामकथा का गायन और उनके चरित्र के नाट्य स्वरूप भारतीय समाज में मौजूद थे| वाल्मीकि रामायण में लवकुश रामकथा का गायन करते है| महाभारत में तथा हरिवंश पुराण में राम के चरित्र को लेकर नाटक का उल्लेख है| भवभूति का 'उत्तर-रामचरित' नाटक तो मंच के लिए ही लिखा गया था| तमिल रामायण, रंगनाथ रामायण (तेलुगु), रामचरित (मलयालम), राम गीतगोविन्द, गीता राघव और संगीत रघुनन्दन आदि ग्रंथों से रामचरित की व्यापकता का अंदाज होता है|"[1]

रामकथा लोकनाट्य के रूप में जनजीवन में बहुत पहले से ही प्रचलित थी| रामकथा से संबंधित नाट्यरूप हनुमान नाटक, जैन परम्परा का रामबास,

[1] अंजलि श्रीवास्तव - रामलीला - नाटक के सौ बरस - पृ : 226

गुजरात का लोकनाट्य भवाई, महाराष्ट्र का ललित असल प्रथा, बंगाल का जात्रा, सन्देश रासक प्रथा, गुरुनानक आशादीवाल आदि हम देख सकते हैं|

वर्तमान में देशभर में रामलीलाओं की जो प्रस्तुति होती है उसकी आधार शिला गोस्वामी तुलसीदास जी है| उन्होंने 'रामचरित मानस' की रचना करते हुए रामकथा के मंचन का भी सूत्रपात किया| इस दृष्टि से काशी में होने वाली रामलीलाओं की अनिवार्य प्रेरणा गोस्वामी तुलसीदास जी है| काशी की रामलीला की विशिष्टता यह है कि यह निश्चित रूप से अश्विन के महीने में खेली जाती है| इसका आयोजन एवं प्रस्तुति भिन्न भिन्न जगहों पर होती है| इसलिए ही कथा प्रसंगों के अनुरूप उस जगह का नाम भी बदल गया है जैसे 'लंका' पंचवटी' 'अवध'|

रामनगर की रामलीला अपनी विशेषताओं के लिए प्रसिद्ध है| यहाँ की रामलीला लगभग एक महीने तक चलती है| यह रामलीला इस अर्थ में विशिष्ट है कि यह आज भी अपने पारम्परिक साधन और शिल्प में प्रस्तुत होती है| इनमें ध्वनि, प्रकाश, वेश रचना आदि सब पूर्व रुढियों पर आधारित होते हैं| यहाँ तक कि इस रामलीला में ध्वनि विस्तारक यंत्रों का प्रयोग तक नहीं होता किंतु प्रेक्षकों तक संवादों को पहुँचाना किसी भी प्रकार बाधित नहीं होता| अयोध्या की रामलीला रामानंदी संतों के द्वारा संचालित होती थी और उसका स्वरूप शास्त्रीय था| स्त्री पात्रों एवं विदूषक का निषेध किया गया था क्योंकि इसमें धार्मिक भावना पर अधिक बल देता था|

रामलीला के मंचन-प्रदर्शन का प्रमुख क्षेत्र उत्तर प्रदेश और बिहार है| किंतु अंतर्वस्तु और नाट्य-शिल्प के कुछ अन्तर के साथ यह राजस्थान, मध्य प्रदेश और कुमाऊ आदि क्षेत्रों में भी खेली जाती है| विशेष रूप से कुमाऊ की रामलीला की कुछ विशेषतायें हैं| इस प्रकार समूचे भारतीय भू-खण्ड पर रामकथा की प्रस्तुति का अपना वैविध्य निर्मित होता है|

इस प्रकार कई स्थानों की रामलीलाएँ अपनी विशिष्टता के कारण पहचानी जाती हैं| जैसे-जैसे रामलीला का प्रसार विभिन्न क्षेत्रों में हुआ वैसे वैसे वहाँ के लोगों ने अपने अनुकूल उसमें बहुत सी चीज़ें जोड़ दी| कवियों द्वारा संवादों के लिए कवितायें जोड़ी गयीं, और कुछ क्षेत्रों में वहाँ के लोकगीतों को भी जोड़ा गया| इस प्रकार प्रसंगानुकूल जोड़ना तोड़ना होता गया| इस विषय पर डॉ. जगदीशचन्द्र माथुर का कहना है, "वर्तमान काल में पारम्परिक रामलीलाओं के प्रदर्शनात्मक अंगों को अधिक प्रतिष्ठा मिल रही है| रावण का पुतला किस रामलीला में सबसे ऊँचा है और कौन वी. आई. पी. उसे अग्नि से प्रज्वलित करता है इस बात की फिक्र दिल्ली की रामलीलाओं के व्यवस्थापकों को ज्यादा होने लगी है| आगरे की रामलीला में रामचंद्र की बारात-यात्रा की विशेष शोहरत है| लेकिन इस शोर शराबे में तुलसीदास की अपनी वाणी अनसुनी रह जाती है|"[1]

उनके कहने का तात्पर्य है रामलीला की मूल भावना बदल चुकी है| उसमें आस्था की कमी होती जा रही है| आज कल अनेक रामलीला मंडलियाँ

[1] डॉ. जगदीश चन्द्र माथुर, दशरथ नंदन, भूमिका से

इस क्षेत्र में काम कर रही हैं| उनके द्वारा खासकर दशहरा के अवसर पर लीला का आयोजन भी होता है| यदि रामलीला मंडलियाँ तुलसीदास जी के शब्दों को सामान्य जन तक पहँचाने के विचार से इसे अपना ले तो रामलीला सफल हो जायेगी|

लीला नाटकों का महत्व

रामलीला और रासलीला जैसे धार्मिक नाट्य रूपों को मध्य कालीन भारत में हिन्दु जाति की आत्मप्रतिष्ठा के माध्यम के रूप में देखा गया था| ईश्वर की अवतारी रूप की कल्पना और उसके द्वारा समस्त अन्याय और जड़ता का विरोध ही लीला नाट्यों का मूल भाव था| इतिहास में भक्ति आन्दोलन को प्रथम नवजागरण के रूप में मान्यता मिल चुकी है| लेकिन ईश्वर के सगुण स्वरूप और कार्यों को प्रस्तुत करने वाले लीला नाट्यों ने नाटक को दरबारों और सामंतों की छत्र छाया से निकालकर सीधे जनता से जोड़ा| इन नाट्य रूपों ने लोकभाषा और लोककथा रूपों को गतिशील बनाकर जनता की सांस्कृतिक चेतना को उर्वर बनाया और समूचे भारतीय भूखंड में एकता और अखंडता के विलक्षण बीज बोये| यह जनता की कथा थी और जनता के लिए थी| संत कवियों ने इसका समायोजन किया और उनकी दृष्टि में यह जनता की आत्मिक उन्नति थी| मध्यकाल में लोकभाषा और लोककला रूपों के व्यापक उभार और विकास के पीछे इन्हीं संत कवियों द्वारा उद्घोषित सांस्कृतिक चेतना की भूमिका थी| लीला नाट्य हिन्दू मुस्लिम जनता में समान रूप से लोकप्रिय थे| रामलीला और

रासलीला जैसे नाट्य रूप विष्णु के अवतारों को सम्पूर्ण आदर्श और अनुकरणीय चरित्र के रूप में विकसित करते आये हैं| लीला नाट्य राम और कृष्ण की कथाओं को समग्रतः विकसित करते हैं|

वस्तुतः रामायण और महाभारत भारतीय संस्कृति और कला को व्यापक रूप में प्रभावित करने वाले महाकाव्य हैं| रामकथा में युग-युग को मूल्यगत आधार देने की ऐसी अजस्त्र शक्ति है कि प्रत्येक युग का रचनाकार उसकी ओर आकृष्ट होता है| राककथा के महत्व के बारे में डॉ. वशिष्ट नारायण त्रिपाठी का कहना है "इस गाथा की इतनी व्यापक स्वीकृती का एक कारण लोकचित्त में इसकी गहरी पैठ है| इसने प्रत्येक देश काल में मनुष्य की नैतिकता और मूल्य चेतना को अनुशासित किया है| इसके भीतर समस्या और संस्कृति के समूचे विकास को एक सही मानवीय आयाम देने की संभावना हर युग में रही है| यही कारण है कि इस कथा ने प्रत्येक युग के मौलिक सर्जकों को अपनी ओर आकृष्ट किया है|"[1] कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि लीला नाट्यों का एकमात्र उद्देश्य प्रेक्षकों को लोकोत्तर आनंद प्रदान करना था और है|

हिन्दी नाटकों में लीला नाटकों की भूमिका

लीला नाट्य मुख्य रूप से वैष्णव भक्ति की अन्तर्धारा के रूप में विकसित हुए है| लीला मंडलियों द्वारा नाट्य रूपों की विकास यात्रा होती रही| साथ ही भारत के दक्षिण और पूर्वी देशों में इस प्रकार के धार्मिक कथानक पर लीलाएँ

---

[1] डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी, भारतीय लोकनाट्य, पृ : 229

होती रही हैं| यक्षगान, कूटियाट्टम, भागव्तमेलम, दशावतार, भवाई, जात्रा, अंकिया नाट, आदि इस श्रेणी में आते है| यहाँ तक कि रामकथा की प्रस्तुति पारसी थियेटर, नौटंकी आदि लोकनाट्य शैलियों में भी होती रही| रामकथा को रंगमंच तक विकसित करने में तुलसी जी की प्रेरणा और प्रयत्न तो शुरू से रहे हैं| इसके अतिरिक्त कवि प्राणचन्द के 'रामायण महानाटक', हनुमन्नाटक, महाराज विश्वनाथ सिंह के आनंद रघुनन्दन आदि नाट्य कृतियों का भी पर्याप्त प्रेरणा रही है| इस प्रकार रास का समूचा विकास भी सोलहवीं से अठारहीं शताब्दी तक होता रहा| बाद में भक्ति आन्दोलन के मंद पड़ने का असर इस पर भी पड़ा| इस बीच भारतेंदु ने लोकनाट्यों की इस समूची परम्परा की क्षमता और प्रभाव को सबसे आगे बढ़ कर पहचाना| एक तरह से उन्होंने ही भारतीय लोकविधाओं का पूरा दोहन किया| उनके सामने इस लीला नाट्यों के अतिरिक्त अन्य लोकनाट्य रूपों में रंग संगठन की महत्वपूर्ण संभावनाएँ भी मौजूद थी| इसलिए रामकथा के पाठ और अभिनय को उन्होंने एक नयी सज्जा प्रदान की|

एक सचेत रंगकर्मी की तरह उन्होंने रामलीला नाट्य की गंभीरता से जोड़ा तथा इसके लिए समुचित रंग निर्देशों का विचार किया भारतेंदु ने 'रासलीला' की संभावनाओं का भी बहुत सुन्दर उपयोग किया| भारतेंदु ने 'रासलीला' के शिल्प के भीतर ही अपनी 'चन्द्रावली नाटिका' की रचना की| भारतेंदु और उनके मंडल के साहित्यकार एवं संस्कृतकर्मी इस लीला नाट्यों के प्रदर्शन से भी गहरे जुड़े हुए थे|

रामलीला बालकाण्ड नाटक (सन् 1882) रामलीला अयोध्याकाण्ड नाटक (सन् 1883) और रामलीला सुंदरकांड नाटक (सन् 1889) इन नाटकों में विकसित रामकथा की मूल प्रेरणा तुलसीकृत 'रामचरितमानस' हैं| सन् 1567 में प्रकाशित शंकर देव के 'रामविजय' नामक नाटक का उल्लेख भी मिलता है| पं. नारायण प्रसाद बेताब का 'रामायण' नामक नाटक भी उल्लेखनीय है| पारसी थियेटर के अंतर्गत यह नाटक अत्यंत लोकप्रिय था| पारसी थियेटर शैली में अतिनाटकीयता का संयोजन था| आज भी लीला नाट्यों की प्रस्तुति में एक प्रकार की अतिनाटकीयता का समन्वय हम देख सकते है| रामकथा पर आधारित नाटकों की बड़ी संख्या है और सभी नाटक अनेक बार मंचित भी हुए है किंतु इन प्रदर्शनों को लीला नाट्य से अलग माना जाता है| इस लीलानाट्यों में अवतरित होते हुए भी रंगमंच और जीवन के बीच एक भावनापूर्ण संबंध निर्मित करने में ये सक्षम हुए हैं|

हिन्दी लीला नाटककार और रचनाएँ

आधुनिक युग में संचार माध्यमों के विभिन्न रूपों के विकास, पश्चिमीकरण आदि के कारण लोकनाट्यों का प्रचलन तथा स्वीकृति शिथिल हो गए| इस स्थिति को सुधारने वास्ते रामलीला मंच के सांस्कृतिक आधार को नए परिवेश से पुनः प्रस्तुत करने की कोशिश कुछ रंगर्मियों द्वारा हुई| इतना ही नहीं कुछ लेखकों ने परंपरा से ग्रहण करके कुछ लोकनाट्यों का शैलीगत प्रयोग भी किया है| इनमें से कुछ लेखक है जगदीश चन्द्र माथुर, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल,

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना और कुसुम कुमार आदि| इनके नाटकों में प्रत्यक्ष रूप से लीला नाटकों का प्रभाव पड़ा है| इनकी रचनायें लीला नाट्यों पर आधारित है| सर्वेश्वर दयाल सक्सेना जी का 'होरी धूम मच्यो री' नाटक रासलीला पर आधारित है| रामलीला पर आधारित प्रमुख नाटकों में जगदीश चन्द्र माथुर का दशरथ नंदन, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल का 'राम की लड़ाई' और कुसुम कुमार की 'रावण लीला' आदि आते हैं|

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना हिन्दी के सशक्त नाटककार हैं| उनके तीनों नाटक बकरी, लड़ाई और अब गरीबी हटाओं, में अपने क्रांतिकारी और सत्ताविरोधी भाव की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हुई है| इन नाटकों की तरह ज्यादा ख्याति प्राप्त नहीं है रासलीला पर आधारित 'होरी धूम मच्यो री'| लोकनाट्यों के प्रति सक्सेना का झुकाव 'बकरी' नाटक में देख सकते है| रासलीला पर आधारित 'होरी धूम मच्यो री' राधा कृष्ण के प्रेम-विरह आदि भावों को खुलकर खींचा गया है|

रामलीला पर केंद्रित माथुर जी का नाटक है दशरथ नंदन| पुराण, मिथक, इतिहास आदि पर केंद्रित नाटक लिखने वाले माथुर जी की रामलीला पर केंद्रित नाटक है दशरथ नंदन| रामचरित मानस को सामान्य जनता तक पहूँचाने की कोशिश के रूप में भी माथुर जी के दशरथ नंदन का विशेष महत्व है| आधुनिक हिन्दी नाटककारों में डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल सर्वाधिक जागरूक एवं प्रयोगशील रचनाकार हैं| इन्होंने वस्तु एवं शिल्प, दोनों दृष्टियों से अपने नाटकों

में अनेक सार्थक प्रयोग किए हैं| लोकनाट्य की अन्य शैलियों पर आधारित इनके कई नाटक हैं| रामलीला शैली पर लिखित 'राम की लड़ाई' में नाटककार ने स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजनीतिक जीवन तथा समाज के विभिन्न पहलुओं को सशक्त ढंग से उजागर करने का प्रयास किया है|

समकालीन महिला रंगकर्मियों में कुसुम जी का नाम उल्लेखनीय है| कुसुम जी रंगमंच की सीमाओं और संभावनाओं से खूब परिचित है| इसलिए उनकी सभी नाट्यरचनायें रंगमंच पर सफल भी निकली है| देसी रामायण पर आधारित 'रावण लीला' नाटक दो जगह पर चलती दो कहानियों पर आधारित है| धार्मिक कथा के साथ साथ लोक कलाकारों की निजी जिन्दगी की कथा भी चलती है| लीला नाट्य शैली पर आधारित इन चार नाटकों में किस प्रकार शैलीगत विशेषताएँ परिलक्षित हुई हैं इसका विश्लेषणात्मक अध्ययन हम आगे करेंगे|

रासलीला – शैलीगत विश्लेषण

पात्र

रासलीला के पात्रों को स्वरूप कहा जाता है| स्वरूप शब्द में भक्ति की भावना रहती है| श्रीकृष्ण की लीला किसी लौकिक पात्र की लीला न होकर परब्रह्म के साकार स्वरूप की कला है| अतः यह लीला पात्र भी 'स्व' के रूप में जाना जाता है| रासलीला के अंतर्गत अभिनेनाओं और समाजियों की एक

समवेत प्रस्तुति होती है| ये समाजी रास के संयोजक सूत्रधार और निर्देशक होते हैं| समाजी वर्ग का प्रमुख 'स्वामी' कहा जाता है| इसके संदर्भ में अनुपम आनंद जी लिखते हैं – "रास की रूढ़ अवधारणा है कि स्वामी बृजवासी ब्राह्मण होगा| वह रास मण्डली का व्यवस्थापक भी होता है| प्रदर्शन में स्वामी की केन्द्रीय भूमिका रहती है| इसी के आदेश व संकेत पर लीला स्वरूप लीला कथा को प्रस्तुत करते हैं| उसे स्थान विरोध पर मोड़ देते है| छोटा-बड़ा करते है| उसमें गान व संवादों का नियोजन करते है| कहीं कहीं स्वामी कथा भाग को बोलकर अथवा गीत भाग को गाकर लीला कथा को आगे बढ़ाता है| लीलानुकरण में रासमंडली का स्वामी ही लीला विशेष का निर्देशक, संचालक, व संयोजक होता है|"[1]

रास मंच के इन लीला पात्रों की दैनिक जीवनचर्या को भगवदीय बनाए रखने के लिए प्राचीनकाल में योग, उपासना, प्राणायाम आदि का विधान करते थे| आज कल ये सब शिथिल हो गया परंतु लोगों के मन में पात्रों के प्रति आस्था का भाव बरकरार है| 'होरी धूम मच्यो री' नाटक कृष्ण लीला पर रचा गया है| रासलीला एक धार्मिक मंच होने से इसके पात्र भी रासलीला के अनुरूप ही है| इसमें कृष्ण-राधा प्रमुख पात्र है उनकी आरती से ही रासलीला शुरू होती है| प्रस्तुत नाटक में आरती होने का कोई संकेत नहीं दिया है| नाटक में अन्य पात्र हैं ललिता और विशाखा जो राधा की सखियाँ हैं| 'मनसुखा' पात्र की भूमिका

---

[1] अनुपम आनंद, रासलीला विमर्श - नाटक के सौ बरस, पृ : 221

रासलीला की खासियत बढाती है और प्रस्तुत नाटक में मनसुखा कृष्ण के सखा के रूप में है| इस प्रकार 'होरी धूम मच्यौ री' नाटक में सभी पात्र रासलीला के अनुरूप ही है|

वेशभूषा

रासलीला के पात्रों की वेशभूषा एवं श्रृंगार सज्जा भी वृज संस्कारों के अनुरूप रासमंच की आवश्यकताओं पर निश्चित की गई जान पड़ती है| रासलीला के प्रमुख पात्र पायजामा पहनते हैं| उसके ऊपर रंगबिरंगी कटि-काछनी बाँधते हैं, अंग में चोली धारण करते हैं| उनके कन्धों पर पीताम्बर रहता है| कमर में सुन्दर फेंटा बंधा रहता है| हाथ में बंशी, पीठ पर लहराती बनावटी चोटी, सिर पर मुकुट, बृजरतन, कलंगी और तुर्रा उनके प्रमुख श्रृंगार हैं| इसके अलावा बहुत सारे आभूषण भी पहनते हैं| जैसे नाक पर 'बसर' और बुलाक धारण, कानों में मकराकृत कुंडल, हाथ में बाजूबंद, गले में मोती की माला आदि| स्त्री पात्रों की वेशभूषा में लहंगा और उसके ऊपर आधी साडी ओढ़ी जाती है| नीचे सभी चूड़ीदार, पायजामा धारण करते हैं| राधा जी की सजावट कुछ अलग होती है| उनके मस्तक पर विशेष रूप से चन्द्रिका पहनाई जाती है| सखियों की वेशभूषा में बंदनी, भृकुटी, बाजूबंद, पहुँची, कुण्डल, बुलाक और नथुनी का प्रयोग करते हैं| सभी लीला पात्रों के मुख पर चन्दन से विशेष प्रकार की चित्रकारी की जाती है| काजल से इनकी भंगिमाए तैयार करती है| रासलीला में बुजुर्ग पात्रों की वेशभूषा में रंगबिरंगी बारह बंदियाँ, पाग, दुपट्टा, धोती, फेटा

आदि का उपयोग होता है| आवश्यकतानुसार सफ़ेद ढाढी, मूंछ, हाथ में लकुर आदि का भी प्रयोग करते हैं| प्रमुख पात्र मनसुखा कृष्ण सखा, विदूषक की वेशभूषा में हास्य की निर्मिती के लिए कुछ न कुछ अलग कारीगरी होगी जिससे हँसी मज़ाक होती रहती है| लीला पात्रों की मुख सज्जा चन्दन चूर्ण से होती है| होली आदि की लीलाओं में रंगबिरंगे अबीर व गुलाल का प्रयोग भी रास की प्राचीन परंपरा का अंग है|

'होरी धूम मच्यो री' नाटक में कथानक और पात्रों के अनुसार वेशभूषा तैयार की जाती है| रासलीला की परंपरा को नाटक में कायम रखा है| 'होली खेलने' पर आधारित प्रस्तुत लीला में गुलाल व अबीर का प्रयोग बार बार होते हुए नाटक में दर्शाया है| प्रस्तुत नाटक में दो जगह पर नाटककार ने पात्रों की वेशभूषा पर संकेत दिया है| राधा जी की वेशभूषा का वर्णन इस प्रकार है – "राधा जी घाघरे के घेरे को समेट कछौटी बना लेती है और चुनरी कंधे से ला कमर पर कर वह बाँध लेती है|"[1] प्रस्तुत नाटक में सभी पात्रों की वेशभूषा रासलीला के समकक्ष है|

गीत संगीत

रासलीला में संगीत का महत्वपूर्ण स्थान है| संगीत के बिना रास की परिकल्पना नहीं की जा सकती| लीला साहित्य का आधार ही छंद विधान है| इन लीलाओं में ध्रुपद, धमाल, ठुमरी आदि विशिष्ट गायक से संपन्न रचनाओं का

[1] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, होरी धूम मच्योरी, पृ : 16

उपयोग किया जाता है| रासलीला में भक्ति साहित्य के प्रमुख छंद कवित्त, सवैया, दोहा, सोरठा, चौपाई और पद रचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान है| दोहा और रोला के सहयोग से निर्मित भक्त कवियों के पदों को भी रासमंच पर स्थान है| आजकल रैखता, लावनी और गजल का भी प्रयोग होने लगा है| छंद वैविध्य की दृष्टि से रास साहित्य का एक विपुल छंद भण्डार है| रास की इस संकीर्तन प्रणाली में लीला पात्र और लीला दर्शक एकरस हो जाते हैं| रासमंच में स्थान व समय परिवर्तन की सूचना देने के लिए और कभी कभी देशकाल की सूचना देने के लिए भी गायन का प्रयोग करते हैं| 'होरी धूम मच्यो री' नाटक में गीत संगीत का काफी प्रयोग हुआ है| प्रस्तुत नाटक का संवाद पद्यात्मक है| इस लिए ही ज्यादातर छंदों का प्रयोग नाटक में हुआ है| राधा और ललिता में हुई बातचीत इस प्रकार है|

"(छन्द) –

बोलती न काहे ऐरी? पूछे बिना बोलौ कहा'
पूछती हौ कहा भई भेद अधिकाई है?'
कहें पद्माकर सुमारग के आये गये'
सांची कहू मों सो कहां आजू गयी आयी है?'
गयी-आयी हौ सांवरे के पास, कौन काज?'
तेरे काज ल्यावन सु तेरी ही दुहाई है'
काहे ते न ल्याई फिर मोहन विहारी जू को?'

कैसे बाको ल्याहू, जैसे बाको मन ल्याई है"[1]

रासमंच पर ऋतुओं की मादकता, वातावरण की मनोहारिता आदि की उपस्थिति करने के लिए संगीत की स्वरलहरियाँ पर्याय मानी जाती हैं| ऐसा एक प्रयोग होरी धूम मच्यो री नाटक में हम देख सकते है –

"कहै पद्माकर परगन में पौन में
पानन में पिक में पलासन पंगत है
द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में
देखो दीप-दीपन में दीवट दिगंत है
बीथिन में व्रज में नवेलिन में वेलिन में
बनन में बागन में बगरो वसंत है|"[2]

नाटक में त्रिताल और चौचर प्रयोग हुआ है| त्रिताल के प्रयोग में सखी विशाखा और बाकी सखियों के बीच के संवाद मुखरित हैं,

" (त्रिताल)

जल जमुना भरण कैसे जाऊँ आज|
मची धूम बजत ढप-मृदंग बीन
खेले नंद को लाल होरी ब्रज में आज
मुख मीजे भल रोरी अंग देत झकझोरी

---

[1] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, होरी धूम मच्योरी, पृ : 11
[2] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, होरी धूम मच्योरी, पृ : 10

गहि गखा लगाए मूँह चूमे बरजोरी

बिंदा श्याम घेर लीन्हो सखिन आज”[1] –

प्रस्तुत नाटक में रासशैली के छंदों का प्रयोग नाटककार ने बीच बीच में किया है|

वाद्य और नृत्य

‘रासलीला’ नृत्य, गीत और संगीत प्रधान नाट्य है तथा इसमें इन विधाओं का विलक्षण वैविध्य भी दिखाई देता है| रासलीला का मूल रूप मंडलाकार नृत्य से शुरू होता है| इस परंपरागत नृत्य शैली के पीछे आभीरों में प्रचलित ‘हल्लीस नृत्य’ की भूमिका मानी जाती है| इसके पीछे प्रचलित कथा का उल्लेख डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी जी ने लिखा है, “वैदिक युग में आर्यों और आभीरों के परस्पर संघर्ष के उल्लेख मिलते हैं| ‘आभीर’ एक वीर जाती थी जिसका मुख्य कर्म पशुपालन था तथा यह यमुना के किनारे ब्रज भूमि में बसी हुई थी| अपनी शूरवीरता के बल पर इस जाति ने क्रमशः राजनैतिक प्रभुत्व भी प्राप्त किया, ऐसा उल्लेख मिलता है| श्रीकृष्ण का इस आभीर जाति से संबंध था|”[2]

यह भी मानना है कि हल्लीसक नृत्य का मूल भाव ‘वीर पूजाभाव’ पर आधारित है| इसमें एक वीर पुरुष का अनेक स्त्रियों द्वारा पूजा करना, साथ में

[1] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, होरी धूम मच्योरी, पृ : 11

[2] डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी, भारतीय लोकनाट्य, पृ : 50

नृत्य करना आदि होता है| यह नृत्य पुरुष को महानायक के रूप में प्रस्तुत करता था तथा युवा स्त्रियों के समूह द्वारा वह अपनी किसी विशेष शूरता के लिए सम्मानित होता था| अनुमान किया जाता है कि स्वयं श्रीकृष्ण का भी आभीर कन्याओं ने इसी भाव से महत्व दिया होगा तथा उनके साथ जुड़ कर यह नृत्य क्रमशः रास नृत्य के रूप में परिवर्तित होता गया होगा| रासलीला में रास नृत्य बहुत ही स्वाभाविक है और इसकी अनिवार्यता भी है|

वाद्य संगीत के बिना नृत्य अधूरा है| रासलीला में वाद्य संगीत परंपरा से चली आ रही है| इस के पारंपरिक वाद्यों में मुख्य रूप से पखावज, सारंगी, झांझ आदि शामिल थे| रासलीला में बाँसुरी एक प्रमुख वाद्य है| पारंपरिक वाद्यों के अलावा मृदंग, हारमोनियम, तबला, आदि का प्रयोग भी आजकल हो रहा है| वाद्य वादकों को रासलीला में मुख्य स्थान मिलते थे| वे लोग 'समाजी' में शामिल होते थे| इन वाद्यों के द्वारा एक अद्भुत वातावरण की सृष्टि ये लोग भरते थे| 'होरी धूम मच्यो री' नाटक में वाद्य संगीत और नृत्य का प्रयोग जगह जगह पर हुआ है| प्रथम दृश्य में ही इसका संकेत मिलता है,

"प्रथम दृश्य

(उल्लासमय मादक संगीत| डफ मृदंग आदि वाद्य बज रहे हैं| गोपों का एक दल नाचता हुआ मंच पर आता है| वे भी आपस में होली खेलते हैं| थोड़ी देर बाद मंच के दूसरी ओर से गोपियों का एक दल नाचता हुआ आता है| वे भी आपस में होली खेलती हैं| इधर गोपियों का दल ज्यों ही आता है गोप दल मंच

से नाचता हुआ प्रस्थान कर जाता है फिर आता है| गोप-गोपियों का दल मिलकर नाचता और होरी खेलता है|)"[1]

मंच विधान

'रासलीला' का मंच प्रेक्षकों के सम्मुख और थोडा उठा हुआ होता है| पृष्ठभाग में प्रायः एक परदा होता है| पात्रों का प्रवेश परदे के पीछे से होता है| यह एक मुक्ताकाशी रंगमंच होता है| रासलीला में लीलापात्रों के मंडलाकार खड़े होने वाले स्थान अथवा मंच को रास मंडल कहा जाता है| इसके एक ओर सीढ़ी-नुमा एक सिंहासन बनाया जाता है जिस पर लीला प्रदर्शन के समय ऊपरी भाग पर श्रीकृष्ण विराजमान होते है| सिंहासन के सामने का कुछ भू-भाग छोड़कर रासमंडल पर तीन ओर दर्शक लोग बैठते हैं| बीच के भाग में लीला पात्र रासलीलाएँ संपन्न करते हैं| स्थान की सुलभता और दर्शकों की आवश्यकता के अनुसार रासलीला कही भी खेला जा सकता है| घर के प्रांगण, मंदिर के आँगन, हवेली की छत, यमुना के तट आदि इसके लिए उदाहरण हैं|

रासलीला के आरंभिक मंडलाकार संगीतात्मक नृत्य की परंपरा ही उसके अभिनयात्मक रूप के 'नित्यरास' के रूप में प्रयुक्त हुई| यह परंपरा आज भी किञ्चित भिन्नता या परिवर्तन के साथ विभिन्न रासमंडलियों में चली आ रही है तथा इसे प्रायः रासलीला के पूर्वरंग के रूप में प्रस्तुत किया जाता है| इसके बाद लीला मण्डली के प्रधान कृष्ण की वंदना प्रस्तुत करते हैं| इसके उपरांत अन्य

---

[1] सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, होरी धूम मच्योरी, पृ : 9

गायक भी कृष्ण भक्ति के पदों का गायन करते हैं| इसी क्रम में आरती होती है तथा राधा कृष्ण की युगल छवि को झाँकी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है| आरती के बाद सखियाँ इस युगल छवि का प्रणाम करते हैं तथा 'रास' के लिए पधारने के लिए प्रार्थना करती हैं| इस निवेदन को स्वीकार कर कृष्ण रासस्थल में पधारते है| साथ ही राधा को भी बुलाता है दोनों के पधारने से गोपियों संग रासभूमि में नृत्य गीत की शुरुवात होती है| इस के बाद राधा कृष्ण पुनः सिंहासनारूढ़ होते हैं| इसके पश्चात लीला शुरू होती है|

रासलीला में भगवान कृष्ण के जीवन की घटनाओं के साथ साथ कृष्ण भक्तों के जीवन चरित को भी स्थान दिया गया है| सर्वप्रथक रास मंच पर कृष्ण के साथ-साथ उध्दव प्रकरण को विशेष महत्व के साथ प्रस्तुत किया जाता था| बाद में 'सुदामा कथा' भी इसमें जुड़ गयी है| इस प्रकार रासलीलाओं की नाट्यवस्तु प्रायः पुराणों की प्रसिद्ध कथाओं और भक्त कवियों के लीलागान आदि पर आधारित हो गयी| इन लीलाओं का एक मात्र उद्देश्य प्रेक्षकों को लोकोत्तर आनंद प्रदान करना था| प्रसिद्ध नाटक 'होरी धूम मच्यो री' का मूल उद्देश्य भी इससे भिन्न नहीं है| प्रस्तुत नाटक के कृष्ण और राधा के प्रेम में मुग्ध होना, नृत्य गीत के साथ होली खेलना आदि दृश्य दर्शकों को आनंद प्रदान करने वाले हैं| भक्तों के मन में भगवान हमेशा निवास करते हैं| इस परम सत्य का ज्ञान दर्शकों तक पहुँचाने में नाटक सक्षम हुआ है|

रामलीला – शैलीगत विश्लेषण

पात्र

रामलीला के पात्र कथानुसार धार्मिक होते हैं| सूत्रधार के रूप में 'व्यास' इसका संचालन करता है| इनके हाथ में परंपरा से चली आयी हुई एक 'स्क्रिप्ट' रहती है जिसके बाहर न तो संवाद जा सकते हैं और न ही कोई क्रिया विशेष पात्रों का चयन आम नाटकों की तरह होता है| पहले कहीं कहीं यह रुढी थी की राम, लक्ष्मण और सीता आदि के लिए कम उम्र के ब्राह्मण बच्चों को ही चुना जाता था| स्त्री एवं पुरुष पात्रों की भूमिका निभाने वाले पात्रों के स्वरूप एवं आचरण पर ध्यान दिया जाता है| उनमें ईश्वरीय पात्रों की कल्पना साकार करने की कोशिश की जाती है| इसलिए चुने हुए पात्रों को कुछ संयम बरतना भी पड़ता है| रामलीला में कभी कभी 'विदूषक' की भूमिका भी होती हैं जो व्यंग्य पूर्ण अभिनय से दर्शकों का मनोरंजन करता है| रामलीला में पात्रों जैसी प्रमुखता झांकियों को भी है| राम लक्ष्मण, राम सीता आदि झाँकियाँ लोगों में भक्ति भावना पैदा करती हैं|

दशरथ नंदन, राम की लड़ाई, रावण लीला आदि नाटक रामकथा के कथ्य को लेकर रचे गए हैं| ये तीनों नाटक धार्मिक कथा पर आधारित हैं साथ ही सामाजिक यथार्थ वाले भी हैं| धार्मिक कथा के अनुरूप इसकी पात्र योजना भी हुए है| पात्रों की श्रेणी में राम, सीता, रावण, लक्ष्मण,अंगद, हनुमान, शूर्पनखा, विभीषण, दशरथ आदि सभी पात्र आते हैं| रावण लीला और राम की लड़ाई में

सामाजिक यथार्थ वाली कथा भी धार्मिक कथा के साथ चलती है| इसलिए धार्मिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार के पात्र इन नाटकों में होते हैं| धार्मिक कथा के पात्रों को निभाने वाले पात्रों की निजी जिन्दगी की कहानी में करतार सिंह काशीराम, रामगुलाम, रमई काका, सरजू बाबा, नेताई आदि आते हैं|

राम की लड़ाई नाटक में सूत्रधार की भूमिका 'मसखरा' नामक पात्र निभाता है| प्रस्तुत नाटक में 'मसखरा' नामक पात्र की बहुत ही एहम भूमिका है| जो नाटक में पात्रों का परिचय कराते है साथ ही कथा विवरण का काम भी करता है|

"मसखरा –

विश्वामित्र ने किया इशारा|

खर दूषण को इसने मारा||

रावण, बाणासुर, अहिरावन को मारने के

लिए इसे चाहिए शिव पिनाक|

उसी निमित यह धनुषयज्ञ लीला है|[1]"

प्रस्तुत नाटक में विदूषक नामक पात्र भी है जो देशी बोली में प्रसंगानुकूल संवाद बोलने में माहिर है| रात को हासिल हुई आज़ादी पर व्यंग्यात्मक संवाद इस प्रकार है|

"विदूषक : हअ! हा हा हा! कहाँ राम कै रमायन, कहाँ

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल-राम की लड़ाई, पृ : 26

उरदे कै भास्का| खाली पेट आज़ादी का चस्का|

अरे, तू किधर खसका?"[1]

'दशरथ नंदन' नाटक जो पूर्णतः धार्मिक कथा पर केंद्रित हैं| नाटक में सूत्रधार की भूमिका के लिए खुद तुलसीदास को नाटककार ने चुना है| इस के बारे में डॉ. जगदीश चन्द्र माथुर का कहना है – "क्या, सूत्रधार (जिसके स्थान पर तुलसी और उनके वृन्द को मैं ने बिठाया है) रेडियो की देन है? क्या मजबूरन मैं ने सूत्रधार की इतनी प्रधान भूमिका रखी है? वस्तुतः रेडियो के सूत्रधार या वाचक से सदियों पहले असम के अंकिया नाट, ब्रज की रासलीला और रामनगर की रामलीला में सूत्रधार यों बार बार सामने आकर कथासूत्र को सँभालता रहा है| मैं ने उसी परंपरा को आगे बढ़ाने की चेष्टा की है|"[2]

इस प्रकार सूत्रधार के रूप में तुलसी जी और बाकी वृन्द कथा सूत्र का गायन करते हुए दिखाया गया है| रामलीला में झाँकियों का प्रदर्शन होता रहता है प्रस्तुत नाटक में बीच बीच इस प्रकार के झाँकियों का आयोजन किया गया है|

"उस समय मुनिवृन्द तुलसी-मण्डली और नेपथ्य से एक सामूहिक स्तुति सुनाई पड़ती है, जिस के बीच राम-लक्ष्मण की झाँकी के दर्शन होते हैं|"[3]

---

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल-राम की लड़ाई, पृ : 6

[2] जगदीश चन्द्र माथुर, दशरथ नंदन, निवेदन से

[3] जगदीश चन्द्र माथुर, दशरथ नंदन, पृ : 52

इसके अलावा झाँकी एक, झाँकी दो ऐसे करके जगह जगह सुन्दर झाँकियों का आयोजन नाटक की खासियत है| रामलीला में दर्शकगण बहुत ख़ास भूमिका निभाते | रामनगर की रामलीला के दर्शकों की दो कोटियाँ मान्य हैं| 'नेमी' और 'प्रेमी' नाम के दर्शकगण होते हैं| 'नेमी' वे दर्शकगण हैं जो लीला के नियमित प्रेक्षक हैं| इनकी पहचान आसानी से हो सकती है| इनके पास 'रामचरित मानस' का एक गुटका, एक टार्च या लालटेन और बैठने के लिए आसनी या कोई अन्य वस्तु होती है| प्रेमी वे दर्शक है जो अपने प्रिय कथा प्रसंगों के अवसर पर उपस्थित होते हैं| रामनगर की रामलीला में अभिनय की किसी कलात्मक बारीकियों का अनुकरण सम्भव नहीं है, किंतु इससे लीला के प्रति प्रेक्षकों के तादाम्य में कोई बाधा नहीं होती 'श्री रामराज्य' नामक झाँकी नेमी और प्रेमी दोनों तरह के दर्शकों में अत्यंत लोकप्रिय है| इन प्रिय प्रसंगों में अपार जनता एकत्र होती है|

रामलीला के दर्शकों की ख़ास भूमिका के बारे में डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी ने इस प्रकार लिखा है, - "प्रेक्षकों तक इनके संवादों का पहुँचना कठिन नहीं होता| यहाँ पर हम प्रेक्षकों को इस लीला के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित प्रेक्षक के रूप में देखते हैं| ये प्रेक्षक जो प्रायः हज़ारों की संख्या में होते हैं रंगस्थल पर सूचि भेद्य सन्नाटा का निर्वाह करते हुए दोनों कानों के पीछे हथेलियाँ लगाकर मंच से आए प्रत्येक स्वर को जैसे लोक लेते हैं| इस प्रकार यहाँ लीला देखने आये नये से नये दर्शक लीला दर्शन के इस विधि विधान को समझ लेते हैं

तथा उस आत्मानुशासन का पालन करता है जो लीला देखने के लिए ज़रूरी है|"[1] 'रावणलीला नाटक की खासियत यह है कि दर्शकों की भागीदारी एकदम लोकशैली के अनुसार दर्शाया है| दर्शकगण में इस नाटक के ही कुछ पात्रों को बिठाया जाता है जो बीच-बीच यें नाटक पर टिप्पणी करते हैं और साथ ही पात्रों से संवाद भी करते हैं, -

"(एक क्षण रुक जाता है| सामने की कतार में कुछ दर्शक रामलीला पर ही बार-बार टिप्पणी करने के लिए बिठा दिए गए हैं और जो इस नाटक का ही अंग है|)

एक दर्शक : साला बहुत बखत बर्बाद करता |

जगन्नाथ : रामलीला शुरू होने से पहले एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ|"[2]

'राम की लड़ाई' नाटक में भी इस प्रकार पात्रों को दर्शक गण में बिठाने की योजना की गई है| दर्शकों से बातचीत नाटक में अनौपचारिकता कायम रखती है| 'रावणलीला' नाटक में इस प्रकार के कई संदर्भ हैं जिससे अनौपचारिकता का माहौल पैदा होता है जो सिर्फ लोकनाट्य में ही देखा जा सकता है| प्रस्तुत नाटक में परंपरागत लीला की तरह पुरुष पात्रों की योजना भी की गयी है| याने पूरे नाटक में एक भी स्त्री पात्र नहीं है| सीता जी की भूमिका

---

[1] डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी, भारतीय लोकनाट्य, पृ : 46

[2] कुसुम कुमार, रावण लीला, पृ : 6

भी पुरुष पात्र ही निभाता है| इस प्रकार हम देख सकते हैं कि तीनों नाटकों की पात्रयोजना लीला के अनुरूप है|

वेशभूषा एवं मुखसज्जा

रामलीला में पात्रों की वेशभूषा चमकीली होती है| धार्मिक कथा के अनुरूप वेशभूषा पहनने से पात्रों के प्रति आस्था का भाव दर्शक रखते हैं| रामलीला में सद्चरित्र को दर्शाने वाला पात्र लाल रंग के जरीदार कोट आदि पहनते हैं किंतु राक्षस आदि काले वस्त्रों का प्रयोग करते हैं| मुँह भी काले रंग से रंगते हैं, वानर और भालू चेहरों का प्रयोग करते हैं| इस प्रकार प्रसंगानुकूल मुखौटों के प्रयोग ही साथ राजा रानी आदि पात्रों के लिए 'मुकुट' का प्रयोग भी किया जाता है|

रामनगर की रामलीला में 'मुकुट पूजन' प्रसंग को रामलीला की विशिष्ट शैली के पूर्वरंग के रूप में भी देखा जाता है| यह धार्मिक लीला नाट्य है| अतः इसके अंतर्गत 'मुकुट पूजन' होता है| लीला के चरित्रों का निर्वाह करने वाले अभिनेताओं में दिव्यशक्ति के आवाहन का अनुष्ठान भी किया जाता है|

लीला मंच के पीछे कपडा लगाकर नेपथ्य बनाया जाता है| लीला में भाग लेने वाले पात्र यहाँ वेशभूषा धारण करते हैं और रोली, मुर्दाशंख, काजल, चमकदार पन्नी के मुकुट, खडिया गेरू, चन्दन आदि से रूप सज्जा करते हैं| रामलीला में पुरुष पात्र ही स्त्री पात्र का अभिनय करते हैं| इसलिए वेशभूषा और मुखसज्जा में खासतौर पर ध्यान देना है| रामलीला में राम, सीता, लक्ष्मण

या देवतादि का अभिनय करने वाले अभिनेता दस से चौदह् वर्ष तक की आयु के होते हैं| इन किशोरों की कोमल वय, इनकी कान्ति आदि पर अपेक्षित बाह्य सज्जा सहज ही सज देती है| ये दिव्यत्व से युक्त प्रतीत होते हैं| लीला प्रेमी बिना किसी अवरोध के इनमें अपने ईश्वर का रूप देखते हैं| रावण लीला, दशरथ नंदन, राम की लड़ाई इन तीनों नाटकों में धार्मिक कथा के अनुकूल पात्रसंयोजना और पात्रानुकूल वेशभूषा का आयोजन हुआ है|

भाषा एवं संवाद

रामलीला की भाषा स्थानीय रंग के अनुरूप होती है| इसके संवाद अलिखित होते हैं| लेकिन परंपरागत नाटक होने के नाते परंपरा से चली आ रही एक 'स्क्रिप्ट' की योजना नाटक में होती है जिसका संचालन 'व्यास' करते हैं| धार्मिक रामलीला में तुलसी की चौपाईयों का उपयोग संवाद के लिए करते हैं साथ ही कवित्त, सवैया या उर्दू की शेरोशायरी, राधेश्याम कथावाचक का रामायण, केशव दास की रामचंद्रिका के छन्दों का भी प्रयोग किया जाता है| रामलीला में सर्व प्रथम कथावाचक 'व्यास जी' लीला प्रसंग से सम्बन्धित रामकथा का पाठ प्रस्तुत करते हैं और अभिनेता उसी कथापाठ का नाट्य रूप में अनुकरण करते हैं| कहीं कहीं राम लीलाओं में यह अभिनय मूकाभिनय के रूप में भी होता है| किंतु रामनगर की रामलीला में अभिनेता 'मानस प्रसंग' का गद्य रूप प्रस्तुत करता है| उसके संवाद अवश्य लयात्मक होते हैं| कथा गायन पूर्णतः संगीतमय होता हैं| अभिनेतागण अपनी अभिव्यक्ति में स्वर भंगिमा या स्वर के

उतार-चढाव पर ज्यादा निर्भर करते हैं| चेहरे से भाव वैविध्य प्रेषित करने की विधि यहाँ प्रायः नहीं दिखाई देती| इस स्वर के द्वारा हर्ष या शोकादि भावों को भी प्रस्तुत करते हैं| रुदन के लिए हिचकियों का बड़ा माकूल प्रयोग दिखाई देता है| इस प्रकार रामलीला में अभिनेता के स्वर एवं मुद्राओं का महत्वपूर्ण स्थान है|

'दशरथ नंदन' नाटक में भाषा एवं संवाद पूर्णतः रामलीला के समकक्ष हैं| कथा सूत्र का विवरण रामचरितमानस की चौपाईयों में किया गया है| सूत्रधार की भूमिका 'तुलसी' कर रहा है उनके द्वारा कात्यात्मक शैली में पाठ सुनाना और उनके पाठ पुनः पाठ वृन्द मण्डली द्वारा सुनाना नाटक की भाषा संवाद शैली है| नाटक की शुरुवात के पहले ही नाटक खेलनेवालों को संकेतों में संवाद किस प्रकार होना चाहिए उसका विवरण देता| जगदीश चन्द्र माथुर जी लिखते है – "जिन चौपाई दोहे इत्यादि के अंग गद्य के साथ जुड़े हैं – मणिप्रवाल की माला की तरह हैं उनमें पद्य का उच्चारण भी गद्य ही की भाँती हो – परिस्थिति विशेष के अनुसार भाव प्रकट करनेवाले आरोह-अवरोह के साथ| किंतु जिन समूचे दोहों चौपाइयों इत्यादि की अपनी सत्ता है और जो भाव- विशेष को उभारने के लिए रखे गए हैं उनको कविता की भाँती किंतु स्पष्ट बोलना चाहिए| मानस पाठ की अनेक शैलियाँ है|"[1]

प्रस्तुत नाटक में प्रश्नोत्तरी शैली का संवाद भी देख सकेत हैं, -

[1] जगदीश चन्द्र माथुर, दशरथ नंदन, पृ : इस नाटक खेलने वालों से

"वृन्दवाचक : और हरि ने जन्म कहाँ लिया?

तुलसी : कोसल प्रदेस में|

वृन्दवाचक : किसके यहाँ?

तुलसी : अवधपुरी रघुकल मनि राऊ|

बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ||"[1]

दशरथ नंदन एक ऐसा नाटक है जिसमें रामलीला के ज़रिए रामचरित मानस को सामान्य जनता तक पहूँचाने का काम किया है| माथुर जी भी यही चाहता था| उनके ही शब्दों में, "आपका हर पात्र वाक्यों, चौपाई, दोहों इत्यादि का इतना स्पष्ट उच्चारण करे कि प्रत्येक शब्द समझ में आ जाय| गोस्वामी जी के शब्द उभर सके यही लेखक का उद्देश्य रहा हैं और यही आपका भी उद्देश्य होना चाहिए|"[2]

राम की लड़ाई और रावण लीला नाटक रामलीला पर आधारित है| साथ ही सामजिक यथार्थ वाली कथा भी है| इसलिए नाटक की भाषा खड़ीबोली हिन्दी है| इसके अतिरिक्त पद्यात्मक संवाद, देशज शब्द, अंग्रेज़ी शब्द, उर्दू शब्द आदि का प्रयोग भी पात्रानुकूल हुआ है| 'रावण लीला' नाटक में तुकान्त संवाद बीच बीच में हुआ है जो लोकनाट्य की विशेषता है| उदहारण –

---

[1] जगदीश चन्द्र माथुर, दशरथ नंदन, पृ : 5

[2] जगदीश चन्द्र माथुर, दशरथ नंदन, पृ : इस नाटक खेलने वालों से

"सूर्पनखा : हुआ यों मेरे भाई| मैं घूमती फिरती पचवटी की तरफ धाई| तभी उस सीता की सुन्दरताई| मेरे मन आँखों में ऐसी समाई ऐसी समाई कि मैं ने सोचा हो न हो इसे तो बनाके रहूँगी अपनी भौजाई|"[1]

इस प्रकार के संवाद लोकनाट्य में मिलते हैं| सूत्रधार द्वारा संवादों के ज़रिए कथाविवरण करना बाद में सब पात्रों के उसको दोहराना जैसी विशेष प्रकार की प्रथा सिर्फ लोकनाट्य की ही खासियत है| 'राम की लड़ाई' में इसका उदहारण मिलता है –

मसखरा : ....यह है हीरा जवान|

बना है लक्ष्मण सुजान||

सब : ....बना है लक्ष्मण सुजान|

मसखरा : ....यह विमला बनी जानकी माई है|

सब : ....राम की लड़ाई है|

बिमला जानकी माई है||

आयी राम की लड़ाई|"

लोकनाट्य में दर्शकों की भागीदारी होनी है| 'रावण लीला' नाटक लोककलाकारों की रामलीला होने से दर्शक और पात्रों के बीच में संवाद होती रहती है| -

[1] कुसुम कुमार, रावणलीला, पृ : 11

"दर्शक : भाई जगन्नाथ, कोई प्यारी-सी रामधुन सुनाई होती, कोई रामराज की बात करते, भैया| यह छूटते ही रावण की उपासना क्यों करने लगे?

जगन्नाथ : भाइयो इस समय रावण का दरबार लगा रहा है| समझने की कोसिस कीजिए, बहनो और भाइयों, इस समय रावण के दरबार की सोभा देखिए| सांत होकर अपनी-अपनी जगहों पर बैठे रहिए|"[1]

'रावण लीला' नाटक में देसी रामायण की प्रस्तुत हो रही है| बीच-बीच में पात्रों द्वारा लोगों को इसकी याद दिलाती रहती है कि अनौपचारिकता का माहौल पैदा हो, -

"रावण : फर्क पड़ता है यार जहाँ सेर वहाँ सवा सेर

मारीच : जो जी में आये कर साले

(रामलीला में क्षणिक रूकावट देख दर्शकों की सीटियाँ और शोर)

रावण : (दर्शकों से) भाइयो यह देसी रामायण है| चुप हो जाइए|"[2]

इस प्रकार हास्य की पुष्टि कराने वाले अनेक सन्दर्भ नाटक में देख सकते हैं| संक्षेप ये तीनों नाटक भाषा और संवाद की दृष्टि से पूरी तरह रामलीला के गुणों से युक्त है|

---

[1] कुसुम कुमार, रावणलीला, पृ : 8

[2] कुसुम कुमार, रावणलीला, पृ : 22

गीत एवं संगीत

रामलीला में गीत संगीत को प्रमुख स्थान है क्योंकि रामलीला की शैली काव्यात्मक है| रामलीला रामचरित मानस पर आधारित धार्मिक कथा प्रस्तुत करती है| इसलिए ही मानस पाठ को सुनाना और उसको दोहराना रामलीला का उद्देश्य है| लीला में कथागायन पूर्णतः संगीतमय होता है| दोहा, चौपाई में काव्यात्मक शैली में गीतों की प्रस्तुति होती है| इस में ढोलक और मंजीरा दिखाई पड़ते हैं| गीत एवं संगीत की दृष्टि से दशरथ नंदन नाटक पूर्णतः रामलीला के दोहा-चौपाइयों पर आधारित है| प्रस्तुत नाटक की शुरुवात वंदना से होती है, -

"सों जो सुमिरन सिधि होइ गननायक करिबरबदन|
करउ अनुग्रह सोइ वृद्धि रासि सुभ गुन सदन||"[1]

यह वंदना बहुत लम्बी है| वृन्द-गायक मण्डली का आयोजन नाटक में देख सकते हैं| यह मण्डली द्वारा किस प्रकार गायन किया जाता है इसका संकेत नाटक में माथुर जी ने यों दिया है,

"देवी-देवताओं की स्तुति वृन्दगान के रूप में| स्तुति की पहली दो पंक्तियाँ पुरुष स्वर में, उसके बाद की दो पंक्तियाँ स्त्री स्वर में – इसी क्रम से गाई

[1] जगदीश चन्द्र माथुर, दशरथ नंदन, पृ : 2

जाती हैं| अंतिम दो पंक्तियाँ सारा देवी-देवगण समूह मिलकर गाता है| ध्यान रहे कि स्तुति का प्रत्येक शब्द स्पष्ट हो और वाद्य अत्यंत मंद|"[1]

रावणलीला नाटक रामलीला पर आधारित होने पर भी नाटक में रामलीला के छंदों का कहीं भी प्रयोग नहीं किया गया है| प्रत्येक लोकनाट्य का प्रारंभ मंगलाचरण से होता है| जो इस नाटक में नहीं है किंतु उसकी जगह गीत का प्रयोग वन्दना स्वरूप प्रतीत होता है जो रावण की प्रशंसा में है, -

"नहीं रुकेगा नहीं झुकेगा झंडा रावण राज का|
आगे आगे और बढेगा झंडा रावणराज का|
यह झंडा यह झंडा|
पाप की ताप की शान बढाकर
होश गवांकर दोष लगाकर
सबका देगा विष का दान, झंडा रावणराज का
यह झंडा यह झंडा|"[2]

यह गीत नाटक में व्यंग्य की सृष्टि करता है| 'राम की लड़ाई' नाटक में भी इस प्रकार के मंगलाचरण की योजना हम देख सकते हैं, -

"(लीला शुरू होने से पहले सामने मंच पर लोग, गायक, वादक, अभिनेता आदि खड़े हैं| संगीत उठता है| लोग गाते है|)

---

[1] जगदीश चन्द्र माथुर, दशरथ नंदन, पृ : 6

[2] कुसुम कुमार, रावणलीला, पृ : 8

राम की लड़ाई आयी

हे भाई, हे भाई |

टूटी धनुइयाँ है

छोटे-छोटे हाथ है |"[1]

तुकबंदी, तालबंदी, गीतों का प्रयोग 'दशरथ नंदन' नाटक में पाया जाता है, -

"वृन्द पाठ : सब कर परम प्रकासक जोई |

राम अनादि अवधपति सोई ||

जगत प्रकास्य प्रकासक रामु |

मायाधीस ग्यान गुन धामु |

जासू सत्यता ते जड़ माया |

भास सत्य इत्र मोह सहाया ||"[2]

रामलीला में मुख्य प्रसंग के रूप में 'सीता स्वयंवर' का दृश्य है| यह प्रसंग दशरथ नंदन और राम की लड़ाई दोनों नाटकों में देख सकते हैं| इस प्रसंग में जयमाला वाद्य संगीत के साथ बहुत ही गंभीर होते हैं| इस प्रकार नाटक में मंगलगीत, स्तुति गीत, समूह गीत आदि कई प्रकार के गीतों का आयोजन हम देख सकते हैं| रामलीला में साधारणतः परंपरागत गीतों का प्रयोग ही होता है|

---

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, राम की लड़ाई, पृ : 3

[2] जगदीश चन्द्र माथुर, दशरथ नंदन, पृ : 54

रावण लीला नाटक में आधुनिक शैली के अनुसार कव्वाली गीतों का प्रयोग भी हुआ है| उदहारण –

“कबर में पाँव है सरकार हिम्मत हार बैठा हूँ
मौत मेरी कहे मुझ से
कि हो जा मौत को तैयार, ‘में’ तैयार बैठा हूँ
खून ढंग फसादों की नहीं, उम्र अब मेरी
मैं हूँ मोहताज औरों का|”[1]

इसके अतिरिक्त नाटक में समूह गीतों की सृष्टि की गई है| गायन मंडली के साथ पात्र भी गायकी में शामिल होते हैं| हनुमान आता है और गायन मंडली के बीच बैठकर सबके साथ गाने लगता है| गीत इस प्रकार है –

“चलो तुम पावन, निराली चाल

रूप भयंकर धारण करके करो लंका पामाल
चलो तुम पवन
चलो तुम पवन, निराली चाल|”[2]

‘रावण लीला’ नाटक रामलीला के परंपरागत छंदों के स्थान पर गीतों का प्रयोग कर नाटक को नयी अर्थवत्ता प्रदान करता है| ‘राम की लड़ाई’ नाटक में छन्दों का प्रयोग ज्यादा नहीं हुआ है फिर भी गीतों के भरमार से यह भी

[1] कुसुम कुमार, रावणलीला, पृ : 22
[2] कुसुम कुमार, रावणलीला, पृ : 34

रामलीला के करीब है| दोहा चौपाईयों के भरपूर प्रयोग कर दशरथ नंदन नाटक में पूर्णतः रामलीला का निर्वाह किया गया है|

मंच विधान

रामलीला का रंगमंच खुले मैदान में बनाया जाता है| मैदान को बल्लियों से घेर दिया जाता है, दर्शाक घेरे के अन्दर बैठते हैं, चबूतरों या तख़्त पर लीला मंच तैयार किया जाता है, मंच के पीछे कपडा लगाकर नेपथ्य बनाया जाता है जिसमें लीला में भाग लेने वाले पात्र वेशभूषा धारण करते हैं| लीला की कथा अनेक भागों में विभक्त कर कई दिनों तक चलती है| इस का मंचन प्रसंगानुकूल विविध मंचों पर करने की प्रथा भी देख सकते हैं|

मंच योजना की सबसे गंभीर योजना दशरथ नंदन नाटक में नाटककार ने की है| मंच को प्रसंगानुकूल छहः भागों में विभक्त करके सचित्र दर्शाया है| इस में से कौन सा भाग किस प्रसंग में होना चाहिए इसका संकेत भी नाटककार ने हर दृश्य में दिया है| उदहारण स्वरूप एक संकेत इस प्रकार है –

"विश्वामित्र के चरण छूकर दोनों भाई पार्श्वमंच से रंगस्थली पर आते हैं| मुनि लोग सामग्री सँवारने में लग जाते हैं| इधर रंगस्थली| और दीर्घा पर प्रकाश तीव्र हो जाता है और पार्श्वमंच 3 पर भी| राम और लक्ष्मण रंगस्थली के एक सिरे से चलकर पार्श्वमंच 3 के नीचे घूमते हुए पार्श्वमंच 4 सूत्रधार पीठिका के निकट से दीर्घा में उतरते हैं और समग्र दीर्घा के किनारे-किनारे घूमते हुए

पार्श्वमंच 6 के पास रंगस्थली पर चढ़कर पार्श्वमंच 5 तक वापस आता है| यही नगर भ्रमण है|"[1]

'राम की लड़ाई' नाटक में डॉ. लाल ने 'धनुष यज्ञ' प्रसंग की योजना की है| प्रस्तुत नाटक में दो कथा चलती है इसलिए मंच में कुल वातावरण को दिखाने वास्ते प्रकाशव्यवस्था एवं पर्दा व्यवस्था का सुन्दर आविष्कार हुआ है|

रावण लीला मुक्ताकाशी रंग परंपरा का निर्वाह करता है तथा आधुनिक रंग परंपरा का निर्वाह भी| नाटक में दो स्तर पर कथा दिखा रही हैं| इसलिए परंपराशील शैली के साथ साथ आधुनिक रंगमंच की देन प्रकाश एवं पर्दों का उपयोग भी सम्मिश्र रूप से किया जाता है| चूँकि लोकनाट्य में सब कुछ मान लिया जाता है, अतः इस में जो कुछ भी होता है वह दर्शकों की समझ में आता है| उदहारण –

"सीता अन्दर जा चुकी है| हनुमान जोश में एक छलांग लगाता है| पाँव की चोट के कारण दर्द से कराह उठता है| तभी विंग में से कोई फल फैकता है और हनुमान फल झपटकर खाने लगता है|

हनुमान : (दर्शकों से) भाइयो जिगरपुर की रामलीला का यह दृश्य बड़ा मौलिक है| अब मंच पर फल-पेड़ दिखाना तो संभव भी नहीं है न?"[2]

---

[1] जगदीश चन्द्र माथुर, दशरथ नंदन, पृ : 65

[2] कुसुम कुमार, रावणलीला, पृ : 38

इस प्रकार लोकनाट्य में दिखाई देने वाली अनौपचारिकता नाटक में कई जगह दिखाई देती है| एक और उदाहरन इस प्रकार है –

“रावण : (प्यार से सीता की ओर अपना हाथ बढाते हुए) मेरे साथ आइए, और कहाँ जाएँगी देवी? (सीता खुशी-ख़ुशी अपना हाथ रावण को दे देती है)

तभी दर्शक : सत्यानाश.................. अरे उधर देखो सत्यानाश हो गया| अधर्म की भी हद है भैया| सीता रावण के संग आप ही आप चल पड़ी|)”[1]

इस प्रकार दर्शकों की भागीदारी से नाटक में अनौपचारिकता बरकरार है|

प्रकाश योजना का विस्तार पूर्वक संकेत दशरथ नंदन नाटक में जगह जगह पर हुआ है| साथ ही रामलीला की आयोजना में झाँकियों की योजना भी प्रस्तुत नाटक में हम देख सकते हैं|

“उस समय मुनिवृन्द तुलसी-मण्डली और नेपथ्य से एक सामूहिक स्तुति सुनाई पड़ती है, जिस के बीच राम लक्ष्मण की झाँकी के दर्शन होते है|”[2] इस प्रकार हम देख सकते हैं कि पूर्णतः रामलीला पर आधारित नाटक है दशरथ नंदन| रामचरित मानस को जनसामान्य तक पहूँचाना के उद्देश्य से प्रत्येक

[1] कुसुम कुमार, रावणलीला, पृ : 29

[2] जगदीश चन्द्र माथुर, दशरथ नंदन, पृ : 52

नाटक रचित हैं| दशरथ नंदन में यह उद्देश्य पूरी तरह सफल हुए है| दोहा चौपाइयों की बहुलता नाटक को लीला से जोड़ने में सहायक है| सूत्रधार के रूप में तुलसी जी को नाटककार ने बिठाया है| मानस पाठ रामलीला का अविभाज्य अंग है| तुलसी जी द्वारा मानस पाठ सुनाने की व्यवस्था की गयी साथ ही काव्य को दोहराने के लिए वृन्द मण्डली की व्यवस्था भी है| पात्र योजना, वेशभूषा आदि धार्मिक कथा के अनुकूल है| मंच प्रस्तुति के लिए कई प्रकार के संकेत बीच बीच में दिया गए हैं| इस प्रकार यह नाटक रामलीला से प्रभावित है उसकी प्रस्तुति सफल है|

रामलीला पर आधारित रावणलीला और राम की लड़ाई दोनों में धार्मिक कथा के साथ सामाजिक कथा भी चलती है| प्रत्येक नाटक में पात्रानुकूल वेशभूषा मुखसज्जा आदि का प्रयोग है| भाषा खड़ीबोली है देशज शब्दों का प्रयोग भी बीच बीच में हुआ है| संवाद और गीतों में पद्यात्मक शैली के प्रयोग ने लोकनाट्य शैली को कायम रखा है| मंच व्यवस्था परंपरा और आधुनिक रूपों के सम्मिश्रण से बना है| इस प्रकार इन दोनों नाटकों में भी रामलीला का प्रभाव हम देख सकते हैं|

कथ्यगत विश्लेषण

रामलीला धार्मिक लोकनाट्य रूप है| इसका प्रचलन अत्यंत प्राचीन है| 'वाल्मीकि रामायण' में हुए उल्लेखों से एक अनुमान यह है कि इसका विकास राम कथा गायन की परंपरा से हुआ होगा| रामकथा पर आधारित रामलीला का

एकमात्र स्रोत रामकथा है| इस प्रकार यह तुलसीदास कृत रामचरित मानस पर विशेष निर्भर है| रामलीला में रामकथा के प्रमुख अंशों का प्रदर्शन होता है उनमें मुख्यतः धनुष यज्ञ का दृश्य सीता स्वयंवर, परशुराम-लक्ष्मण संवाद, राम-वनगमन, सीता हरण, लंका दहन, अंगद-रावण संवाद, लक्ष्मण मेघनाद युद्ध, राम रावण युद्ध, भरत मिलाप आदि प्रमुख है| इन अंशों में नाटकीयता और कथ्य की सघनता के कारण जनमानस प्रभावित होता है|

रामकथा के ये सभी प्रसंग रामभक्तों के लिए आह्लादकारी तो होते ही हैं| सामन्य दर्शकों को भी अभिनव आनंद प्रदान करते हैं| कथा में सुख-दुखांतक भावों का वैविध्य भी बना हुआ है| सीताहरण या लक्ष्मण शक्ति जैसे प्रसंग प्रेक्षकों को मोहित कर जाते हैं| कुम्भकरण वध या बाली वध जैसे प्रसंग भी उसे परम शत्रु का आनंद न देकर एक प्रकार के अवसाद में छोड़ जाते हैं| नाटक पे एक प्रमुख मोड़ देने वाला प्रसंग है कैकेयी कोप प्रसंग| डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी जी ने लिखा है – “कैकेयी कोप भवन के साथ ही इसमें संघर्ष का प्रवेश होता है| यहीं से इसमें नीति-अनीति, धर्म-अधर्म के साथ यथार्थ और वास्तविकता का भी संघर्ष प्रारंभ हो जाता है| वस्तुतः इसी प्रसंग से ये कथा भूलोक से जुडती है| यही आकर मानव चरित्र की जटिलताओं के साथ-साथ व्यष्टि और समष्टि के हितों का द्वंद्व तीव्र होता है| इस प्रकार यह कथा मानव

प्रकृति और मानव नियति को उसकी विश्वसनीयता में प्रस्तुत करती हुई सत्य, शिव और सुन्दर के अपने आदर्श का ज्यादा सार्थक ढंग व्यक्त कर पाती है|"[1]

रामलीला शैली पर आधारित नाटकों का कथ्य भाग भी इन प्रसंगों से भिन्न नहीं है| दशरथ नंदन, राम की लड़ाई, और रावण लीला आदि नाटकों में राम कथा को आधार बनाया है| इन नाटकों में अलग अलग प्रसंगों का प्रस्तुतीकरण हुआ है| उद्देश्य पूर्ति के लिए चुने गए प्रत्येक प्रसंग और सामजिक कथा दोनों को परखने के लिए प्रत्येक नाटक के कथानक को जानना ज़रूरी है|

कथानक

जगदीशचन्द्र माथुर – दशरथ नंदन

जगदीशचंद्र माथुर जी ने दशरथ नंदन की कथा वस्तु को दो अंकों में बांटा है| दोनों अंकों में कई दृश्यों के अंतर्गत अन्तदृश्य के रूप में झाँकी का विधान किया गया है| तुलसी जी के रामचरित मानस को कथा सूत्र का आधार बनाया है| कथा में राम के जनम पहले से लेकर सीता स्वयंवर तक की कथा को पिरोया गया है| नाटक में रेडियो के नेरैटर के अन्दास में तुलसीदास जी सूत्रधार बने हुए हैं| उनका मुख्य कार्य है तेजी से बदलते दृश्यों के बीच कथा सूत्र को पिरोए रखना| नाटककार ने अधिकांश में तुलसी की ही शब्दावली का उपयोग किया है| नाटक की भूमिका में नाटककार ने यह उल्लेख किया है कि उनकी यह रचना न

[1] डॉ. वशिष्ठ नारायण त्रिपाठी, भारतीय लोकनाट्य, पृ : 43

तो ग्रामीणों के लिए है, न निष्ठावान नागरिक भक्तों के लिए न साहित्यकारों के लिए न अन्य विद्वान मनीषियों के लिए अपितु यह रचना उन असंख्य युवा पीढ़ी के युवक युवतियों के लिए हैं जो तुलसीदास को नाम से तो जानते हैं, रामकथा भी जिन्हें विदित हैं पर जो लोग मानस की भाषा (अवधि बंसवाडी) से नितान्त अपरिचित हैं| माथुर जी के उद्देश्य के प्रति डॉ. नरनारायण राय की टिप्पणी है–

"रामकथा वर्गों को जोड़ने वाली सेतु है क्योंकि गाँव और शहर, उच्च वर्ग और निम्न वर्ग, सब में रामकथा, मानस और रामलीला के प्रति समान आकर्षण का भाव है| माथुर जी की यह रचना न केवल परंपरा का एक सार्थक निर्वाह है अपितु रामचरित मानस के दोहे और चौपाइयों का प्रयोग न केवल कथा को ही आगे बढ़ाता है बल्कि नाटकीय क्रिया व्यापार की सम्भावनाएं भी उभारता है|"[1]

आज के समाज में व्याप्त अंधकार को मिटाना आत्मीयता और आन्तरिकता के सेतु-निर्माण करना आदि ऐसी कालजयी कृतियों से ही संभव हो सकता है|

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल – राम की लड़ाई

रामलीला पर आधारित नाटक है 'राम की लड़ाई'| लोकनाट्य शैली में लिखे गए इस नाटक को रामकथा से संबद्ध 'धनुष यज्ञ' प्रसंग को एक मिथक के रूप में प्रस्तुत करके आधुनिक संदर्भों से जोड़ा गया है| इस नाटक की मूल

---

[1] डॉ. नरनारायण राय, जगदीश चन्द्र माथुर, पृ : 112

संवेदना पुरानी तथा नयी पीढ़ी के संघर्ष की है| राम की लड़ाई वर्तमान की लड़ाई है| नाटककार ने इस लड़ाई को प्रस्तुत करने के लिए देश के उस गाँव की पृष्ठभूमि को आधार बनाया है जहाँ पर पहले कभी धूमधाम के साथ रामलीला होती थी, सारा गाँव मिलकर एक हो जाता था| लेकिन सन् 1962 में ग्राम-पंचायत के चुनाव के नाम पर ऊपर से भ्रष्ट राजनीति आयी, उसके प्रभाव से रामलीला, कथा भागवत, सब बंद हो गए और लोगों के मन में जो साप्रदायिक सद्भावना, एकता थी उसने लड़ाई झगडा, तथा अलगाववादी प्रवृत्ति के रूप में पनपना प्रारंभ कर दिया| चारों ओर भ्रष्ट राजनीति का बोलबाला होने लगा| इस प्रकार की भ्रष्ट राजनीति के लोग है 'नेताई, मंत्री, लखपतिया आदि| रामगुलाम एक सद्चरित्र वाला युवक राम बना है| इनकी लड़ाई की कहानी है 'राम की लड़ाई'|

कुसुम कुमार – रावण लीला

रावण लीला का प्रसंग जिगरपुर नामक गाँव में आयोजित रामलीला की कथा से है| लेखिका ने परदे के आगे के समान पीछे की लीलाओं का अनावरण किया है| मंच से जुड़े हुए आज के कलाकारों की दु:स्थिति की प्रस्तुति भी नाटक में है| भगवान दास पहले रावण की भूमिका प्रभावशाली ढंग से निभाता था| जब वह शहर चला जाता है तो जिगरपुर का करतार सिंह रावण का पार्ट अदा करने लगता है| रामलीला के नाम पर चंदा इक्कट्ठा करने वाले जगन्नाथ और काशीराम से वह अपनी पारिश्रमिक बढाने की माँग करता है| अंत में जब

काशीराम अस्सी रुपये देने को राजी हो जाता है, तभी रावण मंच पर अपनी भूमिका निभाने के लिए तैयार होता है| इस प्रकार मौका पाते ही रावण अपनी लीला दिखाते हैं|

रावण लीला और राम की लड़ाई इन दोनों नाटकों में कहानी दो स्तर पर चलती है| एक है रामकथा दूसरा सामाजिक यथार्थ वाली कहानी| कोई भी साहित्यकार जब अपनी कृति में किसी पौराणिक प्रसंग को प्रस्तुत करता है, तो उसका उद्देश्य घटनाओं या प्रसंगों की पुनरावृत्ति मात्र करना नहीं होता अपितु समसामयिक दृष्टि से उसकी पुर्नव्याख्या या पुर्नमूल्यांकन करना होता है| रचनाकार यह काम प्रतीकों के माध्यम से करता हुआ अतीत को वर्तमान के साथ जोड़ता है| प्रस्तुत नाटकों में नाटककार ने इस पद्धति का अनुसरण करते हुए कथ्य तथा मूल संवेदना को अभिव्यक्त किया है|

'रावण लीला', राम की लड़ाई' इन दोनों नाटकों में सामाजिक और राजनीतिक धरातलों पर आधारित कई समस्याओं को हम देख सकते हैं| डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने 'राम की लड़ाई' नाटक के माध्यम से स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजनीतिक जीवन तथा समाज के विभन्न पहलुओं को सजीव और सशक्त दृष्टिकोण से उजागर करने का प्रयास किया है| उसी प्रकार कुसुम कुमार द्वारा रचित नाटक 'रावण लीला' नाटक वर्तमान संदर्भों को समेटते हुए वर्तमान अर्थव्यवस्था की परतें खोल देता है| प्रस्तुत नाटक में बड़ी बड़ी मण्डलियों द्वारा कलाकार के शोषण की कथा को व्यंजित भी किया गया है|

राजनीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजनीतिक ढाँचे में जो परिवर्तन हुआ है उसका गहरा प्रभाव समाज पर पड़ा है| पहले जो समाज धर्म तथा नीति पर आधृत था अब वह राजनीति से परिचालित होने लगा है| 'राम की लड़ाई' नाटक में नाटककार ने देश के उस गाँव की पृष्ठभूमि को आधार बनाया है जहाँ पर पहले कभी धूमधाम के साथ रामलीला होती थी| लोगों के मन में साप्रदायिक सद्भावना एकता और सौहार्द्र की भावना थी| 'राम की लड़ाई' में पात्र 'सरजू' पुरानी बातों को इस प्रकार याद कर रहा है –

"सरजू : देखो नेताई जी पहले यहाँ कितने धूमधाम से रामलीला होती थी| सारा गाँव-जवार इससे मिलकर एक हो जाता था| पर उन्नीस सौ बासठ में ग्राम-पंचायत के चुनाव के नाम पर ऊपर से जो भ्रष्ट राजनीति यहाँ आयी, उस दिन से रामलीला बंद, कथा भागवत, गाना-बजाना, अखाड़ा कबड्डी – सब खतम| सबका एक साथ बैठना-बोलना बंद| तब से जो-जो इस गाँव-जवार में हुआ, उसे याद करने से क्या फायदा, हमने यही पाया कि कुछ ऐसा करें कि उस बहाने हम एक साथ बैठें, ऐसा हो कुछ कि जिसमें सबकी साझेदारी हो|"[1]

---

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, राम की लड़ाई, पृ : 52

आज़ादी के साथ जनता के मन में जो आशा थी उन सब के टूटने के बाद निराशाग्रस्त लोगों को कई योजनाओं के नाम से सरकार उल्लू बनाती रही| उसकी ओर 'राम की लड़ाई' नाटक में इशारा है –

"मसखरा : ....उन्नीस सौ सत्तावन में पाँच कुएँ खोदे गए कागज़ पर ढाई हज़ार फी कुआँ, सन साथ में तीन तालाब पार्ट गये, जब कि तालाब थे ही नहीं| सन उनहत्तर में चकबंदी आई-फी चक पाँच सौ रुपये| सन पचहत्तर में नसबन्दी आयी.......|"[1] आज़ादी के बाद राजनीति और अर्थ नीति के गठबंधन ने मानवता वादी विचारधारा के महत्व को अपेक्षाकृत कम कर दिया है, जिसके परिणाम स्वरूप चारों ओर सत्ता की राजनीति का प्रभुत्व फ़ैल गया है| इसका माध्यम है चुनाव|

चुनाव :- प्रत्येक पाँच वर्ष के उपरांत देश में चुनाव होता है और इस प्रक्रिया के द्वारा शक्ति तथा सत्ता प्राप्त करने वाले हैं नाटक के नेताई, चीलरसिंह, लखपतियाँ, शहजी जैसे भ्रष्ट नेता | चुनाव से लोगों का विश्वास उठ गया है| पहले सामान्य व्यक्ति चुनावों को अपनी स्वतंत्रता का अंग मानता था| किंतु अब चुनाओं की इस प्रक्रिया एवं परिणामों से अवगत होने पर उसके मन में कोई उत्साह नहीं रह गया है| 'राम की लड़ाई' नाटक में पात्र बिमला चुनाव से विश्वास उठ जाने की बात इस प्रकार कह रही है| उदा –

---

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, राम की लड़ाई, पृ : 11

"बिमला :- .... यह मतदान नहीं| डाकाजनी है| भारत माता का श्राप लगेगा| सारे गाँव-जवार से कह दिया कि जब चुनने को कुछ नहीं है तो चुनाव किसका|"[1]

झूठे आश्वासन :- चुनाव के समय योजनायें ज्यादा बनती है| इस समय भ्रष्ट नेता लोग किसी सुधार कार्य को प्रांरभ करके अपना दबाव बनाये रखने की कोशिश करता है| इस नाटक में शाहजी कहते है

"शाहजी : .... यह योजना हमने बनायी थी मंत्री जी से कि चकबंदी के समय इलेक्शन हो| इलेक्शन फंड में रुपयों की कमी नहीं रहेगी| चकबंदी के दबाव में सौ फीसदी वोट भी मिलेंगें| आम के आम गुठली के दाम|"[2]

चुनावी हथकंडे :- चुनाव के समय नेता लोग कई प्रकार से लोगों पर दबाव बनाये रखने की कोशिश करते हैं| सत्ता की इस दौड़ में व्यापक जनसमर्थन प्राप्त करने के निमित्त प्रत्येक प्रत्याशी चाहे वह सत्ताधारी दल का हो अथवा विरोधी दल का स्थानीय प्रभावशाली व्यक्तियों पर धन, पिस्तौल ओर हथगोले की सहायता से दबाव डालता है| जो व्यक्ति इस दबाव के सामने नहीं झुकता उसका परिणाम मृत्यु ही हो सकता है| 'राम की लड़ाई' में बिमला के साधू पिता

---

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, राम की लड़ाई, पृ : 29

[2] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, राम की लड़ाई, पृ : 49

शिवशंकर बाबा की चुनाव से एक रात पूर्व निर्मम हत्या इस तथ्य का परिचायक है| पात्र बिमला के शब्दों में –

"बिमला : इलेक्शन से पिछली रात की| उस दिन सुबह से तीनों पार्टियों के लोग झोले में रूपये, पिस्तौल, हथगोला भरे पिताजी के पास आते रहे| हर तरह से दबाव डालकर अपने हक़ के वोट लेने के लिए|"[1]

इसके अतिरिक्त जो उम्मीदवार अधिक शक्ति संपन्न होता है चुनाव के समय जब उसे यह अनुभव होता है कि उसकी विजय निश्चित नहीं है तो वह किराये के गुण्डों की सहायता से मतदान केन्द्र को लुटवा देता है| चुनाव के चंदे का गोल-माल कर जाना भी सामान्य बात है| ऐसे नेता जातीय भावना उभारकर साप्रदायिक दंगे कराने के लिए उद्यत रहते हैं और लड़कियाँ बेचने जैसा अनैतिक कार्य करने में भी संकोच नहीं करते हैं|

चुनाव – प्रत्याशी लोग :- सरपंच के चुनाव में गपोले-सारा वोट उसी को मिलने के लिए की धमकी देता है कि चुनाव में अगर सारा गाँव मुझे वोट देंगे तभी मैं परशुराम बनूँगा| इस प्रकार ऐन मौके पर पार्ट करने से इन्कार करके अपना कार्य लाभ करने वाला पात्र है 'रावण लीला नाटक का 'करतार सिंह'| रामलीला के निर्णायक मौके पर राम के हाथों से न मरने का निश्चय सुनाता है –

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, राम की लड़ाई, पृ : 28

"रावण (करतार सिंह) : पचास रूपये रावण और उसका बाप दोनों नहीं मर सकते है| रेट हमारा अब और बढ़ गया है अब हमें चाहिए अस्सी|"[1]

करतार सिंह गपोले से भिन्न है क्यू कि अपनी आर्थिक कठिनाई के कारण ही इस प्रकार का प्रस्ताव रखता है| ग्राम पंचायत के चुनाव में प्रत्याशी चयन के अवसर पर मंत्री जी को एक ऐसे नवयुवक की तलाश है जिसके पास ताकत हो लोगों को डराने वाली एवं खरीदने वाली| लखपतियाँ जैसे भ्रष्ट नेता मंत्री जी की तन-मन-धन से सेवा करने का आश्वासन देते हुए अपनी ताकत का वर्णन इस प्रकार करता है|

"लखतियाँ : ....सर में हाई स्कूल में सात बार फेल|
चाकू, छूरा, पिस्तौल, कट्टा, चलाने में होशियार
बम बनाने में इक्सपेर्ट| हड़ताल, घेराव, मारपीट
चोरी-चंडाली में इधर कोई मेरा सानी नहीं|
बस एक बार आपसे टिकट मिल जाये|

मंत्री जी लखपतिया की बातों को सुनकर गंभीर हो जाते हैं और मन ही मन में सोचते हुए कहते हैं-तुम जरूरत से ज्यादा आत्म सम्मान हीन आदमी हो- यह खतरनाक है मेरेलिए चालीस वर्षों से यही मेरा जीवन रहा है| इस प्रकार एक भ्रष्ट राजनीतिज्ञ अपने सामने दूसरे भ्रष्ट राजनीतिज्ञ को कभी उभरने नही देना चाहता है|

---

[1] कुसुम कुमार, रावणलीला, पृ : 59

दल-बदल राजनीती :- चुनाव जीतने के बाद स्वयं को सता में बनाये रखने के लिए ये नेता दल-बदल का सहारा लेते है|

मसखरा के शब्दों में - “इक्कीस साल में तेईस बार इसने दल बदली”[1]

इस प्रकार दल बदल के द्वारा ये राजनितिक पार्टी को तोड़ते हैं| इसलिए जीवन रुपी समाज रूपी धनुष जगह जगह से टूट गया है| इस एक धनुष से टूटकर सबको अलग अलग आज़ादी चाहिए, इसलिए हर पाँच वर्ष हम किसी को चुनने के लिए मजबूर हो जाते है| ये चुने हुए नेता बाढ़ या दैवी-विपत्ति में सरकार से प्राप्त सहायता को भी हड़प कर लोगों का शोषण करते है| इस प्रकार राजनीति के क्षेत्र में आये दिन चलने वाली कई पहलुवों को एक कर नाटक में उजागर किया है|

सामाजिक समस्यायें

भारत असंख्य गाँवों का देश रहा है| आज़ादी के बाद शहरी सभ्यता के साथ साथ गाँव पिछड़ते चले गये और शहरी होड़ में गाँव अपनी गरिमा परम्परा सम्पन्नता से वंचित भी होते गये| आर्थिक पराधीनता के सबसे बड़ा शिकार गाँव के लोग हैं| परिणामस्वरूप गाँव की मानसिकता किसी तरह अपने पेट को भरने के पीछे है|

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, राम की लड़ाई, पृ : 23

बेकारी :- बेकारी गाँव की आर्थिक कठिनाई का मुख्य कारण है| 'रावण लीला' नाटक में कलाकारों के बीच के संवादों से यह बात स्पष्ट होते है|

उदाहरण – "मारीच :- (रावण के कान के पास मुँह ले जाकर) यह चोरी
चक्कारी, हरामखोरी अपने पास से मत लगाये जा|
सिर्फ 'बेकारी' बोल| ज्यादा बढ़ता ही जा रहा है"[1]

आर्थिक कठिनाई के कारण लोक कलाकार एक मण्डली छोड़कर दूसरे और वहाँ से तीसरे इस प्रकार चक्कर लगाते रहते हैं| कुछ लोग नौकरी की तलाश में दिल्ली चला जाता है|

शोषण के विविध प्रकार

आम जनता-हक़ से वंचित :- आम जनता के रक्षक माने जाने वाले नेता लोगों द्वारा शोषण का चित्र राम की लड़ाई नाटक में हैं| आम आदमी द्वारा चुने हुए नेता बाढ़ या दैवी-विपत्ति में सरकार से प्राप्त सहायता को किस पुरुषार्थ से डकार जाते हैं उसकी ओर संकेत करते हुए मसखरा नेताई से कहता है –

"आपको कौन नहीं जानता, महाराज| सन् साठ में जब बडकी बाढ़ आयी थी, यही नेता बाबू जिला कलक्टर और एम. पी. को लेकर यहाँ आये थे मुआइना कराने| सरकार की तरफ से जो अन्न, कपडा मिला सब ऊपर-ही-ऊपर बेचकर

---

[1] कुसुम कुमार, रावणलीला, पृ : 59

खा लिया| घर बनवाने के लिए फी घर पाँच पाँच सौ रुपये दिए सरकार ने| यही शाहजी और नेताजी मिलकर हम से अंगूठा लगवाय लिया और सारी रकम हड़प कर गये|"[1]

आम आदमी – न्याय से वंचित :- नेताई और अन्य सेठ लोग मिलकर रामगुलाम की ज़मीन हड़प लेता है| न्याय माँगने पर गवाह पेश करने का प्रस्ताव रखता है| चीलर सिंह रामगुलाम से बोलता है

"चीलर सिंह : राम गुलाम के पास अपने हक़ को साबित करने के लिए कोई प्रमाण नहीं है|"[2]

यह कह कर न्याय निषेध करता है| मंत्री जी से न्याय माँगने के लिए आवेदन पत्र दिया था उस पर भी कोई जाँच पड़ताल नहीं हुई उल्टा रामगुलाम को ही दोषी बताता है कि आवेदन पत्र में ही गलती कर दी|

"मंत्री : .... आवेदन पत्र जब हिन्दी में हो तो मैं क्या कर सकता हूँ? मेरी लाचारी आप लोग नहीं जानते| आखिर कोई तौर-तरीका होता है| पूछता हूँ – उस आवेदन-पत्र पर तुम्हारे एम.एल.ए, एम.पी. के दस्तखत थे?"[3]

इस प्रकार आवेदन पत्र देने के तरीके को गलत बताकर न्याय करने से इनकार कर देते हैं|

---

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, राम की लड़ाई, पृ : 13
[2] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, राम की लड़ाई, पृ : 15
[3] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, राम की लड़ाई, पृ : 61

ज़मीन्दार – शोषण :- 'राम की लड़ाई' नाटक में नेताई और चीलर सिंह शोषक वर्ग के रूप में चित्रित हैं| शाहजी में साहूकार वर्ग और चीलर सिंह में ज़मीन्दार वर्ग की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं| रामगुलाम और इनके बीच के बातचीत इस बात को साबित करते हैं| -

"शहजी : अभी तीन सौ पैतीस रूपये कर्ज है तेरे ऊपर|

चीलरसिंह : तेरा घर मेरी ज़मीन पर बना है|

रामगुलाम : गाँव की सारी ज़मीन अब ग्राम पंचायत की है|"[1]

दलित शोषण :- नीच जाति के होने से रामगुलाम से हमेशा नेता और अन्य तबके के लोग भेद भाव दिखाते हैं| रामगुलाम का उच्च वर्ग वाली 'बिमला' के साथ प्रेम संबंध, रामलीला में राम की भूमिका अदा करना ये सब नेताई को हज़म नहीं हो रहा है| नेताई रामगुलाम के खिलाफ षड्यंत्र बनाते हैं|

"नेताई : नीची जाति का रामगुलाम राम बने – मैं इस बात पर साप्रदायिक दंगें करा दूँगा| यह धर्म शास्त्र के खिलाफ है|"[2]

दलित कलाकार जब राम की भूमिका निभा रहे है तो बाकि लोगों को ईर्षा हो रहे है| 'रावण लीला' में भी हरिजन 'चंदुलाल' को उसकी औकात

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, राम की लड़ाई, पृ : 16

[2] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, राम की लड़ाई, पृ : 15

समझाने के लिए लीला से निकाल देते हैं| संचालक 'जगन्नाथ' इस प्रकार बोलता है

"जगन्नाथ : हमने कब इन्कार किया की वह अच्छा कलाकार नहीं था? वह अच्छा कलाकार था तभी हरिजन होते हुए भी उसको हमने अपनी रामलीला में सत्कार किया| उसे कुबूल कर लिया हमने| ....शायद उन्होंने यह समझ लिया था कि यहाँ पर चींटी और हाथी का फर्क कम कर दिया जाएगा| या पूरे इलाके में छुआछूत ख़तम कर दी जाएगी|"[1]

अशिक्षितों का शोषण :- अशिक्षित होने के कारण गाँव के लोग सेठ जमीन्दार लोगों पर ही निर्भर रहता है| उल्टा वे इन्हें लूटना है| रावण लीला में अशिक्षित गाँव वाले रामलीला देखने के उत्साह से चंदा इकठ्ठा करते हैं और हर बार उन पैसों को सेठ धरमचंद को सौपता है| धरमचंद उन पैसों को अपनी ओर से समितियों को देते हैं और नाम कमाते हैं|

स्त्री शोषण :- स्त्रियों पर होने वाले शोषण का प्रत्यक्ष उदहारण नाटक में नहीं है| लेकिन नेता लोगों द्वारा चुनाव के समय लड़कियाँ बेचने जैसा अनैतिक कार्य करते हैं इसका उल्लेख 'राम की लड़ाई' में मसखरा करते हैं -

---

[1] कुसुम कुमार, रावणलीला, पृ : 20

"मसखरा : ऐसा है कि विमला कहती थी, आप लड़कियाँ बेचने का धंधा करते हैं|"[1]

विरोधी स्वर :- विगत तीस पैतीस वर्षों में आज़ादी के उपरांत समाज को तोड़ने बाँटने और अपवित्र करने की जो प्रक्रिया चल रही है उसके प्रभाव-रूप जीवन में भय, क्रोध, हिंसा, नफरत, दुख, निराशा आदि का समावेश हो गया है| समाज को इन सब से मुक्त कराने के लिए एक एक व्यक्ति को आपस में मिल कर तथा जुड़कर चलना होगा 'राम की लड़ाई' में सरजू रामगुलाम से इसके लिए आह्वान करते है|

> "सरजू : .... जीते हो दरिद्रता, करते हो अन्याय, बात करते हो की आज़ादी का राम और कृष्ण ने युद्ध किए है फिर पायी है स्वतंत्रता| उठाओ धनुष, फल प्राप्त करो राम| नष्ट हो सारी दरिद्रता|"[2]

'राम की लड़ाई' नाटक में नाटककार धनुष यज्ञ प्रसंग के माध्यम से यह संप्रेषित करना चाहता है कि वर्तमान में वही पुरुष जीवन और समाज का बीड़ा उठा सकता है जिसने सागर मंथन रूपी विषम परिस्थितियों से उत्पन्न कटु-अनुभूतियों पर अधिकार करके व्यक्तित्व को निखारा है| इस प्रकार नाटककार परिवर्तन के लिए राम को युद्ध की प्रेरणा देकर समाज में व्यवस्था स्थापित करने की उद्घोषणा देते हैं|

---

[1] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, राम की लड़ाई, पृ : 15

[2] डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, राम की लड़ाई, पृ : 25

निष्कर्ष

रामलीला और रासलीला लीलापरक लोकनाट्य रूप है| लीलाओं में कृष्ण और राम की कथा प्रस्तुत होती है| लीला नाटकों का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन है|

हिन्दी नाटक के क्षेत्र में लीला नाटकों का प्रवेश एक महत्व पूर्ण घटना है| हिन्दी के प्रमुख रचनाकार भारतेंदु जी और उनकी मंडली लीला नाट्यों के महत्व को समझा और उससे प्रभावित हुए| आगे चलकर अन्य प्रमुख लेखकों की दृष्टि लीला नाट्यों पर पडा| इस प्रकार लीला से प्रभावित नाटकों की रचनाएँ हिन्दी नाट्य क्षेत्र में हुई| कोई भी साहित्यकार जब अपना कृति में किसी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक कथा को प्रस्तुत करता है तो उसका उद्देश्य घटनाओं या प्रसंगों की पुनरावृत्ति मात्र करना नहीं होता अपितु समसामयिक दृष्टि से उसकी पुनर्व्याख्या और पुनर्मूल्यांकन होता है|

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, जगदीश चन्द्र माथुर, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, कुसुम कुमार आदि लेखकों ने अपनी रचनाओं में समसामयिक राजनीतिक और सामाजिक पहलुवों को व्यक्त करने का प्रयास किया है| इस कोशिश में लीला नाटकों ने उनका साथ दिया है| आज युग बदल चुका है| आज के रंगकर्मियों के लिए ये ज़रूरी है कि वह लोकमंच से प्रेरणा ग्रहण करे और सामयिक संदर्भों के अनुकूल इन विधाओं पर कार्य करें|

****

चौथा अध्याय

पाँचवाँ अध्याय

अन्य लोकनाट्य शैलियों पर केंद्रित हिन्दी नाटक

अन्य लोकनाट्य शैलियाँ

नाचा-उत्भव

नाचा छत्तीसगढ़ की पूर्ण विकसित सर्वजातीयरंग विधा है| नाचा का उद्भव एवं विकास छत्तीसगढ़ के ग्रामीण समाज में हुआ है| परंपरागत विधाओं ने उसे समृद्ध किया है| इसके विकास का इतिहास बहुत प्राचीन नहीं है| मराठों के इस क्षेत्र पर आधिपत्य स्थापित करने के पश्चात इस नाट्य विधा का उद्भव हुआ है|

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में मराठों, महाराष्ट्रीय ब्राह्मणों और ब्राह्मणेतर जातियों की एक बड़ी संख्या छत्तीसगढ़ में आकर बस गई| मराठी फौजों के साथ उनके मनोरंजन करने वाले विभिन्न समुदाय भी थे| जिनमें नाचने गाने वाले कलाकार एवं हास्य गम्मत प्रहसन आदि प्रस्तुत करने वाले लोग भी सम्मिलित थे| गम्मत शब्द का प्रयोग मराठी भाषा में हास्य विनोद के अर्थ में किया जाता है| गम्मत में स्त्री पात्र की प्रस्तुति पुरुष कलाकार द्वारा की जाती थी| गम्मत का यह पात्र 'नाच्या' कहलाता था| गम्मत के इस नाच्या पात्र के आधार पर ही छत्तीगढ़ी गम्मत के विकसित नाट्य स्वरूप का नामकरण 'नाचा' के रूप में पड़ा|

नाचा में गम्मत का योगदान महत्वपूर्ण है| इसके बारे में निरंजन महावर जी कहते हैं – "नाचा में गम्मत का स्थान आज भी अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसकी

प्रस्तुति नाट्य के बीच-बीच में हास्य प्रहसन के रूप में की जाती है, तो कभी प्रमुख नाट्य को आगे बढ़ाने एवं अगले दृश्य की तैयारी हेतु कलाकार को समय उपलब्ध कराने हेतु| ऐसा प्रतीत होता है कि नाचा का आरंभिक स्वरूप की गम्मत ही रहा होगा, जो कालान्तर में नाचा के रूप में एक पूर्ण विकसित नाट्य विधा के रूप में हुआ होगा|"[1]

नाचा नाट्य स्वरूप को विकसित करने में गाण्डा जाति के संगीतकारों ने भी अहम् भूमिका निभायी है| गाण्डा जाति छत्तीसगढ़ की एक पिछड़ी जाति है जो ग्रामीण क्षेत्र में शादी-विवाह एवं अन्य उत्सवों के अवसरों पर ग्रामीण संगीत बैण्ड के रूप में काम करती है| नाचा के आरंभिक विकास में इन गाण्डा नर्तकों ने एक महत्वपूर्ण भूमिका और इन नचकारों और बजैय्यों ने नाचा को अपने योगदान से समृद्ध किया है|

नाचा – विकास

बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में नाचा छत्तीसगढ़ में मनोरंजन का एक महत्वपूर्ण साधन बन चुका था| नाचा के प्रति लोक में आकर्षण के फलस्वरूप इस क्षेत्र के अनेक मालगुजार इस नाट्य विधा की ओर आकर्षित हुए| छत्तीसगढ़ के ग्रामीण अंचल के ये सम्पन्त मालगुजार अपने अपने यहाँ शादी-विवाह, पुत्र-जन्म आदि उत्सवों पर देवार युवतियों को नृत्य प्रदर्शन हेतु बुलाते थे| जब कुछ प्रबुद्ध मालगुजारों की रुचि नाचा की ओर आकर्षित हुई तब उन

[1] निरंजन महावर, नाचा - नाटक के सौ बरस, पृ : 232

लोगों ने इन देवार कन्याओं को नाट्य में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया| इस प्रकार स्त्री पात्रों का प्रवेश नाच नाट्य प्रसंगों में होने लगा|

मण्डलियों का गठन

नाचा में रुचि रखने वाले कोई भी व्यक्ति अपना पहल कुछ ग्रामीणों को जिनकी रुचि प्रस्तुतियों में हो, जुटाकर एक मण्डली का गठन कर लेता है| इस प्रकार वाद्य, संगीत, अभिनय में निपुण कलाकार एकत्र होकर नाट्य प्रस्तुतियों के लिए राशी एवं सामान एकत्रित करते हैं| नाचा पार्टी के गठन के बाद नाचा के कथानक पर भी काम शुरू करते हैं| इस प्रकार कम से कम समय में नाट्य प्रस्तुतियाँ तैयार होती हैं|

प्रमुख कलाकार

नाचा में संलग्न अधिकांश कलाकार छोटे किसान या कृषि मज़दूर हैं| ठाकुर राम, लालुराम, मदन निषाद, रामलाल, द्वारका भुलवाराम, अमर सिंह, फिदाबाई, किस्मत बाई, माला बाई आदि अनेक कलाकार इससे जुड़े हुए थे| नाचा के प्रमुख कलाकार और निर्देशक के रूप में हबीब तनवीर का नाम लिया जाता है| महासिंह चंद्राकर, रामचन्द्र, देशमुख आदि अनेक निर्देशक भी इससे जुड़े हुए थे|

माच

'माच' मध्यप्रदेश और राजस्थान में प्रचलित लोकनाट्य विधा है| 'माच' को माच बूसके मंच की विशिष्टता के कारण कहा गया होगा| माच शब्द संस्कृत का अपभ्रंश रूप माना जाता है| वैसे तो मालवा में आज भी माच शब्द से मिलते जुलते शब्द है – जैसे मचान, माचा, माचली आदि| माचा का अर्थ खाट पलंग से है जो सुतली से बना होता है| मचान शब्द हिन्दी में मकान के निर्माण कार्य में प्रयुक्त होता है, जो बल्लियों एवं लकड़ियों के तख्तों की सहायता से बनाया जाता है| माच का मंच इतना ऊँचा होता था और लकड़ियों के तख्तों से बना होता था| इस लिए यह नाम पड़ा होगा|

माच के उद्भव के पीछे बहुत लम्बी परंपरा है| कहा जाता है कि ढारा-ढारी का खेल का पुर्नगठित रूप माच है| ढारा-ढारी के अंतर्गत वीर कथाओं की प्रस्तुति होती थी| ये लोग नृत्य, गीत , अभिनय में माहिर होते थे और इनके द्वारा प्रस्तुत खेल को ढारा-ढारी का खेल कहा जाता था| माच की प्रस्तुति को भी खेल कहा जाता है| माच के मंच संगीतात्मक होते हैं| इसके पीछे ख्याल मंच का प्रभाव माना जाता है| इस प्रकार माच के आरंभिक समय के बारे में डॉ. वशिष्ट नारायण त्रिपाठी जी लिखते है – "माच प्रायः दो सौ वर्ष या दो सौ पचास वर्ष से ज्यादा पुरानी नाट्य परंपरा नहीं है| इसका प्रारंभ चाहे जब हुआ हो,

किंतु इसका ज्ञान प्रचलन उत्तर मध्यकाल के प्रायः अंतिम चरण में दिखाई देता है|"[1]

माच के उद्भव के पीछे गरबा गीतों की भूमिका भी कहीं कहीं प्रचलन में है साथ ही तुर्राकलंगी का प्रभाव भी कम नहीं है| ख्याल लोकनाट्य भी माच की उत्पत्ति के सबसे महत्वपूर्ण सहयोगी माने जाते हैं| ख्यालों से माच लिखे जाते थे उनके नाम के आगे 'ख्याल' लिखा जाता था| इसके अतिरिक्त नकल स्वांग आदि का भी माच में योगदान रहा है| इस प्रकार माच के प्रारंभिक रूप की परंपरा बहुत लम्बी है| माच के उद्भव परंपरा के संबंध में डॉ. नीना शर्मा की टिप्पणी इस प्रकार है –

"अनेक प्रवृत्तियाँ स्थितियाँ समाज में चलती है, एक मिटती है तो उसकी जगह दूसरी आती है और इसी निर्माण एवं निर्वाण की प्रक्रिया में कुछ नष्ट हो जाता है, कुछ रह जाता है तथा कुछ नवीन आ जाता है| माच के निर्माण में भी यही हुआ उस पर ख्याल, स्वांग, ढारा ढारी, गरबा गीत, भाण आदि का प्रभाव रहा| किसी का ज्यादा किसी का कम, किसी का अंशतः और कुछ नवीन, इन्ही सब से मिलकर एक नई रंगशैली को जन्म मिला जिसे माच कहा गया|"[2]

---

[1] डॉ. वशिष्ट नारायण त्रिपाठी, भारतीय लोकनाट्य, पृ : 105

[2] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों म लोकनाट्य के प्रभाव का अनुशीलन, पृ :33

माच-मंडली, प्रमुख कलाकार

माच की प्रस्तुति को 'खेल' कहा जाता है और इसकी मंडली को अखाडा कहा जाता है| माच का खेल अखाड़ों द्वारा आयोजित होता था| माच मंडलियाँ अपने मंचन को एक दूसरे की प्रतिद्वंद्विता में ली जाती थी और प्रेक्षकों को भी यह रीति पसन्द थी| माच के कलाकारों के कई नाम प्रचलन में हैं| "गुरु गोपाल जी', 'बाल मुकुंद गुरु', 'भेरुलाल गुरु', 'कालूराम उस्ताद', 'राधाकिशन जी' आदि का नाम प्रारम्भिक प्रवर्तकों में उल्लेखनीय है| बाद में श्री सिध्देश्वर सेन जी' का नाम सर्वाधिक प्रसिध्द हुआ| इनके द्वारा कई समस्या मूलक माच की रचना हुई है| वर्तमान में विविध मण्डलियों द्वारा 'माच' का आयोजन होती रहती है|

ख्याल

राजस्थान में प्रचलित लोकनाट्यों में ख्याल का अपना प्रमुख स्थान है| श्री देवीलाल सांमर का कथन है "राजस्थान में ख्यालों की परंपरा लगभग 300 वर्ष पुरानी है| ये ख्याल यहाँ की मूल उपज नहीं है| ऐसा कहा जाता है कि आगरा के निकट ख्यालों की एक लोकधर्मी परम्परा प्रारम्भ हुई जिसका दायरा केवल काव्य-रचना तथा किसी ऐतिहासिक तथा पौराणिक व्यक्ति से सम्बंधित

रचना की प्रतियोगिता तक सीमित था| यही परम्परा प्रथम बार 18वी शताब्दी में राजस्थान के जनजीवन को आह्लादित कर रही है|”[1]

ख्याल की उत्पत्ति ‘आगरा’ के आसपास मानी जाती है| यह आगरा में प्रचलित नाट्य भगत का ही प्राचीन रूप है| कुछ विद्वानों के मत में ख्याल की परंपरा 10वी शताब्दी से है| इस तरह ख्याल की प्राचीनता में कोई संदेह नहीं है| ख्याल सर्वप्रथम कल्पना और विचारों से उत्पन्न कवित्व रचना का ही दूसरा नाम था परन्तु जब से यह रंगमंच पर खेल-तमाशे का रूप धारण करने लगा यह ‘खेल’ या ख्याल कहलाया गया|

ख्याल के प्रकार

ख्याल के कई प्रकार प्रचलित हैं| श्री महेंद्र भानावत जी ने ख्याल के 26 प्रकार की सूचि बताई हैं| ख्याल के प्रकारों में माच के ख्याल तुर्राकलंगी के ख्याल, कुचामणी ख्याल, शेखावटी ख्याल, चिडावी ख्याल, नौटंकी ख्याल, मेवाड़ी ख्याल, अलीबक्षी ख्याल, किशनगढ़ी ख्याल, रम्मती ख्याल, जयपुरी ख्याल, कठपुतली ख्याल, दांगलिक ख्याल, डोडिया ख्याल, हाथरसी ख्याल, गन्धर्वी ख्याल, नागौरी ख्याल, कड़ा ख्याल, अभिनय प्रधान ख्याल, कथावाचनी ख्याल, चोबोला ख्याल, झाडशाही ख्याल, दांताराम गढ़ी ख्याल, मारवाड़ी ख्याल, समया ख्याल, फगुवा ख्याल आदि आते हैं|

---

[1] डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा, मालवां का लोकनाट्य माच और अन्य विधाएँ, देवीलाल सांमर, भारतीय लोकनाट्य और माच, पृ : 14

कुचामणि ख्याल

ख्याल के कई प्रकार प्रचलित हैं| सभी प्रकारों की अपनी कुछ विशेषताएँ हैं| कुचामणि ख्याल अपने मज़ाकिया पात्र एवं हास्य कथानक के लिए प्रसिद्ध है| कुचामणि ख्याल में मज़ाकिया पात्रों की संख्या अधिक होती है| कथानक का विषय भी ज्यादा गंभीर न होकर हास्यास्पद होता है| हँसी-मज़ाक के माहौल के कारण यह ख्याल दर्शकों में ज्यादा लोक प्रिय है|

कीर्तनिया

मिथिला के धार्मिक मंच के रूप में 'कीर्तनिया' लोकनाट्य प्रचलित है| यह अन्य लोकनाट्य की भाँती लोकप्रिय नहीं है| यह परंपरा राजवंश की मानी जाती है| कीर्तनिया के उद्भव के बारे में डॉ. बशिष्ठ नारायण त्रिपाठी ने इस प्रकार लिखा है – "आगरा के आसपास दो नाट्य परंपराओं का विकास अकबर के ज़माने से हुआ| एक भगतियों की परंपरा थी जिसमें बहुरुपियायी वस्त्र पहनकर असाधारण वातावरण की सृष्टि करते थे| दूसरी परंपरा कीर्तनिया ब्राह्मणों की थी जो बच्चों को गोपियों के रूप में सजाकर कृष्ण चरित्र गाते थे|"[1]

यह नाटक धार्मिक है| इसमें कीर्तन गाने की प्रथा है| मंदिरों में आयोजन करके कीर्तनिया में भक्तजनों को वाणियाँ सुनाने की प्रथा थी| वाणियों के आगे

[1] डॉ. वशिष्ट नारायण त्रिपाठी, भारतीय लोकनाट्य, पृ : 103

व्याख्या भी देते थे| इस प्रकार यह शैली विशेष अवसरों पर आयोजित करती थी| इसलिए इसकी ज्यादा लोकप्रियता नहीं थी|

प्रमुख रचनाकार और रचनाएँ

हबीब तनवीर : हबीब तनवीर बहुमुखी प्रतिभावान कलाकार थे| वे कवि, पत्रकार, नाट्य निर्देशक तथा अभिनेता थे| हबीब तनवीर ग्यारह वर्ष की उम्र से ही अभिनय करते थे|लोकशैली के लिए इनके मन में पहले से ही एक प्रकार का झुकाव था| छतीसगढ़ी लोक नाट्य को अपनाते हुए उन्होंने रंगकर्म शुरू किया| 1958 में ‘नाचा’ के कलाकारों को लेकर ‘मिट्टी की गाडी’ का मंचन लोकशैली में किया| उनके सबसे महत्वपूर्ण नाटक है ‘चरनदास चोर’|

चरनदास चोर : ‘चरनदास चोर’ नाटक मध्यप्रदेश के छतीसगढ़ अंचल की लोकशैली ‘नाचा’ में ढाला गया है| राजस्थान लोककथा पर आधारित यह नाचा हबीब जी के सबसे मशहूर नाटक है| प्रस्तुत नाटक के बारे उन्होंने भूमिका में इस प्रकार लिखा है – “चोर की राजस्थानी लोककथा पर नाटक तैयार करने का ख्याल मुझे सबसे पहले 1974 में आया| विजयदान देथा ने मुझे ये कहानी ज़बानी सुनाई थी| बस इस कहानी ने मेरे दिमाग में जड पकड ली|”[1] नाटककार ने प्रस्तुत लोककथा को नाट्य रूप में ढाला| प्रारंभ में यह नाटक छतीसगढ़ी में लिखा गया था बाद में खड़ीबोली में| इसमें राजनैतिक, सामाजिक व्यवस्था का चित्रण किया गया है| इस कथा में चोर अपने गुरु को चार वचन दे

---

[1] हबीब तनवीर : चरनदास चोर, भूमिका से

बैठता है और साथ ही सत्य बोलने की कसम खाता है और उसका यही बोलना उसकी मौत का कारण बनता है| वर्तमान में आदमी जब तक बेईमानी का चोला पहनकर घूमता है तब तक वह इस समाज की विषैली व्यवस्था के बाणों से बचा रहता है| जहाँ उसने सत्य को अपनाया वही से सब कुछ ख़तम हो जाएगा| इसी सामाजिक सत्य का उद्घाटन श्री हबीब तनवीर जी 'नाचा' शैली के द्वारा 'चरनदास चोर' नाटक में दिखाया है|

डॉ. शंकर शेष : डॉ.शंकर शेष आधुनिक हिन्दी नाटक का सशक्त हस्ताक्षर हैं| उन्होंने नाटकों का सिर्फ सृजन ही नहीं किया बल्कि मंचन भी| नाट्य लेखन, निर्देशन तथा मंचन आदि सभी क्षेत्रों के उनका मौलिक योगदान रहा है| उनके उच्चस्तरीय नाटक लेखन का प्रमाण है 'पोस्टर' नाटक|

पोस्टर : 'पोस्टर' महाराष्ट्र की कीर्तनिया शैली में लिखा गया नाटक है| डॉ. शंकर शेष ने लोकशैली कीर्तनिया के माध्यम से 'पोस्टर' नाटक में निम्न एवं मज़दूर वर्ग पर होने वाले शोषण की कथा प्रस्तुत की है| इस नाटक में कथा दो स्तर पर चलती है| दोहरी कथा के माध्यम से नाटककार यह बताते हैं कि कथा की घटना सर्व व्याप्त है| साथ ही एक जागृति का संदेश भी नाटककार देते हैं|

मणि मधुकर : प्रयोग धर्मी नाटककारों में मणि मधुकर प्रमुख है| मणि मधुकर ने यथार्थवादी रंगशिल्प के बंधे बंधाये ढाँचे को तोड़ते हुए हिन्दी रंगमंच को अधिक व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया| मणि मधुकर जी अपनी रचनाओं के द्वारा, सामाजिक, धार्मिक एवं नैतिक विसंगतियों को

उजागर करने का प्रयास किया है| लोकशैली के प्रयोग से चर्चित उनका प्रमुख नाटक है 'दुलारी बाई'|

दुलारी बाई : लोकनाट्य शैली के नाटकों की श्रृंखला में राजस्थान के 'कुचामणि ख्याल' की रंग परंपरा से रंजित नाटक 'दुलारी बाई' बहुत ही चर्चित नाटक रहा है| यह ऐसा नाटक है जो गाँव और शहर दोनों माहौल के लिए बिलकुल रोचक है| प्रस्तुत नाटक में हास्य के साथ साथ मधुकर जी ने गंभीर विषय का भी निर्वाह किया है| पूरे नाटक का आधार एक जूता है| यहाँ 'जूता' परंपरा के प्रतीक के रूप में है| जिस परंपरा को हम छोड़ नहीं सकते उसको छोड़ने की कोशिश में लगी एक कंजूस औरत की कथा है 'दुलारी बाई'|

डॉ. विलास गुप्ता :- डॉ. विलास गुप्ता ने अपने दायित्व पूर्ण, सार्थक और प्रभावशाली लेखन से आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक श्रेष्ठ नाटककार के रूप में अपनी पहचान और महत्ता स्थापित की है| इन्होंने अपने नाटकों में सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं, विषमताओं, विकृतियों एवं असंगतियों पर खुलकर प्रहार किया| लोकशैली प्रयोग में इनकी विशेष रूचि के कारण 'माच' लोकशैली पर लिखा गया नाटक है 'आदमी का गोश्त'|

आदमी का गोश्त : इस नाटक में डॉ. विलास गुप्ता ने मध्यप्रदेश के मालवा की लोकनाट्य शैली 'माच'का प्रयोग किया है| वर्तमान स्थितियों में भड़कने वाले आदमी का चित्रण प्रस्तुत नाटक में है| एक ही कथा अंत तक चलती है बल्कि एक से अधिक कथाओं का मिश्रित रूप है यह नाटक| माच शैली

की शैलीगत विशेषताओं के तहत प्रस्तुत नाटक की उद्देश्य पूर्ति कराने की कोशिश नाटककार ने की है|

शैलीगत विश्लेषण

चरनदास चोर – नाचा शैली

पात्र

नाचा के आरंभिक काल में पुरुष कलाकार अभिनय करते थे| पुरुष एवं स्त्री पात्रों का अभिनय पुरुष पात्र ही करते थे| वर्तमान में भी अनेक नाचा मण्डलियों में यह परंपरा कायम है| स्त्री कलाकारों के शामिल होने के फलस्वरूप नाचा को एक नया आयाम हासिल हुआ| ये स्त्री कलाकार देवार जाति की युवतियाँ थीं जिनका पेशा ही नाचना गाना था|

नाचा के परंपरागत पात्रों में दो जोक्कड़, परि और दो नजरिये होते थे| परि एवं जोक्कड़ का खेल नाचा के पूर्वरंग में होते हैं| नज़रिया का नृत्य भी पूर्वरंग में होता है| नज़रिया नृत्य करने वाले दो पात्र हैं जो स्त्री वेश में पुरुष कलाकार ही करते हैं| नज़रिया और जोक्कड़ मिल कर विघ्न विनाशक भगवान गणपति की आराधना करते हैं| तत्पश्चात देवी सरस्वती की आराधना करते हैं| इसके पश्चात नाट्य आरंभ होता है|

'चरनदास चोर' नाटक में नाचा लोकशैली का उपयोग किया गया है| चरनदास चोर के सारे पात्र सामाजिक परिवेश के हैं| जिनमें चरनदास, हवलदार, सेठानी,मालगुलज़ार, पुजारी, किसान आदि प्रमुख हैं| ये सब हमारे

आसपास के माहौल के ही हैं| चरनदास चोर में नायक एक चोर है| इस नाटक में पात्रयोजना इस प्रकार है कि एक पात्र से एक से अधिक पात्रों की भूमिका का निर्वाह कर सकती है, क्यों कि कई पात्र नाटक में ऐसे है कि जो एक बार मंच पर आते हैं फिर नहीं| यानी मुख्य पात्रों के अलावा जो भी पात्र हैं उनकी एक दो लोगों से करवाया जा सकता है|

वेशभूषा एवं मुखसज्जा

नाचा पात्रों की वेशभूषा सामान्य ग्रामीणों जैसी ही होती है| पात्रों का मेकअप स्थानीय सामग्री के उपयोग द्वारा कम से कम खर्च में निपटाया जाता है| हल्दी, कुंकुम, सफ़ेद छूई मिट्टी, संगजीरे का चूर्ण तथा काजल की कालिख आदि से कलाकारों की सज्जा की जाती है| चरित्रों के अनुरूप और कभी कभी नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने की दृष्टि से नकली जटा-जूट, दाढ़ी-मूंछों का भी प्रयोग किया जाता है| ओठों पर लिपस्टिक और आँखों में गहरा काजल लगाए जाते हैं|

'चरनदास चोर' नाटक में पात्रों की वेशभूषा पात्रानुकूल है| सारे पात्र सामाजिक परिवेश से जुड़े होने के कारण साधारण वेशभूषा से काम चलाया जा सकता है| रानी, मंत्री आदि पात्रों के लिए विशेष वेशभूषा की ज़रूरत होती है| गुरुजी, पुरोहित आदि पात्रों की वेशभूषा में सादगीपन की ज़रूरत है|

लोकशैली में आने वाली तड़कीली भड़कीली मुखसज्जा से हटकर 'चरनदास चोर' में पात्रों की मुखसज्जा भी किसी विशिष्टता की माँग नहीं करती| रानी का पात्र थोडा विशिष्ट मुखसज्जा और साजसज्जा के साथ सामने आता है|

गुरु के लिए दाढ़ी, जटा आदि का उपयोग किया हुआ है| अन्य पात्रों की मुखसज्जा के द्वारा इस नाटक को मंच पर मंचित किया हुआ है| इसी प्रकार 'चरनदास चोर' पात्र योजना एवं वेशभूषा की दृष्टि से लोकनाट्य परंपरा का निर्वाह करता है|

भाषा एवं संवाद

नाचा नाट्य का कथानक एवं उसके संवाद लिपिबद्ध नहीं होते| सभी पात्रों को अपना अपना संवाद तथा पाठ ज्ञात है| बहुत से संवाद तो वे अपनी ओर रच भी लेते हैं| उन्हीं के अनुरूप अभिनय भी प्रस्तुत कर लेते हैं| नाचा प्रमुख रूप से हास्य प्रधान नाट्य स्वरूप है| छतीसगढ़ी ग्रामीण समाज में जबरदस्त हास्यवृत्ति विद्यमान है जिसकी सहज अभिव्यक्ति नाचा और गम्मत में परिलक्षित होती है|

श्री हबीब तनवीर का नाटक 'चरनदास चोर' छतीसगढ़ अंचल की 'नाचा' शैली पर आधारित है| इसलिए नाटक में स्वाभाविक रूप से अंचल विशेष का प्रभाव आता है –

"हवलदार : अऊ का करबे कथस रे? साले तोर हाथ गोंड ला काटके तिड़ी-बिडी बगरा हूँ वेटा

चोर : (रोते हुए) मैं मरगैव मोर ढाई मोर हाथ गोड सब तिड़ी-बिडी बगरे रही जी| अऊ का करबे महाराज|”[1]

इस प्रकार की बोलचाल की भाषा के प्रयोग नाटक में जगह जगह पर हुए हैं| नाचा शैली में संवाद छोटे छोटे होते हैं, व्यंग्य से भरे हुए भी| नाटक में एक जगह मंत्री रानी से चोर के बारे में शिकायत कर रहा है|

“मुनीम : चोर तो भागगे रानी दाई|

रानी : चोर चोरी बाद भाग जही नई ता, एक जगह खड़े रीहि की आ मोला पकड़ के कहिके, या महल के ओंटा-कोंटा में छुपे होही कइसे मंत्री जी|”[2]

नाटक में छतीसगढ़ी भाषा का ही प्रयोग हुआ है| संवाद इतने सरल हैं कि दर्शकों को अपनी दिमाग पर ज़ोर नहीं देना है| विशिष्ट पात्रों की भाषा भी सामान्य लोगों जैसी ही है| रानी, मंत्री, गुरूजी आदि की भी भाषा लोकभाषा है|

रानी : का हेके सरकारी खजाना में चोरी हेगे?

मंत्री : हौव

रानी : कब चोरी होइस

मंत्री : अभीच्चे”[1]

---

[1] हबीब तनवीर, चरनदास चोर, पृ : 30

[2] हबीब तनवीर, चरनदास चोर, पृ : 64

नाटक में लोकबोली का भी प्रयोग देख सकते हैं| साथ ही लोकोक्तियाँ और मुहावरों का भी प्रयोग जगह जगह हुआ हैं|

"सब बीमारी एक दवाई", "साँप सूंघ गया", कर्म फूट गये"|

आदि उदहारण है

इस प्रकार की लोकोक्तियों एवं मुहावरों के माध्यम से नाटक को जनसामान्य से अधिक निकट लाने का प्रयास भी है| भाषा एवं संवाद की दृष्टि से 'चरनदास चोर' नाटक 'नाचा' शैली के एकदम अनुरूप साबित होते हैं|

गीत एवं संगीत

'नाचा' शैली में नृत्य एवं गीत का बड़ा महत्व है| गाण्डा जाति के संगीतकारों की अहम् भूमिका नाचा में है| नाचा के कलाकार गीत, संगीत, नृत्य आदि में माहिर है| कृषक एवं मज़दूर लोगों की नाट्य शैली में लोकगीतों का प्रयोग ही प्रचुर मात्रा में हुआ है|

'चरनदास चोर' नाटक में गीत संगीत की अहम् भूमिका है| नाटक को आगे बढ़ाने में संवादों के साथ साथ गीतों का भी महत्वपूर्ण स्थान है| डॉ. नीना शर्मा के अनुसार

---

[1] हबीब तनवीर, चरनदास चोर, पृ : 64

"इसके संवाद जहाँ नाटक को आगे बढ़ाते हैं वही गीत भी कथासूत्रों को जोड़ने एवं कथा को आगे बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण सहयोग देते है|"[1]

प्रस्तुत नाटक में बीच बीच में गीत एवं नृत्य का प्रयोग हम देख सकते हैं| नाटक में बच्चों के गीत के आधार पर भी एक गीत की रचना का उल्लेख हुआ है|

"अटकन मटकन दही चटकन

खोलो भैया मोर ढक्कन का चीज है|

बिलई रोगही मरगे कहिके मुसवा सब आवे

कोई चढ़े पीठ में कोई दिल्लगी लगावे

देख के बोला चुप्पे उडे दोगा मारे फटके बिलई ताके"[2]

'चरन दास चोर' नाटक में भजन का भी प्रयोग किया गया है|

"अब होगा नहीं कल्याण दी जो गुरु दक्षिणा|

बेकार गुणी का ज्ञान दी जो गुरु दक्षिणा||

दक्षिणा की गीत निभाने वही पावेगा|

यही जो समझा वो धोखा नइ खायेगा||

---

[1] डॉ. नीना शर्मा, आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन, पृ : 154

[2] हबीब तनवीर - चरनदास चोर - पृ - 30

ये गुरु दक्षिणा है महान दी जो गुरु दक्षिणा||[1]

नाटक में इस भजन के द्वारा नाटकार ने भ्रष्ट शिक्षा व्यवस्था पर चोट की है| नाचा लोकशैली में कोरस गीत हैं| "चरनदास चोर' नाटक में वैसा कोरस गीत भी मिलता हैं,

"सुनो सुनो संगवारी भाई मोर चरनदास नइसे

बड़े बड़े पैसा वाला सेठ साहूकार घर

जा-जा के वोहा चोरा थे

हमर असन घर में वो नइ करै चोरी"[2]

नाचा लोकशैली के गीतों की अपनी विशेषता है| नाचा में गीतों से कहानी आगे बढती है| कभी कभी नाटक की किसी घटना पर टिप्पणी भी करते है,

"एक चोर रंग जमाया जी --- सच बोलके

संसार में नाम कमाया ----

संसार में नाम कमाया जी सच बोलके

चोरी ही उसका नसीब था, पैसे वाला था| गरीब था

[1] हबीब तनवीर - चरनदास चोर - पृ - 34

[2] हबीब तनवीर - चरनदास चोर - पृ - 50

बस उसका ये किस्सा अजीब था सच बोलके ----|”[1]

यह गीत आगे नाटक की पूरी कथा पर टिप्पणी करता है| एक प्रण ने चोर की नसीब को कैसे बदला उस पर टिप्पणी है|

मंच एवं दृश्यविधान

नाचा का मंच अत्यंत साधारण कोटि का होता है| ग्रामीण परिवेश में उपलब्ध किसी भी उपयुक्त स्थान को मंच की तरह् काम में ले सकते है| गाँव का चौपाल या किसी बड़े किसान के घर के सामने का चबूतरा या किसी बड़े घर का आँगन पर नाचा की प्रस्तुति आसानी से की जा सकती है| मंच के बाई ओर संगीतकार बैठते है और मंच की तीन दिशाओं में दर्शक बैठते हैं| ‘चरनदास चोर’ नाटक की योजना साधारण एवं मुक्ताकाशी रंगमंच की मांग करती है| ‘चरनदास चोर’ नाचा नाट्यशैली पर आधारित है| नाचा शैली में खुले आसमान के नीचे मैदान में तख़्त डालकर पीछे पर्दा या चारों ओर से खुले मंच पर प्रदर्शन शुरू कर सकते | ठीक इस प्रकार ही ‘चरनदास चोर’ नाटक बिना किसी साज सज्जा के मुक्ताकाशी रंगमंच पर अभिनीत किया जा सकता है| यह नाटक दो अंकों में विभाजित है| हर एक अंक में पाँच दृश्य है| ‘चरनदास चोर’ के सभी दृश्य ऐसा है कि बिना किसी सजावट या पर्दों के यह नाटक खेल सकता है| यह भी एक सुविधा है कि किसी प्रकाश व्यवस्था के भी नाटक का मंचन हो सकता है|

---

[1] हबीब तनवीर - चरनदास चोर - पृ - 79

चरनदास चोर में पात्रों की योजना भी ऐसा है कि हर एक दृश्य का परिवर्तन पात्रों के प्रस्थान एवं प्रवेश से होता है| पूरे नाटक में गीत एवं नृत्य की योजना भी इस प्रकार है कि जिसके सहारे कई पात्र मंच पर आते हैं और चले जाते हैं| नाटक में ऐसा कोई दृश्य नहीं हैं जिसके मंचन में कठिनाई हो| इस प्रकार नाटक की मंचन-व्यवस्था लोकनाट्य के मुक्ताकाशी रंग परम्परा का निर्वाह करती है|

कथानक

नाचा मूलतः एक हास्य प्रधान नाट्य विधा है| इसमें ग्रामीण कलाकार अपनी तात्कालिक समस्याओं, सामाजिक बुराईयों एवं सामाजिक विसंगतियों पर कथानक बनाते हैं| नाचा के कथानकों की विशेषता निरंजन महावर के शब्दों में इस प्रकार है “नाचा की कथानकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें निराशा एवं कटुता लेश मात्र भी नहीं होती| जीवन के प्रति ललक एवं जीवन्त दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति सहज हास्यवृत्ति के माध्यम से प्रस्तुत की जाती है| कही भी ऐसा नहीं लगेगा कि कोई पात्र इस हेतु कर रहा है या उपदेश दे रहा है| सब कुछ सहज रूप से परत दर परत प्रकट होता जाता है|”[1] इस प्रकार कथानकों में ग्रामीण कलाकार अपने दैनंदिन जीवन की विसंगतियों एवं समस्याओं पर सहज हास्य एवं व्यग्यपूर्ण कटाक्ष एवं टिप्पणियाँ करते चलते हैं|

---

[1] निरंजन महावर - नाटक के सौ बरस - नाचा - पृ - 235

'चरनदास चोर' नाटक एक लोककथा पर आधारित है| इसमें राजनैतिक, सामाजिक व्यवस्था का चित्रण किया गया है| इस में चोर अपने गुरु को चार वचन दे बैठता है और साथ ही सत्य बोलने की कसम खाता है और उसका यही सत्य बोलना उसकी मौत का कारण बनता है| इस प्रकार 'चरन चोर' नाटक के शैलीगत विश्लेषण से यह पता चलता है कि नाटककार ने नाटक को पूरी तरह नाचा शैली में ढालने का सक्षम प्रयास किया है|

दुलारी बाई – कुचामणी ख्याल

पात्र

कुचामणी ख्याल अपने मज़ाकिया पात्रों के लिए मशहूर है| इसमें अन्य ख्यालों से भिन्न हँसी मजाक के लिए प्रमुखता दी जाती है| इसलिए प्रस्तुत ख्याल का कथानक भी हास्य पर आधारित होता है| कथा के अनुरूप ख्याल में मज़ाकिया पात्रों की संख्या भी एक से अधिक होती है|

कुचामणी ख्याल पर आधारित आधुनिक नाटक 'दुलारी बाई' में पात्रों की संख्या अधिक नहीं है| इस नाटक के पात्र बिलकुल साधारण स्तर के हैं| जैसे ननकू मोची, दुलारी बाई, कल्लू, कटोरीमल, पटवारी आदि| नाटक के पात्र योजना इस प्रकार है कि एक ही पात्र द्वारा कई पात्रों की भूमिका का निर्वाह करता है| इस बात का खुलासा दर्शकों के सामने नाटककार ने संवाद द्वारा किया है| इसका उदाहरण है,

"दुलारी :- ठीक है| देखो अपनी नाट्य मण्डली में कुल
पाँच जन है - एक दो तीन चौथा वो सूत्रधार
और पाँचवा जाने क्या नाम है उसका लेकिन नाटक
में पात्र कई है| मुझे तो शुरु से आखिर तक
दुलारी बाई ही बने रहना है, तुम तीनों को
तमाम पत्रों की एक्टिंग करनी है, नाम बदलकर|"[1]

कुचामणी ख्याल की और एक विशषता यह है कि उसके पात्र पहले मंच पर आकर अपना परिचय देते हैं|

"पहला व्यक्ति :- (दर्शकों से) मैं हूँ गाँव का पटेल सरपंच|

दुसरा व्यक्ति :- अरे भाई म्हारा नाम है गंगाराम जाट पटेल
जी खास आदमी हूँ बस अब तम्म अब
जणे इस नाटक में म्हारा काम देखो|
पसन्द आए तो ठीक नहीं तो मन्ने किसी
लाटस्याव की भी परवा नहीं|"

[1] मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ : 15

इस प्रकार प्रत्येक पात्र दर्शकों से अपना परिचय खुद देता है| साथ ही दर्शकों से सीधे बातचीत द्वारा उनसे संबंध भी स्थापित कर लेते हैं| कुचामणी ख्याल की सबसे बड़ी विशेषता है उसके मज़ाकिया पात्र हास्य प्रधान कथानक दुलारी बाई में भी हास्य का भरपूर उपयोग हुआ है साथ ही सारे पात्र मज़ाकिया अन्दास से अपना पार्ट करते हैं|

वेशभूषा एवं मुखसज्जा

कुचामणी ख्याल में मज़ाकिया पात्रों की भूमिकायें ज्यादा होती है| इसलिए वेशभूषा में ज्यादा गंभीरता नहीं होगी| प्रस्तुत नाटक दुलारी बाई में सभी पात्र सामाजिक परिवेश के ही पात्र हैं इसलिए पात्रों की वेशभूषा सामाजिक एवं पात्रोचित है|

दुलारी बाई के लिए लहंगा, ओढनी का उपयोग कर सकते हैं एवं पुरुष पात्रों के लिए धोती, कुर्ता, चूड़ीदार या पायजामा आदि का उपयोग कर सकते हैं| दुलारि बाई में वेशभूषा इतना महत्त्व नहीं रखती है| साधारण मेकअप द्वारा नाटक खेला जा सकता है| इस प्रकार दुलारी बाई नाटक पात्रयोजना एवं वेशभूषा की दृष्टि से कुचामणी ख्याल के प्रभाव से युक्त है|

भाषा एवं संवाद

कुचामणी ख्याल में हास्यास्पद कथानक होता है| ख्याल की भाषा राजस्थानी या उससे प्रभावित है| ख्याल में मज़ाकिया संवादों की अधिकता प्रकट होती है| दुलारी बाई नाटक कुचामणी ख्याल से प्रभावित है| प्रस्तुत नाटक में खड़ीबोली भाषा का प्रयोग किया गया है| नाटक की भाषा राजस्थानी एवं पारसी शैली से प्रभावित भी है| इस बात का जिक्र स्वयं नाटक के पात्र करते हैं|

"सूत्रधार :- (प्रवेशकर) अब में ननकू मोची का पार्ट करूँगा

लेकिन डायलाग बोलने का अपना स्टाइल

वही रखूँगा पारसी थियेटर वाला|[1]

इस पारसी शैली का प्रयोग आगे भी होता है| साथ ही राजस्थानी शैली का प्रयोग भी नाटक में बीच बीच में हुआ है|

"गंगाराम:- तम्म गाँव के मालक हो ....अपणा फर्ज निमाणा

पडेगा तम्म नै| फिर म्हारै बाप दादों ने करवाए थे

म्है तो अपणौ मात्तापित्ता का अकेला लड़का हूँ

[1] मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ : 21

जे म्हारी शादी का बन्दोबस्त नहीं हुआ तो बंश का

नामी ही मिट जाएगा|”[1]

इस प्रकार के संवाद कई स्थान पर आये हैं| खड़ी बोली भाषा के प्रयोग के साथ साथ बोलचाल की भाषा में कई लोकभाषा के शब्द मिलते है| उर्दू अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी हुआ है|

“कटोरीमल :- अब तो मैं भी बदला लूँगा और तुम्हारी

बेइज्जती करुँगा| तूम हो दुलारी बाई ....एकदम

फटीचर .... कचरे के ढेर की रानी........

सूअर के बच्चों की नानी और ये तुम्हारे जूते

पाँच सौ साल पुराने .... ऐचकताने|”[2]

ऐसे ही कई हास्यास्पद संवाद भी नाटक में मिलते हैं| दुलारी बाई नाटक में अनेक लोकोक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग किया गया है| जैसे “रुपया तो हाथ का मैल है’, ‘सिट्टी पिट्टी गुम’, ‘घर में नहीं दाने मियों चले भुनाने’, ‘कुए में भांग पड़े है’, ‘रमता जोगी बहता पानी’, ‘घोड़ा घास से यारी करेगा तो खायेगा क्या’| इस के आलावा कई लोकशब्दों के प्रयोग भी नाटक में हुआ है| इस प्रकार ‘दुलारी

[1] मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ : 59

[2] मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ: 20

बाई' नाटक की भाषा एवं संवाद हास्य से भरपूर है एवं लोकनाट्य शैली के निकट है जहाँ पारसी प्रभाव भी सहज आये हुए हैं|

गीत एवं संगीत

कुचामणी ख्याल की विशेषता यह है कि इस में परम्परागत विशेष छंदों का प्रयोग गीत संगीत में नहीं होता| ख्याल के मंच में एक गायन मण्डली होती है जिनके द्वारा ही अधिकांशतः गीत गाये जाते हैं| कुचामणी ख्याल शैली में सामानयतः लोकगीतों का प्रयोग ही अधिक मात्रा में होता हैं| 'दुलारी बाई' नाटक का प्रारंभ मंगलाचरण से होता है यह मंगलाचरण देवी देवताओं के नाम से नहीं है बल्कि दर्शकों को आह्वान करने हेतु हो रहा है|

"दर्शक देव पधारे

धन्य है भाग्य हमारे

धोती कुर्ता साडी ब्लाउज कोट पेट और टाई

पहन के आये आज यहाँ देखेंगे दुलारी बाई

छोडके कारज – दर्शक देव पधारे|"[1]

---

[1] मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ: 9

यह एक मंगलाचरण है साथ ही इसमें नाटक देखने आये दर्शकों का चित्र भी मिलता है| कुचामणी ख्याल में पारसी रंगमंच का जैसा 'शेर' और 'शायरी' का प्रयोग मिलता है| प्रस्तुत नाटक में इसके लिए उदाहरण मिलते हैं,

शेर -

"मिलने लगे वफ़ा की सजाएं तो क्या करें

नारे से दिन को भी नजर आए तो क्या करें|

वैसे तो जिंदगी में सदा पिटते रहे हम

नाटक में उनमें मार ही खाएं ना हम क्या करें|"[1]

यह चार लाइन वाली शेर कुचामणी ख्याल की खासियत है| कुचामणी ख्याल में हमेशा गायन मण्डली होती है| दुलारी बाई में भी सभी गानों का गायन गायक मंडली द्वारा ही होते है ....गायन मण्डली के लिए उदाहरण दृष्टव्य है

"हो रामा, जूतों को लेकर कहाँ जाऊ रे|

हो किस्ना, कैसे में इनसे पिड छुडाऊ रे|

हो कान्हा, कितने चक्कर अब और लगाऊ रे हो रामा

[1] मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ: 9

हो ये मनहूस जूते बन गए मेरी जान के बवाल"[1]

कुचामणी ख्याल शैली में सामान्यतः लोकगीतों का प्रयोग अधिक होता है| जहाँ लोकधुनों का प्रयोग भी साथ में मिलते है| दुलारी बाई में इस प्रकार के लोकधुन और लोकगीत का प्रयोग जगह जगह पर हुआ है| लोकगीत के लिए उदाहरण दृष्टव्य है -

"राजाजी सो है बन्ना बनके, बन्नी दुलारी बाई हमारी

आओ हम सब फूल न्यौछावर करें|

बन्ने के माथे पे जूतों का सेहरा जो थे कभी मनहूस

बन गई रानी एचकतानी औरत जो भी कंजूस

महलो में रहके राज करेंगी अब तो दुलारी बाई हमारी

आओ हम सब ...."[2]

दुलारी बाई में गीतों का प्रयोग कथासूत्रों को जोड़ने के साथ ही दृश्ययोजना को सरल बनाते हैं|

"साधो अब हुई चौ तरफ सोने की भरमार

जो कुछ छू दिया आखिर भई बेजार

---

[1] मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ: 48

[2] मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ: 69

देखा देखा रे दुलारी बाई ने एक सपना|"[1]

'दुलारी बाई' में प्रयुक्त सभी गीतों में कुचामणि ख्याल की शैली प्रत्यक्ष रूप में हम देख सकते हैं|

मंच एवं दृश्य विधान

ख्याल प्रदर्शन के लिए विविध प्रकार के मंच प्रचलन में है| जहाँ चार मंच मशहूर है| सर्वदिशीय मंच, त्रिदिशीय मंच, मंडपीय मंच, अट्टालिका मंच आदि प्रमुख है| विविध प्रकार के ख्याल के लिए विविध प्रकार के मंच का प्रयोग करते है जिसमें कुचामणि ख्याल के लिए साधारणतः मंडपनुमा मंच की योजना करते है| मंडपीय मंच को बाँस एवं बल्लियों की सहायता से सजावट करके बनाया जाता है| सुन्दरता बढाने के लिए कपडे, फूल आदि से सजावट की जाती है और आवश्यानुसार सजावट और बढाकर भी आयोजन करते है| कुचामणि ख्याल-प्रदर्शन इस प्रकार के मंच पर साधारणतः आयोजित किया जाता है|

दुलारी बाई नाटक में मंच सजावट का कोई संकेत नहीं दिया जाता है| इस की प्रस्तुति में कोई तैयारी या तामझाम की माँग नहीं है| एक साधारण मंच पर इसकी प्रस्तुति हो सकती है| दुलारी बाई नाटक अंको में विभाजित नहीं है किंतु जगह दृश्यलोप ज़रूर होता है| नाटक में गायन मंडली द्वारा गीतों को गाकर जटिल दृश्यों को सरल बनाते है, -

---

[1] मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ: 74

"डूबी हुई सोच में वह तभी आई नदी के किनारे

खड़ी रही चुप लगी देखने लहरों को मन मोर

हक्की बक्की सी थी उलझन और परेशानी में

जूतों वाला थैला उसने फेंक दिया पानी में

दूर वह गया थैला तब दिल ने कुछ राहत पाई"[1]

इस गीत के माध्यम से पूर्ण दृश्य दर्शकों के मन पर बिम्ब रूप में उपस्थित हो जाता है| कई दृश्य ऐसा भी है जो प्रतीक रूप में अभिनय द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है| दुलारी बाई नाटक के संवाद भी मंच की दृश्य योजना को सरल बनाता है –

"यह तो किसन जी का मंदिर आ गया, रास्ते में|

चलूं पहले भगवान के दर्शन कर लूँ अन्दर जाकर,

फिर ननकू मोची के यहाँ जाऊँगी ज्यादा दूर नहीं है

उसका घर, यहाँ से|"[2]

इस प्रकार के संवादों की योजना नाटक में और भी देख सकते है| गीत योजना और संवाद, नाटक के मंचन को और भी सरल बनाता है|

---

[1] मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ: 52

[2] मणि मधुकर, दुलारी बाई, पृ: 38

कथानक

ख्यालों के कथानक मुख्यतः ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक, तथा श्रृंगार रस में रंगे होते है| राजस्थान में वीर योद्धाओं की कथा की कोई कमी नहीं है| अतः कथानक में वीरता मंच साहस भी देखने को मिलते हैं| अनमें मुख्यतः अमरसिंह राठौर, तेजाजी, रामदेव जी, गंगा जी, चौहान आदि की कहानियाँ प्रमुख हैं| इन पात्रों की कथा में जहाँ चमत्कार के अंश की अधिकता है वही धार्मिक एवं पौराणिक ख्यालों भक्ति धर्म, सतीत्व जैसे शब्दों की महिमा का बखान भी अवश्य देखने को मिल जाता है| इनमें मेहता, भक्त पूरणमल, आनंद गणपति, रानी हेमकुँवर आदि मुख्य हैं| प्रेम की भूमि पर चलने वाले ख्यालों में श्रृंगारिकता आना स्वाभाविक है| इसमें श्लीलता अश्लीलता जैसे शब्दों पर कोई ध्यान नहीं रखते| इसमें पद्मावत, हीर रांझा, सुलतान निहालदे आदि मुख्य है| हास्य के साथ व्यंग्य की बौछार करने वाले नाटकों में नशाबाज़, छोटे बालम, खटपटिया आदि प्रमुख हैं| कुचामणि ख्याल में हास्य कथानक ही मिलते हैं|

दुलारी बाई एक कंजूस औरत की कथा है| इस नाटक का आधार वही है| जहाँ एक ओर दुलारी बाई के पुश्तैनी जूते परंपरा एवं रुढियों का प्रतीक हैं जिन्हें चाहते हुए भी व्यक्ति छोड़ नहीं पाता| इस ओर नाटककार दर्शकों का ध्यान आकृष्ट करता है| ‘दुलारी बाई’ नाटक के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यह नाटक कुचामणि ख्याल से प्रभावित है|

पोस्टर – कीर्तिनिया शैली

पात्र एवं वेशभूषा

कीर्तनिया एक धार्मिक मंच है| इसलिए ही इसके पात्र भी धार्मिक धरातलों पर आधारित हैं| कथा के अनुरूप ही पात्रयोजना होती है| कीर्तनिया में सूत्रधार प्रमुख पात्र होता है| यह शैली धार्मिक कीर्तन सुनाने की है| कीर्तन सुनाने वाले कीर्तनकार की मुख्य भूमिका होती है|

पोस्टर नाटक कीर्तनिया शैली पर आधारित है| सभी पात्र साधारण जनजीवन के हैं| पात्रों को दो वर्ग में रख सकते हैं| एक कीर्तनकार और उनके साथी लोग दूसरा सामाजिक कथा के पात्र| नाटक में ऐसी सुविधा है कि कीर्तनकार एवं उनके साथी तथा कीर्तन सुनाने वाले लोग आदि दूसरी कथा में पात्र बन सकते है| साधारण से साधारण पात्र कीर्तनिया की विशेषता है| 'सूत्रधार' की भूमिका खुद 'कीर्तनकार' निभाता है| साथ में वह कथा के एक पात्र 'गुरुजी' का पार्ट भी करता है –

"(कीर्तनकार गुरुजी के रूप में कल्लू के साथ आता है|)"[1]

पात्रों की वेशभूषा में किसी विशेष योजना की ज़रूरत नहीं है| क्योंकि अधिकांश पात्र मज़दूर वर्ग के हैं| अतः साधारण वेश भूषा से काम चला सकते हैं| जैसे धोती या सिर पर पगड़ी बाँधकर अभिनय कर सकते हैं| स्त्री पात्रों के

[1] शंकर शेष, पोस्टर, पृ : 9

लिए साडी ब्लाउज़ आदि का प्रयोग कर सकते हैं| उसी प्रकार 'पटेल' के लिए धोती, कुर्ता, डोपि और जाकेट, अफसरों के लिए पान्ट, शर्ट, कोट आदि से काम चलाया जा सकता है| कीर्तनकार और साथियों के लिए धोती, शाल, और कमंडल, माला से वेशभूषा तैयार कर सकते है| नाटक में पात्रों की साजसज्जा की कोई आवश्यकता नहीं होती| क्योंकि सारे पात्र साधारण मज़दूर लोग है| इस तरह नाटक के सभी पात्र कीर्तन शैली के अनुरूप हैं|

भाषा एवं संवाद

कीर्तनिया शैली में कीर्तनकार द्वारा राम और कृष्ण की लीलाओं पर कीर्तन सुनाता है| कीर्तन के लिए संस्कृत या अन्य भाषाओं के लिखे मशहूर काव्यों को चुनते हैं| कीर्तन की व्याख्या जन साधारण की भाषा में होती है| 'पोस्टर' नाटक की भाषा कीर्तनशैली पर आधारित है| कीर्तनकार और व्याख्यान देने वालों की भाषा में दार्शनिकता होती है| दूसरी ओर साधारण जन भाषा का भी प्रयोग नाटक में हुआ है| कीर्तनकार द्वारा संस्कृत में किया गया कीर्तन इस प्रकार है –

"नैनं छिन्दन्ति शास्त्रणि नैनं पावकः

न चैनं कालेदयान्त्योवों न शेषयति मारतः||"[1]

---

[1] डॉ. शंकर शेष : पोस्टर, पृ : 43

चूँकि कीर्तनकार शास्त्रों के ज्ञाता होते हैं, अतः संस्कृत का प्रयोग स्वाभाविक है| यही नहीं कीर्तनकार विभिन्न संतों आदि की वाणी का भी प्रयोग करते हैं| इसका उदहारण दृष्टव्य है –

“लाली मेरे लाल की जित देखूँ उत लाल|

अरे लाली देखत में गयी मैं भी हो गई लाल|”[1]

कीर्तनकर के संवादों की भाषा दार्शनिकता ली हुई है| उनका काम व्याख्या करना है| अतः दर्शन की मौजूदगी स्वाभाविक है –

“कीर्तनकार : तो भक्तजनों सूरदास जी कहते है की

निर्धनों के लिए तो राम ही एक धन है|

साथी 1 : न तो वह खाने से कम होता है और न

ही उसे चोर लूट सकता है|

साथी 2 : और जब चाहो वह काम आ सकता है|

वह दिन दूना रात चौगुना वंदना है|”[2]

मजदूरों की भाषा एकदम जनसाधारण और पात्रोचित है|

---

[1] डॉ. शंकर शेष : पोस्टर, पृ : 10

[2] डॉ. शंकर शेष : पोस्टर, पृ : 8

“मज़दूर 1 : अरे चैती यह क्या ले आई?

चैती : मैं क्या जानु| वहाँ शहर में पड़ा था

सो हम उठा लाई| अच्छा है न?

मज़दूर 2 : पर इस में लिखा क्या है|

चैती : हम क्या जाने| वहाँ सड़क पर पड़ा राहा सो हम उठा लाई| कहो तो फैक..............”[1]

पोस्टर नाटक में कीर्तनकार द्वारा बीच बीच में अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग भी देख सकते हैं|

“कीर्तनकार : लेकिन धन इतना ज़रूरी क्यों है

व्हाय मनी इस सो इम्पॉर्टेन्ट................

साथी 1 : बिकास इट मेक्स द मेयर गो..............”[2]

इस प्रकार के प्रयोग जगह जगह नाटक में देख सकते हैं|

‘पोस्टर’ नाटक में कहावतों और मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है| जैसे – दुम दबाकर भाग जायेंगे, धतूरा बोय के आम पाने की आशा, जैसा करेगा वैसा भरेगा, पानी में रहकर मगरमच्छ से बैर, गाय का दूध दुहा जाता है खून नहीं,

---

[1] डॉ. शंकर शेष, पोस्टर, पृ : 31

[2] डॉ. शंकर शेष : पोस्टर, पृ : 9

गन्ना मीठा होता है तो उसको जड़ सहित नहीं खाते आदि| भाषा और संवाद की दृष्टि से नाटककार ने प्रस्तुत नाटक को कीर्तनिया शैली में ढालने की कोशिश की है|

गीत एवं संगीत

कीर्तनिया शैली में गीत संगीत की बहुत अहम् भूमिका होती है| कीर्तनिया में गीत संगीत के माध्यम से ही कथा गायन होता है| बड़े संतों के काव्यों और संस्कृत श्लोकों का प्रयोग इस में होता है| पोस्टर नाटक में कीर्तनिया शैली को अपनाया है| पोस्टर नाटक में कीर्तनकार गीत संगीत के माध्यम से कथा गायन करते हैं| पोस्टर में कीर्तन शैली का बड़ी कुशलता से प्रयोग हुआ है| कथा को आगे बढाने और व्याख्या भी उसके ज़रिए होता है| नाटक में संस्कृत श्लोकों का बहुत उपयोग हुआ है| नाटक का प्रारंभ एक संस्कृत श्लोक से हुआ है|

“ब्रह्मानंद परमसुखंद केवल ज्ञानमुर्तिम|

द्वान्द्वातिते गगन सदृशं तत्वमस्यादि लक्ष्यम्|

एवं नित्यं बिमलं चले सर्वाधिसाक्षी भूतम्|

भवातीत त्रिगुण रहित सद्गुरुतं नमामि|”[1]

इसके आगे लोकशैली में वंदना भी की जाती है|

---

[1] डॉ. शंकर शेष : पोस्टर, पृ : 7

"गाइए गणपति जग वंदन

गिरजासुत गिरजापति नंदन

गाइए गणपति जग वंदन|

कीर्तन में सब देव पधारे

राग द्वेष सब स्वर्ग सिधारे

कालेपन का मुहँ हो काला

जनमानस का हो अभिनंदन

गाइए गणपति जग वंदन |"[1]

प्रस्तुत वंदन मात्र वंदना नहीं है बल्कि वर्तमान समाज का चित्रण भी है| इसके अतिरिक्त कीर्तनकार द्वरा प्रारंभ में भजन भी गया है| उदहारण है –

"भजन – राम – राम – राम – राम

सीताराम – सीताराम"[2]

कीर्तनकार का गाँव के मज़दूर की दयनीय स्थिति पर एक गाना इस प्रकार है –

[1] डॉ. शंकर शेष : पोस्टर, पृ : 7

[2] डॉ. शंकर शेष : पोस्टर, पृ : 7

“लोग वहाँ पर रहते थे

जीवन का दुःख सहते थे

मालिक जैसा कहता था

वैसा ही वे करते थे

वहाँ न थोडा कुछ भी बदला

धरमराज का दाँव था

हो एक पुराना गाँव था|”[1]

प्रस्तुत नाटक में लोक भाषा एवं लोकबोली के गीत भी दृष्टि गोचर होते हैं –

“मंडई जावो मंडई जावो मंडई जावो रे

संगी चल मई जावो रे

नूत बिसावो द्वार बिसावो

अर बिसावो लडुवा

गारी देबो पटवारी ला

ओला कहिवो मडुवा

चिउरा खावो, खलिया खावो केरा खावो रे”[2]

---

[1] डॉ. शंकर शेष : पोस्टर, पृ : 18

[2] डॉ. शंकर शेष, पोस्टर, पृ : 24

नाटक में कीर्तनकार द्वारा कई कवियों की एवं संतों की वाणी का उपयोग इस नाटक में किया है| तुलसी, कबीर आदि की वाणियों का प्रयोग नाटक में हम देख सकते है| नाटक में ग़ज़ल का प्रयोग भी देखने को मिलता है –

"ग़ज़ल –

साकी जाम पिला दे रे|

उठाके अपनी नज़रों का खंजर

जिगर दिला दे रे

सूनी पड़ी है दिल की बगिया

उस में फूल खिला दे रे

साकी जाम पिला दे रे|"[1]

इस प्रकार पोस्टर नाटक में कीर्तन शैली पर आधारित गीत संगीत का प्रयोग काफी हुआ है|

मंच एवं दृश्यविधान

कीर्तनिया शैली में तीन ओर से खुला मंच होता है जो किसी मंदिर के प्रांगन में बनाया जाता है| एक ओर कीर्तनकार के लिए बैठने की जगह बनाता है| कीर्तनकार गीतों के जरिये कथा सुनाता है| मंच में किसी भी तरह की साज सज्जा की जरूरत नहीं है| पोस्टर नाटक का प्रस्तुतीकरण मुक्ताकाशी रंगपरम्परा

[1] डॉ. शंकर शेष, पोस्टर, पृ : 44

एवं आधुनिक रंगमंच का मिलाजुला रूप है| प्रस्तुत नाटक में मुक्ताकाशी रंगपरम्परा का निर्वाह किया गया है| दृश्यों के माध्यम से प्रतीक रूप में प्रस्तुति हो रहा है| आधुनिक रंग परम्परा को आते हुए प्रकाश योजना का भी प्रयोग किया गया है| नाटक में साधारण जीवन से जुडी कहानी है| इसलिए मंचन में किसी भी प्रकार की बाहरी साजसज्जा की आवश्यकता नहीं है| पूरे नाटक में कही भी दृश्य परिवर्तन की जरूरत नहीं है| एक ही अंक में प्रकाश योजना की सहायता से पूरा नाटक खेल सकता है|

-“साथी. 2 – पटेल की भाषा में उसका परिचय करता हूँ भक्तजनो|

[पटेल रोशनी के घेरे में]”[1] –

तथा

“[अब प्रकाश मज़दूर के समूह पर आता है| उसमे कुछ स्त्रियाँ भी है| प्रत्यक्षतः वे दरिद्र है|]”[2] –

इस प्रकार प्रकाश व्यवस्था से दृश्यपरिवर्तन होता है| इसके आलावा पर्दों का उपयोग करने की आवश्यकता भी नहीं होती है| इस प्रकार “पोस्टर” नाटक अपने मंचीय दृष्टिकोण से मुक्ताकाशी रंग परम्परा का निर्वाह करता है|

---

[1] शंकर शेष, पोस्टर, पृ : 19

[2] शंकर शेष, पोस्टर, पृ : 20

कथानक

कीर्तनिया शैली में धार्मिक कथाओं को ज्यादा महत्व दिया जाता है| राम की कथा, कृष्ण-कथा आदि की प्रमुखता है| इन कथाओं के मुख्य प्रसंगो को विषय बनाकर समसामयिक विसंगतियों को दिखाने की कोशिश कीर्तनिया में की जाती है|

पोस्टर नाटक में महाराष्ट्र की 'कीर्तनशैली' के कथासूत्रों को पिरोया गया है| एक कागज का टुकडा मजदूरों की क्रांति का प्रेरणा बनता है| कर्तव्य एवं अधिकारों में अन्तर बनाते हुए मजदूरों में अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता पैदा करता है| इस नाटक में एक ही कथा दो बार चलती है| दोनों कथा में कोई ख़ास अन्तर नहीं देखने को मिलता| मजदूरों की स्थिति का चित्रण करना नाटक का उदेश्य है| डॉ. शंकर शेष ने पोस्टर नाटक में महाराष्ट्र की कीर्तनशैली का प्रयोग करके नाटक को लोकशैली एवं जन सामान्य के निकट लाने का कार्य किया है|

आदमी का गोश्त – माच शैली

पात्र

माच के खेल में नायक हमेशा उच्च कुल के वीर साहसी होते है| नायक के साथ उसका सहायक पात्र शेरमारखाँ कहलाता है| प्रत्येक खेल में इनकी भूमिका होती है| यह पात्र विदूषक की भाँति कार्य करता है| माच के खेल में स्त्री पात्रों

की भूमिका हमेशा पुरुष पात्र ही निभाते हैं| माच में मुख्य पात्र के थक जाने पर सहायक पात्र काम करते हैं| माच के पात्र और दर्शक के बीच सीधा सम्बन्ध बनाये रखता है| माच में कई पात्र जनता के मनोरंजन हेतु पूर्व रंग में आते हैं| उनमें भिस्ती, फर्रासिन, बेढब, मालन आदि हैं जो प्रत्येक खेल में उपस्थित होते हैं|

'आदमी का गोश्त' नाटक में कुलमिलाकर पात्रों की संख्या आधिक है| एक से अधिक कथा होने के कारण प्रत्येक कथा में पाँच से छह तक पात्र होते हैं| एक कथा के पात्र दूसरे में भी अभिनय करते हैं| प्रस्तुत नाटक में माच के पूर्वरंग के पात्रों का संयोजन किया है| चौबदार एवं ड्योढ़िवन इस नाटक में सूत्रधार के रूप में पेश आते हैं|

वेशभूषा एवं मुख्यसज्जा

माच के पात्रों की वेशभूषा पात्रोचित है जिसमें पुरुष पात्र के लिए पगड़ी, जरी का कोट, दुपट्टा में म्यान धोती, ये नायक की वेशभूषा हैं| स्त्री पात्रों में लहंगा, ओढनी आदि होती है| शेष पात्रों की वेशभूषा साधारण होती है| पुरुष के हाथों में तलवार होती है| मेकअप के लिए मुख्यतः मुर्दासिगी, काजल आदि का प्रयोग करते हैं|

'आदमी का गोश्त' नाटक में पात्रों की वेशभूषा साधारण एवं पात्रोचित होती है| सूत्रधार के पात्र अदा करने वाले ड्योढ़ीवान और चौबदार के लिए माच के पारंपरिक पात्रों के अनुरूप कुछ रंगबिरंगी वेशभूषा देना उचित होगा|

नाटक के अन्य पात्रों के लिए साधारण एवं उचित वेशभूषा से काम चलाया जा सकता है|

भाषा एवं संवाद

मालवी माच की प्रमुख भाषा रही है| इसके अतिरिक्त राजस्थानी मेवाड़ी, मारवाड़ी, व्रज, गुजराती के साथ साथ उर्दू, अरबी, पारसी शब्दों का भी प्रयोग किया गया है| माच के संवाद मुख्यतः पद्यबध्द होते , किंतु बाद में गद्य संवाद भी आये है जो 'वारता' नाम से पहचाने जाता है| इसके संवादों को बोल कहा जाता है| संवाद माच की जान है जो दर्शकों को बाँध रखता है चुटकीले एवं संक्षिप्त व्यंग्य भरे संवाद माच की खासियत है| 'आदमी का गोश्त' नाटक माच शैली से प्रभावित है| प्रस्तुत नाटक की मुख्य भाषा खड़ीबोली है| साथ में मालवी भाषा से प्रभावित हिन्दी का प्रयोग भी हुआ है| प्रस्तुत नाटक के पूर्वरंग के दृश्यों में पूरी तरह मालवी का ही प्रयोग हुआ है|

-"पात्र (दर्शक की ओर हाथ दिखाते हुए) अहा आज तो बड़ी जनता आई है ड्योढ़िवान, हमारा खेल देखने वास्ते|

ड्योढ़िवान :- हा चौबदारजी धणी जनता आई हुई है आज तो भेरू महाराज के अर्दास में भगत भगवान का खेल हो जाए|"[1]

---

[1] डॉ. विलास गुप्ता, आदमी का गोश्त, पृ : 17

यह संवाद पूर्ण रूप से मालवी से प्रभावित है| नाटक में खड़ीबोली के प्रयोग के साथ लोकबोलियों का भी प्रयोग बीच बीच में हुआ है| नाटक में भाषा एवं संवाद की सृष्टि पूरी तरह लोकशैली को ध्यान में रख के की गई है|

गीत एवं संगीत

गीत-संगीत माच के प्राण है| जिसने लोकजीवन में प्रचलित लोकधुनों को अपने खेल में समाहित कर उसमें मधुरता को समाविष्ट किया है| इन लोकगीतों में शादी के अवसर पर गाने वाले लोकगीत, घोड़ीचढ़, हल्दीगीत या बेटी की विदाई गीत के अतिरिक्त "गाली गीत" जो ब्याह के समय बेटी के ससुराल वाले को दी जाती है गाये जाते है| इसके अतिरिक्त गणगौर, होली फाग वाले गीतों की धुनों को भी शामिल किया गया है| यही नहीं माचकारों ने शास्त्रीय, एवं लोकगीतों की धुनों पर स्वतंत्र धुनों का भी निर्माण किया है जिसमें रंगत बड़ी, रंगत दोहरी, रंगत इकहरी, रंगत झोला आदि है|

जैसे कि हर लोकनाट्य शैली की जान गीत संगीत होती है वैसे ही माच शैली की अपनी एक अलग अन्दास है गीत संगीत की उसकी झलक| 'आदमी का गोश्त' नाटक में यह देख सकते हैं| नाटक के प्रारम्भ में भेरूजी की स्तुति की जाती है| इसका उदाहरण इस प्रकार है|

-"भेरू बाबा हमा थारा सब लाल
म्हारा भेरू बाबा थारी जै जैकार
झूठ फरेबी हम सब भैया लोभी लंपट पूरा

मुँह में राम बगल में छुरियों मतलब का तंबूरा

मतलब का तंबूरा भैस हम सब कानखजूरा|”[1]

माच लोकशैली के प्रमुख छंदों का उपयोग नाटक में न के बराबर है| लेकिन नाटक के अंत में गणेश जी की स्तुति की गई हैं,

-“समूह स्वर – धूम धाम से आवो आवो जी गणराज

तो थई ता थई माटो रे दुःख आज

खेल बनाया लाओ जी सुख साज

ता थई ता थई जोत जगावें

बात बात में हाथों से हो मेरे राम|”[2]

इस प्रकार गीत संगीत की दृष्टि से नाटक माच शैली से कोसों दूर है जहाँ माच की किसी भी प्रमुख छंदों एवं रागों का उपयोग नाटक में किया नहीं है|

मंच एवं दृश्यविधान

माच की मंच तीन ओर से खुला होता है| पीछे की ओर एक पर्दा टंगा होता है तथा ऊपर से एक कपड़े से ढका होता है| माच का मंच निराडंवर होता है| मंच के एक किनारे पर सिध्दहस्त और नवोदित संगीतकारों के बैठने का स्थान होता है| इन्हें ‘टेक झेलने वाला’ कहा जाता है| माच प्रस्तुत होने के दो हफ्ते पहल खंभ स्थापना’ होती है| इस क्रिया के पहले ‘खंभ’ की पूजा होती है यह

[1] डॉ. विलास गुप्त, आदमी का गोश्त, पृ : 12

[2] डॉ. विलास गुप्त, आदमी का गोश्त, पृ : 17

काम मण्डली के गुरु या उस्ताद द्वारा कराया जाता है| बाद में प्रसाद वितरण करता है| 'खंभ स्थापना' के बाद ही माच के मंच की रचना प्रारम्भ होती है| मंच लकड़ी के खम्भों' पर टिका रहता है| इन खम्भों की संख्या विषम संख्या रखते है| यह खंभ के लिए शुभ माना जाता है| इस प्रकार माच के मंच तैयार करते हैं|

'आदमी का गोश्त' नाटक माच लोकशैली से प्रभावित है| यह नाटक मुक्ताकाशी मंचन का निर्वाह करता है| पूरे नाटक में ऐसा कोई दृश्य नहीं है जो मुक्ताकाशी में खेल न पाये| प्रस्तुत नाटक का मंचन बिना किसी साजसज्जा के हो सकता है| इसका उल्लेख नाटक के प्रारम्भ में लेखक द्वारा बताया गया है|

-"(मंच पूरी तरह खाली है| कोई सेट कोई दृश्य बंध नहीं|"[1]-

इस प्रकार पूरा नाटक बिना किसी तामझाम के मंचन कर सकता है| नाटक में कहीं कहीं दृश्य विशेषता यह है कि आंगिक अभिनय द्वारा आवश्यक साजसामान की कमी पूरी करता है – जैसे

"(.......अगली पंक्ति की बायीं तरफ दो पात्र सटकर बैठे हैं

........| बाकी सब थोड़े थोड़े फासले के बैठे है| अपनी

मुद्राओं से वे मटन मार्केट का दृश्य पैदा करते हैं|

[1] डॉ. विलास गुप्त, आदमी का गोश्त, पृ : 2

कोई ठीहे पर गोश्त के टुकड़े कर रहा है कोई

खंजर तीखा कर रहा है कोई तोल रहा है|”[1]

इस प्रकार के आंगिक अभिनय द्वारा पूरा का पूरा दृश्य बिंब दर्शकों के सामने आ जाते हैं| नाटक में दृश्य परिवर्तन पात्रों के प्रवेश और प्रस्थान के जरिये होता है इस प्रकार मंचन की दृष्टि से पूरा नाटक माच की मुक्ताकाशी परंपरा का निर्वाह कर रहा है|

कथानक

माच के कथानकों में धार्मिक कथायें, प्रेम कथायें, ऐतिहासिक कथायें आदि प्रमुख रूप से खेला जाता है| वर्तमान में समस्यामूलक कथाओं की प्रस्तुती भी होती है| माच के कथानकों में धार्मिक कथाओं के समावेश से उसमें धार्मिक कथाओं की प्रस्तुति होने लगी है| इसका कारण जनता की धार्मिक आस्था ही है| माच के कथानकों में राजा हरिश्चन्द्र, शिवलीला, रामलीला, कृष्णलीला, प्रह्लादलीला आदि प्रमुख है|

‘आदमी का गोश्त’ नाटक में वर्तमान स्थितियों एवं परिस्थितियों से जूझते आदमी का चित्रण है| वर्तमान समाज में होने वाले अत्याचार में मानव ही मानव का दुश्मन बन गया है| प्रस्तुत नाटक में एक से अधिक कथा चलती है|

---

[1] डॉ. विलास गुप्त, आदमी का गोश्त, पृ : 21

समाज के सभी विसंगतियों पर प्रकाश डालने का प्रयास प्रस्तुत नाटक में हुआ है| डॉ. नीना शर्मा के अनुसार –

"प्रस्तुत नाटक कथानक की दृष्टि से ढीला ढाला लगता है| इस नाटक में एक से अधिक कथा का समावेश है| और यही कारण है कि कथाओं का व्यंग्य पूरी तरह उभर कर नहीं आ सका है| सभी कथाएँ घटनाओं का वर्णन मात्र लगती है .....)"[1] इस प्रकार आदमी का गोश्त नाटक आधुनिक नाटक होने के साथ अपने में लोकशैली को भी बरकरार रखने की पूरी कोशिश है|

कथ्यगत विश्लेषण

राजनीतिक समस्यायें

समकालीन हिन्दी नाटककारों ने लोकनाट्य के जरिये राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिवेश की समस्याओं का ग्रहण अध्ययन कर उसका सूक्ष्म और यथार्थ वर्णन किया है| राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार, दलबदल, जमाखोरी, काला धन, शोषण आदि पर जमकर अपना मत व्यक्त करने का प्रयास नाटकों के कथ्य और शिल्प शैली में हम देख सकते है| सत्ता की भ्रष्ट राजनीति एवं तज्जन्य परिवेश इस नाटककारों के नाटकों के कथ्य बने है| प्रस्तुत अध्ययन के सभी नाटकों के संवादों में लोकभाषा का सार्थक प्रयोग हुआ है|

---

[1] डॉ. नीना शर्मा - आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन - पृ - 179

राजनीति के क्षेत्र में सत्ता का महत्वपूर्ण स्थान है सत्ता व्यक्ति को अपने मोह में इस प्रकार फँसा देती है कि वह उस मोह में मदमस्त स्नेह पूर्ण व्यवहार भूल जाता है| 'दुलारी बाई' नाटक में विविध पार्टियों के नेता के रूप में ब्रह्मा विष्णु और शिव को चित्रित किया गया है| सत्ता हथियाने की होड़ में सभी नेता अपनी पार्टी बनाते हैं और उसका मुखिया बनते हैं| ब्रह्मा जी द्वारा अपनी अलग पार्टी बनाने के प्रसंग पर सूत्रधार इस प्रकार कहता है|

-"सूत्रधार :- सत्ता हथियाने की होड़ देखो की विष्णु जनता पार्टी के नेता हो गए है, शिव शंकर सफ़ेद कांग्रेजी| और ब्रह्माजी एक नई-निराली तान छेड रहे हैं यानी इंडिपेंडेन्ट की हैसियत से दोनों दलों की बखिया उधेड़ रहे है|"[1]

दल बदल : दल बदल की राजनीति तो आज व्यापक है| दल बदल में शासक दल हमेशा विपक्ष के सदस्य को अपने साथ मिलाना चाहता है और विपक्षी सदस्य शासक दल के सदस्य को अपनी तरफ| इस प्रकार की कबड्डी खेल के लिए उदाहरण है 'दुलारी बाई'|

'कल्लू' बाबा बनकर एक डंडे को जादुई बताता है और बोलता है

"कल्लू – अगर कोई हवा में उडना चाहे, दल-बदल

कर राजपथ को ओर मुड़ना चाहे, तो इस

डंडे पर चढ़े, आगे बढे-मिल जायेगी कुर्सी |"[1]

---

[1] मणि मधुकर - दुलारी बाई - पृ - 10

न्याय पालिका :- आम आदमी के लिए भगवान के मंदिरों के समान होते है न्यायपालिका| राजनीति के कारण न्यायालयों में भी भ्रष्टाचार बढ़ रहा है| किसी भी मामले में गवाहों के बयान बहुत महत्वपूर्ण होते हैं| आज स्थिति ऐसी है कि पैसा देकर गवाहों की लम्बी लाईन खड़ा कर सकते हैं| 'दुलारी बाई' के पात्र 'फर्जिलाल' ऐसा ही एक पात्र है जो झूठी गवाही देकर पैसा कमाता है| उसके शव्दों में,

> -"फर्जीलाल :- .....पेशेवर गवाह हूँ ...... पैसा दा और चाहे जिसके खिलाफ झूठी गवाहि दिलवा लो मुझसे – इसी को तो कमाई है|"[2]

प्रशासकीय भ्रष्टाचार :- प्रशासक केवल अपनी सुरक्षा का ध्यान रखते हैं| सरकारी कार्यालयों में भी भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया है कि योजनाओं का लाभ जिस व्यक्ति को मिलना चाहिए उसे वह मिल नहीं पा रहा है| अफसरों की गलतियों के कारण जिस व्यक्ति को योजना का फल आवश्यक नहीं उसे उसका लाभ देने का प्रयास किया जाता है| 'पोस्टर' नाटक में आदिवासी समूह के लिए हो रही योजनाओं पर टिप्पणी है

> -"साथी 1 : - सुना है सरकार ने इन आदिवासियों के
>
> कल्याण के लिए ट्रायबल वेलफेयर डिपार्टमेंट खोला

---

[1] मणि मधुकर - दुलारी बाई - पृ - 32

[2] शंकर शेष - पोस्टर - पृ - 49

है; जो पिछले तीस साल से चल रहा है|"[1]

अफसरों की रिश्वतखोरी और तरक्की पाने की इच्छा ने अनैतिकता के साथ देने में उन्हें मजबूर किया है| यह भ्रष्टाचार के लिए बढ़ावा है| पोस्टर नाटक में पटेल का कहना इस प्रकार है|

-"बड़े बड़े कलेक्टर, एस. पि. मेरे घर दारु पीते हैं ... और

साले नेता मुझसे चन्दा ले जाते हैं|"[2]

'चरनदास चोर' नाटक में भी रिश्वत लेने वाला एक हवलदार का चित्रण है|

आर्थिक समस्यायें

किसी भी राष्ट्र की अर्थ व्यवस्था उसका प्राण होती है| अर्थ व्यावस्था से सिर्फ उन्नति से मतलब नहीं है वरन् हर क्षेत्र में वैसी व्यवस्था होनी चाहिए जिससे अवनति नहीं हो| अर्थ व्यवस्था में अमीरी गरीबी परिभाषा अलग है| धन विनिमय में हो रही असंगति पर पोस्टर नाटक में संवाद इस प्रकार है

-"कीर्तनकार :- आज के तो सभी सवाल धन से जुड़े हुए है| सभी संघर्षों की जड़ में यही धन है| एक तबका है जिसके पास धन के पहाड़ है और दूसरे के पास शाम की रोटी तक नहीं| धन का सही बंटवारा, न्यायपूर्ण बंटवारा ही आज

[1] शंकर शेष - पोस्टर - पृ : 18

[2] मणि मधुकर - दुलारी बाई - पृ : 34

के सामाजिक न्याय का मूल सवाल है|"[1] प्रस्तुत नाटक में दरिद्रता और गरीबी की अवस्था पर कीर्तनकार कीर्तन और व्याख्या सुनाता है| उदहारण,

-"धनमाहु :- परे धर्म धन सर्व प्रतिष्ठितम|

जीवन्ति धनिनो लोके मृता ये त्वाधना नराः|

यानी धन प्राप्त करना ही श्रेष्ठ धर्म है क्योंकि धन पर ही सब कुछ निर्भर करता है .... धनवान लोग ही असली अर्थ में जीते है निर्धनों की गणना तो मुर्दों में होती हैं|"[2]

'दुलारी बाई' नाटक में गंगाराम कहते हैं पैसे वाले और पैसे कमाने की कोशिश कर रहे हैं| बल्कि उनको तो गरीबों के लिए कुछ करना चाहिए|

-"गंगाराम :- मन्नै तो या बञ्चे है कि चंदा इकट्ठा

करणा चाहिए, तभी सारे काम पूरण हो सकेंगे|

पैसे वालों को हमें समझाणा चाहिए कि उनका

भी कुछ फर्ज है गाँव के लिए |"[3]

---

[1] शंकर शेष - पोस्टर - पृ - 9

[2] शंकर शेष - पोस्टर - पृ - 9

[3] शंकर शेष - पोस्टर - पृ - 41

गाँव की स्थिति :- सरकार की तरफ से कई योजनाओं के बावजूद गाँव के लोग सड़क, बिजली, टेलीफ़ोन, पक्का मकान, आदि के दर्शन के लिए लालायित है| गाँव की दयनीय स्थिति का 'दुलारी बाई' नाटक में चित्रण हुआ है|

"गंगाराम :- अजी पटेलजी माफ़ करणा| गाँव में सिर्फ पीणे के पाणी की ही कम्मी नहीं, और भी भोत-सी चोज़ों की कम्मी है| अब देखों, एक कुआं है, कम से कम तीन होणे चाहिए| छोरों के पढ़णो के लिए एक पाठशाला जरूरी है| कोई बाहर से म्हेमान आ जाए तो एक धर्मशाला भी होणी चाहिए| बरसात होती है तो गलियों में पाणी इकट्ठा हो जाता है – उसके निकास का कोई इंतजाम नहीं|"[1]

यहाँ पर गाँव की स्थिति बहुत दयनीय है|

श्रम :- धन कहने का मतलब है जो श्रम द्वारा उपार्जित| धन कमाने का उपाय है श्रम| साहूकार और मज़दूर जैसे श्रमिक वर्ग के एकदम अलग रूपों को प्रस्तुत नाटक हम देख सकते हैं| 'दुलारी बाई' नाटक में दुलारी बाई एक साहूकार है| जो लोंगों से ब्याज वसूल करके ही आजीविका चलाते है| दुलारी बाई की शब्दों में उदाहरण –

-"दुलारी :- .....ब्याज-बट्टे का पैसा वसूल करने के लिए|

लोगों को जब कर्ज चाहिए – तब तो गिडगिडाते हुए

[1] शंकर शेष - पोस्टर - पृ - 39

चले आते है मेरे पास – लेकिन फिर – लौटने के नाम पर

शक्ल तक नहीं दिखलाना चाहते| और मैं हूँ दुलारी

बाई – कोई मरके भी मेरा पैसा हज़म नहीं कर सकता|”[1]

मज़दूर :- पोस्टर नाटक में पटेल मज़दूरों को वेतन न देकर लूटता रहता है| पटेल मज़दूरों की नरक और स्वर्ग की बातों में फँसाकर लोगों में खोफ पैदा करते हैं| एक साधू से भाषण करवाकर मज़दूर लोगों में भय व खौफ का वातावरण बना रखा है कि जो अपने मालिक का कहना न मानेगा वह नरक जायेगा| पोस्टर नाटक में साधू अखंडानंद की वाणी इस प्रकार है|

-“देखों क्या हालत होती है मालिक से बगावत करने की|

जौन है सौ तौन, इतनी भयानक नरक यातना-भोगनी

पड़ती है मनुष्य प्राणी को| तो मालिक का साथ दो .....

स्वर्ग का सुख भोगो| मालिक की खिलाफत करोगे तो ऐसा दुख पाओंगे|
और देखो स्वर्ग-नरक की तस्वीर-“[2]

मज़दूर शोषण :- मज़दूर को दिन रात मेहनत करना पड रहा है, तुच्छ वेतन के लिए| पोस्टर नाटक में पटेल मज़दूरों से दिन रात काम करवाता है और एक रुपया वेतन देता है| हजारों का मुनाफा वह पा लेता है| गाँव की स्थिति ऐसी

[1] मणि मधुकर - दुलारी बाई - पृ - 53

[2] शंकर शेष - पोस्टर - पृ : 24

है कि पटेल जैसे लोग कोट सूठ पहन कर मलाई मक्खन चखते रहे और मज़दूर लोग रुखी सूखी रोटी के लिए ही तरसते रहे| इस प्रकार के वातावरण पर कीर्तनकार टिप्पणी देता है|

-"साथी :- एक जगह और भी कहा है –

रुखा सूखा खाई के ठंडा पानी पिऊ

देख विरानी चुपड़ी, मत ललचावै जीउ|

कीर्तनकार :- तो सब रुखा-सूखा खाकर ठंडा पानी पी रहे

थे ....ऐसे दयालु मालिक को पाकर पूरा गाँव धन्य था|"[1]

मज़दूरों के शोषण करने का कोई और एक तरीका है तरक्की देना| जो कोई मालिक के खिलाफ़ बोलने की हिम्मत रखता तो उसको मालिक नेता बनाते हैं तरक्की देकर अपनी तरफ कर लेते हैं| पोस्टर नाटक का 'कल्लू' भी पटेल से तरक्की पाकर बहुत खुश है| इसके पीछे की साजिश का उसको पता नहीं है|

-"कल्लू : गुरूजी, गुरूजी| मेरी तरक्की हो गई

कीर्तनकार : बधाई हो, कल्लू| पटेल ने क्या बना दिया तुझे?

कल्लू : मुझे मुकादम बना दिया, गुरूजी|"[2]

[1] शंकर शेष - पोस्टर - पृ : 24

[2] शंकर शेष - पोस्टर - पृ - 52

साधू-संत का धंधा :- धन कमाने के लिए साधू संत लोग आस्था के नाम पर लोंगों को वंचित करता है| साधू लोग झूठे भाषण और वाणी से लोंगों को बहकाते हैं| 'पोस्टर' नाटक में ऐसा एक पात्र है स्वामी अखंडानन्द जो बताता है कि वो बीच में परलोक जाके आता है| लोग इस पर विश्वास करते हैं और इस विश्वास का फायदा साधू और पटेल उठाता है| साधू लोगों के पैसे कमाने की तरीके पर 'चरण दास चोर' में टिप्पणी है

-"चोर :- सब अपना-अपना धंधा में मस्त है गुरुदेव

गुरूजी :- का मतलब है बाबू?

चोर :- देख गुरूदेव में रात बिकाल के ये गली से वो गली सबके नजर बचा के चोरी कर थंव अऊ तुमन दिन दहाड़े खुला मैदान जनता सारी जमा है तुम्हर आमदनी ज्यादा है गुरुदेव |[1]

जमाखोरी और काला धन :- यह तो मुख्यतः व्यापारी का काम है| 'पोस्टर' नाटक का 'पटेल' और 'चरण दास चोर' नाटक के मालगुजार ऐसे व्यापारी वर्ग है| जो कम दाम पर माल लेते हैं और जरूरत के हिसाब से माल निकालकर ज्यादा दाम पे बेचते हैं| उदहारण द्रष्टव्य है| चरणदास चोर नाटक में सेतुवावाला मालगुजार के बारे में इस प्रकार बोलता है|

-"सेतुवावाला :- का बतोव भइया तीन साल होगे लगातार|

[1] हबीब तनवीर, चरणदास चोर, पृ : 42

अकाल पड़त, सब गाय गरु मवेशी मरत
जाथे सारी जनता में त्राही-त्राही मचे है अब
दुसर के बात ला का बतावे मोरे बाल
बच्चा के पेट में तीन दिन होगे अन्न के दाना
नइये| इही गाँव के एक झन मालगुजार है साल
में तीन फसल चार फसल उगाथे, कोई गरीब
आदमी कुछ कोही माँगे बर जाथे तो ओकर पहलवान
मन डंडा लेके सलाम कर थे|"[1]

पोस्टर नाटक में पटेल का काला धंधा इस प्रकार जाहिर होता है -

"पटेल : अब ठीक है| कलकत्ता में चिरौंजी क्या भाव चल रही है?

कारिंदा : कोई चालीस रुपया किलो, मालिक|

पटेल : और यहां हमको ....

कारिंदा : सिर्फ पाँच रूपए

पटेल : शाबाश .... और बंबई में गोंद का भाव?"[2]

सामाजिक समस्यायें

स्वातंन्त्रता के इतने साल बीत जाने पर भी देश की सामाजिक स्थिति में कोई फर्क नहीं आया है| वर्तमान सामाजिक स्थिति पर पोस्टर नाटक का एक कीर्तन इस प्रकार है|

---

[1] हबीब तनवीर - चरण दास चोर - पृ - 45

[2] शंकर शेष - पोस्टर - पृ - 22

-"कीर्तन में सब देव पधारे

राग द्वेष सब स्वर्ग सिधारे

कालेपन का मुँह हो काला

जनमानस का हो अभिनन्दन"[1]

कानून की दृष्टि में सब लोग बराबर है और सब को जीने का अधिकार है| लेकिन आज भी जो लोग परतंत्र है वह है नीच कुल जाति वाले लोग और गरीब लोग| ये लोग अपने अधिकार से वंचित हैं| उनका कहना तो यह है कि अधिकार सिर्फ किताबों में होते हैं| पोस्टर नाटक में एक संवाद इस प्रकार है,

-"साथी 2 :- जहाँ प्रत्येक व्यक्ति कानून की दृष्टि में बराबर है|

श्रोता 1 :- यह सब किताबों में लिखा है महाराज|"[2]

आज की सामाजिक व्यवस्था पर आदमी इतना स्वार्थी बन चुका है कि निजी फायदे के लिए वह कुछ भी करने के लिए तैयार होते हैं| 'आदमी का गोश्त' नाटक में वर्तमान आदमी की स्वार्थपरता पर एक स्तुति इस प्रकार है

-"भरते बाबा हम थार सब लाल

म्हारा भेरू बाबा थारी जै जैकर

झूठ फरेबी हम सब भैया लो भी लपट पूरा

मुँह में आराम बगल में छुरियां मतलब का तंबूरा"[3]

---

[1] शंकर शेष - पोस्टर - पृ - 8

[2] शंकर शेष - पोस्टर - पृ - 15

[3] डॉ. विलास गुप्ते - आदमी का गोश्त - पृ - 8

नाटक में संवादों के ज़रिये भी इस पर टिप्पणी हुई है|

-"ग्राहक :- है भगवान अंधा कसाई

कसाई :- क्यों? यों जब राज करनेवाले अंधे हो सकते
है तो कसाई अंधा नहीं हो सकता? नई
और मैं क्या अपनी औलाद को सिंहासन पे
बिठाने के लिए लोगों की गर्दन पे छूरी फेरता
हूँ, मैं तो महज मरे हुए जानवरों का गोश्त
बेचता हूँ| सो तो धंधा है|"[1]

स्त्रियों की स्थिति :- समाज में स्त्री की भूमिका समयानुकूल परिवर्तित होती रही है| स्त्री हमेशा शोषण का शिकार है| लड़कियों के पैदावार में कमी हो गयी है| यह एक गंभीर बात है| इस पर टिप्पणी दी गयी है दुलारी बाई में

-"पटेल :- पिछले कई सालों से लड़कियों की पैदावार कम होती
जा रही है| मैंने आसपास के गावों में भी नाई
भेज कर पता लगवाया, पर कोई जुगाड़ बैठा नहीं|"[2]

लड़कियों पर होने वाले अत्याचार बहुत बढ़ चुके हैं| पोस्टर नाटक में चित्रित दोनों कहानियों में स्त्रियों पर हो रहे बलात्कार और अन्य प्रकार के शोषण का चित्रण है| मजदूर औरत पर बुरी नज़र डालने वाले पटेल उनके

---

[1] डॉ. विलास गुप्ते - आदमी का गोश्त - पृ - 25

[2] मणि मधुकर - दुलारी बाई - पृ - 59

पतियों को पैसों की लालच में फँसाकर औरत को अपनी हवेली पर ड्यूटी पर रखते हैं| इस प्रकार अन्य बड़े बड़े अफसरों के लिए भी लडकियाँ पहुँचाने का काम भी वह करता है| 'पोस्टर' कहानी की पहली कथा में एक लड़की के बलात्कार का उल्लेख है|

विद्रोह :- स्त्रियों पर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ उनको विद्रोह करना चाहिए| स्त्रियों को उद्बद्ध करने वाला एक गीत पोस्टर नाटक में इस प्रकार है,

-"दुश्मन की पहचान करो भई|
नई दिशा संधान करो
क्या सीता का हरण
राम से युध्द नहीं करवाता
पांचाली का वस्त्र
आग में बदल नहीं जाता
नए मन्त्र का ध्यान धरो
नई दिशा संधान करों|"[1]

इस प्रकार अपने दुश्मनों को पहचानने का आह्वान स्त्रियों को देते हैं| पोस्टर नाटक में पटेल की अनैतिक रवैये के खिलाफ 'चैती' और उसका पति अपना विद्रोह प्रकट करते हैं| नाटक के अंत में उनको सफलता तो नहीं मिलती फिर भी

---

[1] शंकर शेष - पोस्टर - पृ - 55

नाटककार इस से यह सन्देश देता है कि छोटी चिंगारी से ही बड़ी आग की उम्मीद है|

पोस्टर नाटक की दूसरी कथा विद्रोह करने की आवश्यकता और उसकी अज्ञता के कारणों पर प्रकाश डालती है| नाटक में बलात्कारी के खिलाफ न बोलने वाले पिता का चित्रण है| इस प्रकार अन्याय के खिलाफ बोलने के लिए कोई तैयार नहीं होते है क्योंकि सच बोलने की हिम्मत किसी में नहीं है| पोस्टर नाटक इसकी ओर इशारा करता है,

-"श्रोता : मेरे अकेले की बात होती तो मैं नहीं डरता
महाराज| लेकिन वे मेरी जाति के लोगों
के घर जलाएँगे... उनकी रोटी-रोजी छीन लेंगे ....
कोई न कोई इल्जाम लगाकर हम सबको बंद करवा देंगे एक
सच बोलने की बहुत बड़ी कीमत चुकानी पडेगी हम लोगों
को ......"[1]

सत्य बोलने की प्रतिक्रिया अनिर्वचनीय है| 'चरनदास चोर' में सत्य बोलने का प्रण लेने वाले चोर को आखिर अपना जान देना पडता है| हबीब तनवीर जी हमें यह सन्देश देता है कि सच बोलने की हिम्मत रखनी चाहिए|

[1] शंकर शेष - पोस्टर - पृ - 16

'पोस्टर' नाटक में नाटककार शंकर शेष भी लड़ाई जो शुरू किया उसको जारी रखने का आह्वान देते हैं,

-"क्यों रोक दिया रे हाथ
काम अधूरा छोड़ दिया रे
रोक दिया रे हाथ, क्यों रोक ...
.....लड़ते जाना काम हमारा
आज हार कल जीत बनेगी
बढ़ते जाना काम हमारा
क्यों रोक दिया रे हाथ
काम अधूरा छोड़ दिया रे
रोक दिया रे हाथ ...."[1]

नाटककार यहाँ हार जीत की परवाह न करके लड़ाई जारी रखने का सन्देश देते हैं|

निषकर्ष

लोकनाट्य के क्षेत्र में खास तौर पर अपनी अलग शैली के कारण ख्याति प्राप्त लोकनाट्य रूपों में माच, नाच, कीर्तनिया, ख्याल आदि आते हैं| इनमें से कुछ संगीत प्रधान है और कुछ प्रस्तुतीकरण में अलग है|

---

[1] शंकर शेष - पोस्टर - पृ - 64

साठोत्तर हिन्दी नाट्य क्षेत्र के प्रसिद्ध नाटककार हबीब तनवीर, शंकर शेष, मणि मधुकर, विलास गुप्ता आदि ने इन लोकरूपों में निहित शक्ति को पहचाना है| लोक के प्रति इन नाटककारों के मन में विशेष रुची थी| प्रत्येक शैली के प्रति इनकी रुची ने उस शैली से प्रभावित नाटकों को जन्म दिया| लोकनाट्य शैली के प्रयोग से समसामयिक ज्वलंत प्रश्नों को नयी आवाज़ मिली है|

****

उपसंहार

उपसंहार

साहित्य मानव को मानव बनाने का सशक्त माध्यम है| प्राचीन काल से लेकर सामाजिक परिवर्तन में साहित्य की सक्रिय भूमिका रही है खासकर नाटक की| भारतीय साहित्य की विभिन्न विधाओं में नाटक का अपना महत्वपूर्ण स्थान रहा है| नाटक जीवन की जीवंत प्रस्तुति है| अतः जन सामान्य इस विधा के प्रति सहज ही आकर्षित हो जाता है| जनता से सीधा संपर्क होने के कारण परिवेश का वास्तविक प्रतिफलन नाटकों में ही अधिक होता है| समसामयिक परिवेश और आग्रह के अनुरूप नाटक अपनी विकास यात्रा के दौरान अनेक रूप धारण करता आ रहा है|

भारत में लोकनाट्य शैली की एक सुदृढ़ परम्परा रही है| विभिन्नता में एकता की परिकल्पना को सार्थक करता यह देश अनेक राज्यों एवं प्रान्तों में बंटा हुआ है| प्रत्येक राज्य एवं प्रान्तों के अपने अपने लोकनाट्य है जो वहाँ की लोक संस्कृति एवं परम्पराओं को अपनाते हुए चलते है| यही लोकनाट्य परम्परा हमारे शास्त्रीय नाटकों की जन्मदात्री भी मानी गई है| इन लोकनाट्य शैलियों में कुछ धार्मिक लोकनाट्य है, कुछ लौकिक-सामाजिक| कुछ लोकनाट्य नृत्य की प्रधानता लिए हुए हैं तथा कुछ गीत संगीत की| लोकनाट्य की विभिन्न शैलियाँ अपने अंचल विशेष के प्रभाव से युक्त होने के कारण काफी प्रसिद्ध भी रही हैं|

भारत के प्रमुख लोकनाट्य शैलियों में नौटंकी, रामलीला, रासलीला, नाचा, ख्याल, माच, कीर्तनिया आदि विशेष उल्लेखनीय हैं| नौटंकी शैली अपने नगाड़े के लिए प्रसिद्ध है साथ ही उसने स्वतंत्रता आन्दोलन के समय लोगों में

राष्ट्रीय चेतना एवं जनजागृति पैदा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाया है| 'खूने नाहक' नौटंकी पर उस समय अंग्रेजी सरकार द्वारा प्रतिबंध लगाया गया था|

रामलीला और रासलीला जैसे लोकनाट्य धार्मिक कथाओं से दर्शकों को आह्लादित करते रहे हैं| राजस्थान में ख्याल के कई रूप प्रचलित हैं| सामाजिक विषमताओं को प्रस्तुत करने हेतु कई नाट्यरूपों की प्रस्तुति की गई है | नाच लोकनाट्य अपने नृत्य के लिए लोकप्रिय है| इसी प्रकार माच अपनी मंच व्यवस्था में प्रसिद्ध है| गुजरात की भवाई बेमेल विवाह, ज़मीदारी प्रथा एवं कई सामाजिक विसंगतियों पर चोट करने वाली प्रस्तुतियों के लिए प्रसिद्ध रही है| इस प्रकार लोकनाट्य मात्र मनोरंजन का साधन ही नहीं वरन् उसमें समय परिवर्तन के अनुरूप उत्पन्न सामाजिक चेतना एवं सामाजिक सुधार की भावना की अभिव्यक्ति भी होती रही|

हिन्दी नाट्य जगत में लोकनाट्य के प्रयोग की शुरुआत भारतेंदु युग से ही मानी जाती है| इस युग में नवीन विधा, नवीन शैली एवं नवीन भाषा का निर्माण किया गया है| वहाँ एक ओर पूर्व आधुनिककाल अर्थात मध्यकालीन साहित्यिक परम्परा विलुप्त प्राय हो रही थी, जो कि पूरी तरह समाप्त नहीं हुई थी और दूसरी ओर आधुनिक काल में नवीन साहित्यिक परम्परा का निर्माण भी हो रहा था| लोकनाट्य की लम्बी परम्परा अपने अस्तित्व को बचाते हुए कायम थी| भारतेंदु की सशक्त रचनाओं में इसका प्रभाव हम देख सकते हैं| उनका नाटक 'अंधेर नगरी' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है| भारतेंदु युग के अन्य नाटककारों में भी इसका प्रभाव विद्यमान रहा है| लेकिन पारसी रंगमंच का प्रभाव प्रमुख रूप से इस युग को प्रभावित करता रहा है|

प्रसाद युग में लोकनाट्य का प्रभाव उतना नहीं दिखाई देता| स्वातंत्र्योत्तर युग के नाटकों में तत्कालीन समाज की छाया ज्यादा मुखरित रही है| आज़ादी से जन्मी नयी परिस्थितियों ने मानव को अंतर्मुखी बना दिया| सामाजिक, आर्थिक तथा पारिवारिक स्तर पर एक प्रकार का द्वन्द उत्पन्न हो गया| मोहन राकेश जी ने इस द्वन्द को अपने नाटकों में बखूबी दर्शाया है| इस प्रकार पाश्चात्य शैली का प्रभाव नाटकों में उभरने लगा अतः इस युग के नाटक लोकनाट्य के प्रभाव से अछूता रहा है|

ब्रेख्त के 'टोटल थियेटर' की अवधारणा ने नाट्य साहित्य को एक नया मोड़ प्रदान किया| ब्रेखत से प्रभावित रचनाकारों ने जब उनकी शैली को अपनी नाट्य कृति का आधार बनाया तो भारतीय नाटककारों को लगा कि जो कुछ ब्रेख्त के 'टोटल थियेटर' में है वे सब हमारी लोकनाट्य परम्परा में भी है| वैसे जो रंगमंच आयातित भूमि पर खड़ा था उसे अपनी भूमि पर खड़ा करने का कार्य लोकनाट्य ने किया| चूँकि लोकनाट्य मुक्ताकाशी रंग परम्परा का समर्थक रहा है अतः बिना किसी साज सज्जा के नाटक प्रस्तुत किया जा सकता है| आधुनिक नाटककारों ने इस सुविधा का उपयोग किया और रंगमंच को अपनी मिट्टी से जोड़ दिया| इस प्रकार जनसामान्य की समस्याओं का चित्रण उन्ही की शैली में प्रस्तुत किया गया| इस प्रकार नाटक को यथार्थ वादी रंग परम्परा की जटिलताओं से मुक्ति मिल गई| लोकनाट्य शैली ने नाट्य साहित्य को नयी दिशा प्रदान की|

सन् साठ के बाद के नाटकों में लोकनाट्य शैली का प्रभाव अधिक मिलता है| लोकनाट्य शैलियों में नौटंकी, रामलीला, रासलीला, नाचा, माच, ख्याल, कीर्तनिया आदि के प्रभाव से युक्त कई नाटक हिन्दी नाट्य जगत में मिलते हैं|

बकरी, एक सत्य हरिश्चन्द्र, सगुन पंछी, आला अफसर, बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग आदि नाटक नौटंकी शैली से प्रभावित हैं| इन नाटकों में नौटंकी के प्रमुख शैलीगत विशेषतायें बखूबी से निभायी गयी है| आला अफसर एवं बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग नाटकों में नौटंकी के प्रमुख छंद, दोहा, चौबोला, दौड़, बेहतरबील, रसिया आदि का प्रयोग किया गया है| यह इन नाटकों के कथ्य को और भी असरदार बनाता है| 'आला अफसर' नाटक में अफसर शाही, नौकर शाही प्रशासक वर्गों में व्याप्त भ्रष्टाचार की जीवंत तस्वीर है| 'बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग' नाटक में राजनैतिक स्वार्थ से झूझते जनसामान्य की कथा है| इसके विपरीत 'बकरी' नाटक में नौटंकी के बहुत कम छंदों का प्रयोग किया गया है| एक सत्य हरिश्चंद्र नाटक में नौटंकी के प्रभाव से जनसामान्य की कथा तथा सत्य हरिश्चन्द्र के नाटक की कथा दोनों को वर्तमान संदर्भों से जोड़कर दिखाया हैं| 'सगुन पंछि' नाटक में नौटंकी का प्रभाव उतना मुखरित नहीं है फिर भी इसका प्रस्तुतीकरण शैली एवं अन्य शैलीगत विशेषतायें इसे नौटंकी के करीब लाती हैं|

रामलीला शैली से प्रभावित नाटकों में 'रावण लीला', 'राम की लड़ाई', 'दशरथ नंदन' आदि उल्लेखनीय हैं| प्रस्तुत नाटकों में रामकथा को आधार बनाकर सामयिक ज्वलंन्त प्रश्नों को दर्शाने का प्रयास हुआ है| रासलीला शैली पर लिखित 'होरी धूम मच्यो री' नाटक में मनोरंजन पर ज्यादा बल दिया गया है| इस प्रकार हम देख सकते हैं कि नौटंकी, लीला शैलियों पर आधारित नाटकों की संख्या आधिक है जहाँ अन्य शैलियाँ जैसे नाचा, माच, कीर्तनिया, ख्याल अदि के प्रभाव से युक्त नाटकों की संख्या कम होते हुए भी अपने कथ्यगत विशेषताओं के तहत ये भी हिन्दी नाट्य जगत में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं| 'नाचा' लोकनाट्य शैली पर आधारित 'चरनदास चोर' नाटक सत्य की प्रतिष्ठा पर बल

देता हैं साथ ही हास्य से भरपूर एवं नाचा शैली के गीत और नृत्य के साथ छत्तीसगढ़ी परिवेश को सामने लाते हैं|

'पोस्टर' नाटक कीर्तनिया शैली पर आधारित है जो मुख्य रूप से अपने कथ्य में अधिक सशक्त है| अशिक्षित मज़दूरों की व्यथा एवं संघर्ष का चित्रण इसमें है| कीर्तनिया शैली 'कीर्तन' के ज़रिये कथ्य को आगे बढ़ाने की प्रथा है जिसे यहाँ भी अपनायी गयी है| इस प्रकार लोकनाट्य शैली के प्रयोग से अपने समय के पूरे परिवेश की जीवंतता को उभारने में ये नाटक सक्षम निकले हैं|

कहने का मतलब यह हुआ कि लोकनाट्य शैली के प्रयोग भारतेन्दु युग से ही प्रारंभ हो गया था| हिन्दी नाट्य जगत में सन् साठ के बाद इसका प्रयोग काफी असरदार रूप में दिखाई देता है जो आधुनिकता का परिणाम था|

आधुनिकता ने एक ओर परंपरा का निषेध किया तो दूसरी ओर बदली हुई मानसिकता की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए परम्परा का ही पुनर्मूल्यांकन किया था| उस पुनर्मूल्यांकन के सिलसिले में साठोत्तर हिन्दी नाटक एवं लोकनाट्य शैली के प्रयोगों को मानना समीचीन रहेगा|

****

परिशिष्ट

शोधछात्रा के प्रकाशित शोध लेख

1. साठोत्तर हिन्दी लोकनाट्य - केरल ज्योति (शोध पत्रिका)

प्रपत्र प्रस्तुति

1. भीष्म साहनी के नाटकों में धर्म की अवधारणा

****

संदर्भ ग्रन्थसूची

संदर्भ ग्रंथ सूची

मूल ग्रंथ

1	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	बकरी वाणी प्रकाशन 4695, 21 ए, दरियागंज दिल्ली प्रथम संस्करण 1981
2	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल	एक सत्य हरिश्चन्द्र राजपाल एंड सन्ज दिल्ली प्रथम संस्करण 1976
3	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल	सगुन पंछी राजपाल एंड सन्ज दिल्ली प्रथम संस्करण 1977
4	मुद्रा राक्षस	आला अफसर राधाकृष्ण प्रकाशन प्र. लि. दिल्ली प्रथम संस्करण 1978
5	कुसुम कुमार	रावण लीला हिमाचल पुस्तक भण्डार गांधीनगर, दिल्ली प्रथम संस्करण 1983
6	मणि मधुकर	दुलारी बाई लिपी प्रकाशन अंसारी रोड, दरियागंज प्रथम संस्करण 1978
7	सर्वेश्वर दयाल सक्सेना	होरी धूम मच्यो री वाणी प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली प्रथम संस्करण 1977

8	शंकर शेष	पोस्टर किताबघर प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली प्रथम संस्करण
9	जगदीश चन्द्र माथुर	दशरथ नंदन नाशनल पब्लिषिंग हाउज दरियागंज, दिल्ली प्रथम संस्करण 1974
10	अशोक मिश्र	बजे ढिंढोरा उर्फ़ खून का रंग अंकुर प्रकाशन शाहदरा, दिल्ली प्रथम संस्करण 1984
11	हबीब तनवीर	चरनदास चोर वाणी प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली संस्करण 2004
12	डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल	राम की लड़ाई अम्बर प्रकाशन करौल बाग़, दिल्ली प्रथम संस्करण 1979

आलोचनात्मक ग्रन्थ

1	डॉ. दशरथ ओझा	हिन्दी नाटक उद्भव और विकास राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली संस्करण 2003
2	डॉ. दशरथ ओझा	आज का हिन्दी नाटक - प्रगति और प्रभाव राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली प्रथम संस्करण 1974
3	डॉ. इन्द्रनाथ मदान	हिन्दी नाटक और रंगमंच पहचान और परख

		लिपि प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1975
4	डॉ. इन्द्रनाथ मदान	आधुनिकता और हिन्दी साहित्य राजकमल प्रकाशन प्रथम संस्करण 1973
5	डॉ. नगेन्द्र	आधुनिक हिन्दी नाटक नेशनल पब्लिशिंग हाउस प्रथम संस्करण 1970
6	डॉ. बच्चन सिंह	हिन्दी नाटक लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1967
7	डॉ. वशिष्ट नारायण त्रिपाठी	भारतीय लोकनाट्य वाणी प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली संस्करण 2001
8	गिरीश रस्तोगी	हिन्दी नाटक का आत्मसंघर्ष लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद संस्करण 2002
9	गिरीश रस्तोगी	बीसवीं शताब्दी का हिन्दी नाटक और रंगमंच भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन संस्करण 2004
10	गिरीश रस्तोगी	समकालीन हिन्दी नाटककार इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1982
11	गोविन्द चताक	आधुनिक नाटक का मसीहा-मोहन राकेश इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1975
12	गोविन्द चताक	नाटककार जगदीश चन्द्र माथुर

		राधाकृष्ण प्रकाशन प्रथम संस्करण 1973
13	जयदेव तनेजा	आज का हिन्दी रंग नाटक तक्षशिला प्रकाशन प्रथम संस्करण 1980
14	जयदेव तनेजा	हिन्दी नाटक आजकल तक्षशिला प्रकाशन संस्करण 2000
15	जयदेव तनेजा	समकालीन हन्दी नाटक और रंगमंच तक्षशिला प्रकाशन प्रथम संस्करण 1978
16	नरनारायण राय	नया नाटक उद्भव और विकास कादम्बरी प्रकाशन प्रथम संस्करण 2001
17	नरनारायण राय	आधुनिक हिन्दी नाटक एक यात्रा दशक भारती भाषा प्रकाशन प्रथम संस्करण 1979
18	जावेद अख्तर खाँ	हिन्दी रंगमंच की लोकधारा वाणी प्रकाशन दरियागंज, दिल्ली संस्करण 2013
19	डॉ. सुरेश वशिष्ट	हिन्दी नाटक और रंगमंच, ब्रेख्त का प्रभाव प्रेम प्रकाशन, दिल्ली संस्करण 1995
20	बलवंत गार्गी	रंगमंच राजकमल प्रकाशन प्रथम संस्करण 1968
21	महेश आनंद, देवेन्द्र राज अंकुर	रंगमंच के सिध्दांत राजकमल प्रकाशन प्र. लि. संस्करण 2008

22	अजित पुष्कल हरीश अग्रवाल (सं)	नाटक के सौ बरस शिल्पायन, शाहदरा संस्करण 2004
23	डॉ. शैलेन्द्र कुमार शर्मा (सं)	मालवा का लोकनाट्य, माच और अन्य विधाएँ अंकुर मंच उज्जैन प्रथम संस्करण 2008
24	डॉ. महेश गुप्त	लोकसाहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन समीक्षा प्रकाशन, गाँधीनगर
25	शैलेजा भारद्वाज	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटक साहित्य में लोकतत्व भारतीय कला प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1998
26	डॉ. नीना शर्मा	आधुनिक हिन्दी नाटकों में लोकनाट्यों के प्रभाव का अनुशीलन आस्था प्रकाशन, भोपाल प्रथम संस्करण 1999
27	ललित कुमार शर्मा ललित डॉ. भानुशंकर मेहता (सं)	नाटक और रंगमंच प्रभा प्रकाशन, इलाहबाद प्रथम संस्करण 1985
28	डॉ. गौतम शर्मा व्यथित	कांगड़ा के लोकगीत साहित्यिक विश्लेषण एवं मूल्यांकन जयश्री प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 1984
29	डॉ. चतुर्भुज	भारतीय और विदेशी भाषाओं के नाटकों का इतिहास समय प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 2008
30	श्रीकृष्ण दास	लोकगीतों की सामाजिक व्याख्या साहित्य भवन प्रा. लि.

		इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1956
31	वसन्त निरगुणे	लोकसंस्कृति मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी भोपाल संस्करण 1996
32	सत्यव्रत सिन्हा	भोजपुरी लोकगाथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी, U. P प्रयाग प्रथम संस्करण 1957
33	डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय	भारत में लोकसाहित्य साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहबाद संस्करण 1998
34	बद्रीनारायण	लोकसंस्कृति और इतिहास लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद संस्करण 1994
35	डॉ. रामविलास शर्मा	लोकजीवन और साहित्य विनोद पुस्तक मंदिर आगरा प्रथम संस्करण 1955
36	डॉ. बंशी राम शर्मा	किन्नर लोकसाहित्य ललित प्रकाशन बिलासपुर प्रथम संस्करण 1976
37	डॉ. श्याम परमार	लोकधर्मी नाट्य परम्परा हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी संस्करण 1959
38	डॉ. विजयकान्तधर दुबे	हिन्दी नाटक प्राक्कथन और दिशाएँ अनुभव प्रकाशन श्रीनगर

		प्रथम संस्करण 1986
39	डॉ. सुन्दर लाल कथूरिया	आधुनिक हिन्दी नाटक संवेदना और रंगशिल्प के नये आयाम भावना प्रकाशन प्रथम संस्करण 1998
40	मान्धाता ओझा	हिन्दी समस्या नाटक नेशनल पब्लिशिंग प्रथम संस्करण 1968
41	डॉ. रमिता गुरव	समकालीन हिन्दी रंगमंच विद्या प्रकाशन, कानपुर प्रथम संस्करण 2006
42	सुदर्शन मजीठिया	स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी रंग नाटक नीरज बुक सेंटर, दिल्ली संस्करण 1999
43	डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय	लोक संस्कृति की रूपरेखा लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1988
44	डॉ. कुंदनलाल उप्रेती	लोकसाहित्य के प्रतिमान भारत प्रकाशन मंदिर प्रथम संस्करण 1971
45	विद्यानिवास मिश्र	परम्परा बंधन नहीं राजपाल एंड सन्ज प्रथम संस्करण 1976
46	डॉ. आर. शशिधरन	आधुनिक हिन्दी नाटकों में सामाजिक व्यंग्य जवाहर पुस्तकालय सुंदर बाजार, मथुरा प्रथम संसकरण 2009
47	व्रजरत्नदास	भारतेन्दु नाटकावली रामनारायण लाल प्रकाशक इलाहाबाद संस्करण 2008

48	भारतेंदु हरिश्चन्द्र	अंधेरे नगरी साहित्यागार जयपुर संस्करण 1989

अंग्रेजी ग्रंथ

1	Dr. Krishor Jadav	Folk and its motifs in Modern literature Manas Publication New Delhi प्र. सं. 1998

मलयालम ग्रंथ

1	राघवन पय्यनाडू	फोकलोर संकेतन्गलूम् संकल्पन्गलूम् एफ.एफ.एम. पब्लिशिंग पय्यन्नुर 07 प्रथम संस्करण 1999
2	डॉ. राजा वार्यर	केरलत्तिले तियेट्टरूम कावालम नाटकन्गलुम स्टेट इंस्टिट्यूट आफ लान्गेज़स केरला प्रथम संस्करण 2008
3	डॉ. राजा वार्यर	नाटक : अन्वेषण और अपग्रथन स्टेट इंस्टिट्यूट आफ लान्गेज़स केरला प्रथम संस्करण 2012
4	जी भारगवन पिल्लै	नाडोडी नाटकन्गलूडे पिन्नाले केरला साहित्य अकादमी त्रिश्शुर प्रथम संस्करण 2009

पत्र-पत्रिकाएँ

1	नटरंग	अंक 1 से 50	संपादक नेमिचंद्र जैन जंगपुरा एक्सेशन नयी दिल्ली
2	रंग प्रसंग	अंक 41 2013	संपादक मंडल रतन थियाम वामन केंद्र कीर्ति जैन हेमा सिंह
3	मधुमती	2003 जुलई	संपादक आशुतोष पेडणेकर राजस्थान साहित्य अकादमी
4	मधुमती	1997 दिसंबर	सेक्टर 4, हिरण मगरी उदयपूर राजस्थान
5	मधुमती	1994 नवंबर	
6	मधुमती	1996 दिसंबर	
7	मधुमती	1996 अगस्त	
8	मधुमती	1997 सितंबर	
9	मधुमती	1998 मई	
10	मधुमती	1999 मई	
11	कथा क्रम	2009 जनवरी मार्च	
12	गंगनांचल	वर्ष 29 अंक 4 अक्तू-दिसे 2006	संपादक अजय कुमार गुप्ता भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् आजाद भवन नई दिल्ली
13	गंगनांचल	वर्ष 32 अंक 1 जन-मार्च 2009	संपादक अजय कुमार गुप्ता भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् आजाद भवन नई दिल्ली
14	गंगनांचल	वर्ष 32 अंक 1 जन-मार्च 2006	
15	सम्मलेन पत्रिका	भाग 16	

16	मंडई	वर्ष 12 अंक1 2010	डॉ. कालीचरण यादव रावत नाच महोत्सव समिति बिलासपुर का प्रकाशन

कोष ग्रंथ

1	बृहत हिन्दी कोश	कालिका प्रसाद (सं) ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी सप्तम परिवर्धित संस्करण 1992
2	हिन्दी साहित्य कोश	धीरेन्द्र वर्मा प्रथम संस्करण 2015
3	संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर	रामचंद्र वर्मा (सं) नागरी प्रचारणी सभा प्र. सं. 1989

****